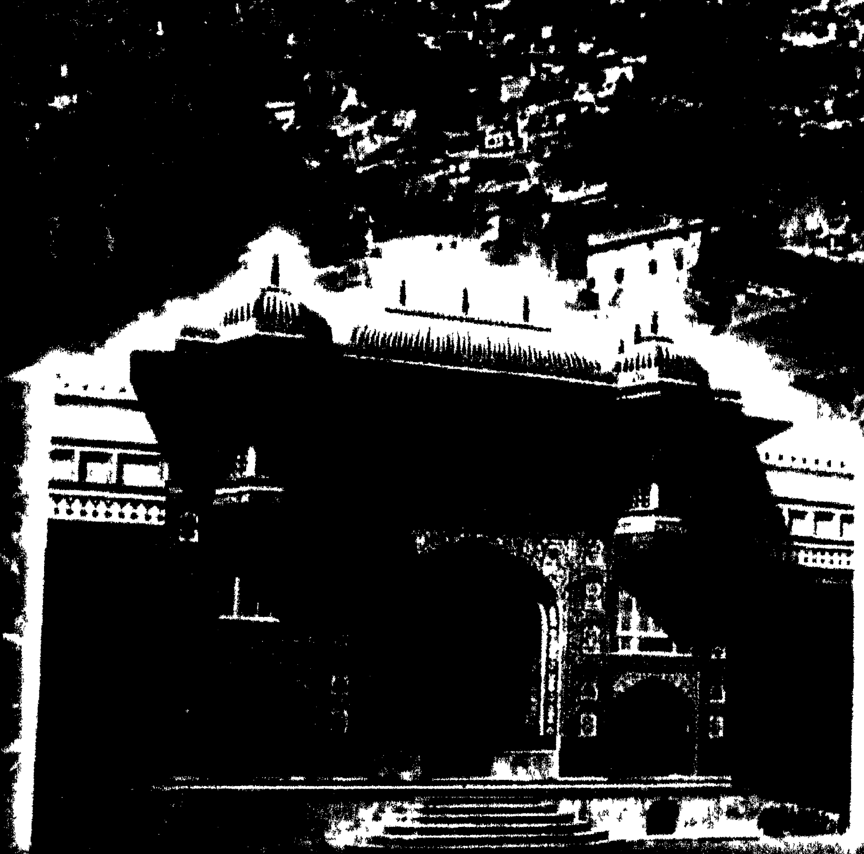
आमेर-जयपुर का संस्कृत वाङ्मय

(आमेर-खण्ड)



प्रो. (डॉ.) प्रभाकर शास्त्री

आज का 'राजस्थान' प्रान्त भारत की स्वतन्त्रताप्राप्ति के पूर्व 'राजपूताना' कहलाता था, जो अनेक देशी रियासतों में विभक्त था। इनमें मारवाड, मेवाड, हाडौती, अजमेर-मेरवाडा, मेवात, काठल, शेखावाटी, तोरावाटी, मत्स्य प्रदेश के साथ ढूढाड राज्य प्रसिद्ध रहे हैं। इन सभी प्रदेशों में साहित्य सर्जना क्षेत्र में ढूढाड प्रदेश सर्वत समृद्ध रहा है, यह वर्तमान शोध से प्रमाणित हो चुका है। घने बीहड जगलों से आच्छादित इस भूभाग पर मीणा एव बडगूजर जातियों का आधिपत्य रहा है, जिन पर विजय प्राप्त कर कछवाहावशीय क्षत्रियों ने चौहानों के सहयोग से आधिपत्य किया और दौसा, खोह, माची, जमवारामगढ होते हुए अरावली पर्वतमालाओं से पूर्णत सुरक्षित आमेर (अम्बावती) को अपनी राजधानी बनाया, जिसका श्रेय काकिल जी को दिया जाता है। 700 वर्षों तक आमेर (अम्बावती) पर शासन करने के बाद सवाई जयसिंह द्वितीय ने (1699-1743 ई) जयपुर नगर का निर्माण किया, जो विश्वविख्यात नगर है तथा वर्तमान राजस्थान प्रान्त की राजधानी के गौरव से महिमामण्डित है।

यहा के कछवाह शासकों के आश्रय में रह कर जिन विद्वानों ने सस्कृत भाषा माध्यम से सारस्वत साधना की, उनके कृतित्व का परिचय विभिन्न आलेखों के माध्यम से प्रकाशित किया गया। उन पूर्व प्रकाशित आलेखों का सकलन आवश्यक सशोधन के साथ लोकार्पित है। इन्हें दो खण्डों में विभक्त किया गया है, जिसके प्रथम खण्ड– **आमेर (अम्बावती) का सस्कृत वाङ्मय** 13 आलेखों में प्रस्तुत है।

द्वितीय– **जयपुर खण्ड**– में जयपुर नगर की स्थापना के समय से लेकर वर्तमान शताब्दी तक की सारस्वत साधना का परिचय 23 आलेखों में निबद्ध है जो जयपुर राज्य के सस्कृतभाषात्मक योगदान को स्पष्ट करता है। इसका (ग्रन्थ का) अध्ययन शोध की भावी दिशा निर्धारित करेगा– इसी विश्वास के साथ–

सम्पादक

‘आमेर’-‘जयपुर’ का संस्कृत वाङ्मय

(आमेर-खण्ड)

प्रो. प्रभाकर शास्त्री



राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर

प्रकाशक		राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र 29-ए, माली कॉलोनी, चादपोल दरवाजे बाहर, जयपुर-302 016

संस्करण	:	प्रथम 2002
मूल्य		500 रुपये मात्र
टाईप सैटिंग		श्रीफोटोज, जयपुर
मुद्रक	.	शीतल प्रिन्टर्स, जयपुर

पुरोवाक्

(प्रथम खण्ड-आमेर (अम्बावती खण्ड))

यद्यपि राजस्थान विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १९४७ ई. मे ही हो गई थी, परन्तु राजस्थान के प्रथम इस विश्वविद्यालय मे स्वतन्त्र सस्कृत विभाग की स्थापना १९६१ ई. मे हो सकी और (डॉ.) श्री पुरुषोत्तम लाल भार्गव प्रथम अध्यक्ष निर्वाचित हुए। यह भी एक देव सयोग ही रहा कि मुझे डॉ. भार्गव के प्रथम शोध छात्र होने का श्रेय मिला, जिसने संस्कृत शोध क्षेत्र में परम्परा से हटकर शोध की नई विधा - 'ऐतिहासिक शोध' को स्वीकार कर 'जयपुर की सस्कृत साहित्य को देन' विषय चुना और निर्बाध गति से कार्य करते हुए संस्कृत विभाग के प्रथम शोधोपाधि प्राप्तकर्ता के रूप मे सन् १९६४ ई. में नाम अकित करवाया। यद्यपि इस नवीनतम शोध विषय को लेकर अनेक लोगों ने आलोचनायें की। माननीय कुलपति तथा माननीय कुलाधिपति महोदयों को पत्र भेजकर विषय के निरस्त करने की दिशा में पर्याप्त प्रयास किये गये थे। इस पूरे षडयन्त्र से सर्वथा अनभिज्ञ मैं उन दिनो डूगर स्नातकोत्तर महाविद्यालय बीकानेर मे व्याख्याता के पद पर कार्यरत था कि एक दिन मुझे अपने निर्देशक महोदय का तार मिला 'शोध विषय पर चर्चा करने के लिए तुरन्त जयपुर आवें।' उस समय प्रो. प्रवीणचन्द्र जी जैन कालेज के प्राचार्य थे। मै उनसे मिला तथा अनुमति प्राप्त कर जयपुर पहुँचा। मुझे मेरे निर्देशक डॉ पी. एल. भार्गव साहब ने बतलाया कि आपको स्वीकृत शोध विषय मे पुन परिवर्तन करना होगा, क्योकि इस पर अनेक आक्षेप हैं। माननीय कुलाधिपतिजी आपसे उन आक्षेपो का समाधान चाहते है। आप उनसे समय लेकर मिल लें तथा स्पष्टीकरण कर शोध विषय का निर्धारण करें। मेरे जीवन का यह प्रथम अवसर था कि मैं महामहिम, राजस्थान प्रान्त के सर्वोच्च पदाधिकारी विश्वविख्यात विद्वान् के सम्मुख प्रस्तुत होऊं तथा स्पष्टीकरण करू । उस समय कुलाधिपति थे माननीय डॉ. सम्पूर्णानन्द जी। जगज्जननी जगदम्बा की प्रेरणा से शक्ति सवलित होकर मैं महामहिम के समक्ष राजभवन में उपस्थित हुआ। लगभग एक घण्टे तक विषय की चर्चा चली। मेरे तर्कपूर्ण उत्तरों से सर्वथा सन्तुष्ट होकर महामहिम ने समस्त आपत्तियों का निस्तारण करते हुए मेरे समक्ष ही माननीय कुलपति को लिखा— "स्वीकृत शोध विषय शोधोपाधि के लिए सर्वथा अनुरूप है।" महामहिम ने मुझसे व्यक्तिश. कहा -

'नवीन तथ्यो की खोज ही वस्तुत शोध है। नवीन तथ्यो को खोजकर जयपुर के सस्कृत साहित्यावदान को लोकार्पित करने में जुट जाओ। मेरी शुभकामनाये है।' मै उनके शुभाशीर्वाद से इतना अभिभूत हो गया कि मैने उनके चरणस्पर्श किये तो उन्होने मेरा परिचय पूछा और पूज्य पिताश्री एव गुरुजनो मे महामहोपाध्याय प गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी का नाम सुनकर तो वे स्वय गद्गद हो गए। मैने निर्धारित विषय का प्रेरणास्रोत पू. पिताजी को बताया तथा महामहोपाध्याय जी के शुभाशीर्वाद का भी उल्लेख किया। वस्तुत इन दोनो युगपुरुषो का आशीर्वाद ही मेरे शोधजीवन का सम्बल रहा है। उस दिन से लेकर आज तक मै केवल शोध क्षेत्र का प्रतिनिधि ही रहा और वर्तमान मे भी मेरे शेष जीवन का यही ध्येय है। मेरी सारस्वत साधना का यही मूल मन्त्र है -

'नामूलं लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षितमुच्यते'

अर्थात् जो कुछ लिखूगा- सप्रमाण लिखूगा तथा केवल अपेक्षित विवेचन करूँगा, अनर्गल या अनपेक्षित नही कहूँगा।

इन दो सिद्धान्तो को लक्ष्य बनाकर मैने अपना शोध कार्य प्रारम्भ किया। वस्तुत मेरे मार्गदर्शक या प्रेरणास्रोत रहे - स्वर्गीय पूज्य पिता **पं. वृद्धिचन्द्र जी शास्त्री,** व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य, प्रोफेसर, धर्मशास्त्र, महाराज सस्कृत कालेज, जयपुर और सहयोगी प्रेरक रहे - **स्व. पं. श्री नन्दकुमार जी कथाभट्ट, स्व. डॉ. श्री सुधीर कुमार गुप्त, गुरुवर पं. गंगाधर जी द्विवेदी** (राष्ट्रपति सम्मानित विद्वान्) एव **आचार्य पं. नवलकिशोर जी कांकर** (राष्ट्रपति सम्मानित विद्वान्)। ऐसे नाम तो बहुत है, जिनका सभी का यहां उल्लेख किया जाना सभव नही, परन्तु सस्मरणीय लोगो मे मनीषी **पं. विद्याधर जी शास्त्री,** बीकानेर, **श्री नाथूराम जी खडगावत,** निदेशक, आर्काइज (पुरालेख विभाग) बीकानेर, **प्रो प्रवीण चन्द्र जी जैन, डॉ पुष्कर दत्त जी शर्मा,** बीकानेर एव गुरुवर **पं रामगोपाल जी शास्त्री** का मै आजीवन ऋणी रहूँगा, जिनने पग-पग पर आने वाली बाधाओ के निराकरण मे मेरा भरपूर सहयोग किया, मुझे यथोचित मार्गदर्शन किया।

मुझे मेरे प्रेरणा के अनन्य स्रोत, गुरु एव जन्मदाता पूज्य पिताश्री ने एक ही उपदेश दिया- **'अनारम्भो हि कार्याणां प्रथमं बुद्धि-लक्षणम्। आरम्भास्यान्तगमनं द्वितीयं बुद्धि लक्षणम्।'** किसी भी कार्य का शुभारभ न करना बुद्धि का प्रथम लक्षण है और यदि कार्य प्रारभ कर दिया है तो उसे परिपूर्ण करना बुद्धि

का द्वितीय लक्षण है। आज मै जब उनके उपदेश पर चिन्तन करता हूँ तो पाता हूँ कि अपने शैक्षिक जीवन मे मै जो भी कर पाया, वह इसी उपदेश का परिणाम रहा है। डी लिट्. की उपाधि भी इसी उपदेश का सुखद परिणाम रहा, क्योकि सामग्री सकलन करते करते उसकी मात्रा इतनी समृद्ध हो गई कि मुझे अपने मूल विषय को सक्षिप्त करने के लिए विश्वविद्यालय को आवेदन करना पडा और पीएच डी उपाधि हेतु 'जयपुर की सस्कृत साहित्य को देन' विषय १६९९ से १८३४ ई. तक सीमित करना पडा। शेष सामग्री को परिवर्तन-परिवर्द्धन व सशोधन के साथ डी लिट् उपाधि के लिए प्रस्तुत करने का निर्णय लेना पडा।

मैने जो भी सामग्री शोध प्रबन्धो के रूप मे प्रस्तुत की, उसमें से बहुत सी सामग्री को शोध लेखों के माध्यम से तत्कालीन प्रकाशित होने वाली शोध पत्रिकाओ के माध्यम से भी प्रकाशित करवाता रहा। अब यह उचित प्रतीत हुआ कि उसका एकत्र सकलन कर ग्रन्थाकार रूप मे पुन प्रकाशन् करवा दिया जाय। इस दृष्टि से उन समस्तलेखो को दो खण्डो मे विभक्त किया, जिनमे प्रथम खण्ड मे आमेर (अम्बावती) से सबद्ध लेखो का प्रकाशन किया जा रहा है तथा द्वितीय खण्ड जयपुर नगर की स्थापना के बाद की शोध सामग्री का सकलन है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि जयपुर नगर की स्थापना से पूर्व तक अर्थात् सवाई जयसिह द्वितीय के शासनकाल से पूर्व तक, जब तक आमेर कछवाह शासकों की राजधानी रही, तब तक की शोध सामग्री का संकलन प्रथम खण्ड में तथा सवाई जयसिह द्वितीय से लेकर वर्तमान समय तक की शोध सामग्री का सकलन द्वितीय खण्ड (जयपुर खण्ड) मे किया गया है।

१३ शोध लेखों के सकलनात्मक इस ग्रन्थ(खण्ड) में प्रथम लेख है- **'आमेर (अम्बावती) के कतिपय उल्लेखनीय संस्कृत विद्वान्'**। मैं जब शोध कार्य में प्रवृत्त था, उस समय जयपुर राजघराने का निजी पुस्तकालय - 'पोथीखाना' देखने को भी उपलब्ध नही था। केवल कुछ सूचनाओ के आधार पर ही यह अनुमान लगाया जाता था कि अमुक-अमुक ग्रन्थ इस बहुमूल्य सग्रहालय मे होने चाहिए। परन्तु श्री गोपाल नारायण जी बहुरा, जोधपुर प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए तो उन्होने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि पोथीखाने के सग्रह के दो सूचीपत्र प्रकाशित किये और उसके अध्ययन से अनेक भ्रान्तियो का निवारण हो सका। अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनायें भी प्राप्त हुई, जिनका उल्लेख मेरे शोध प्रबन्ध मे भी उपलब्ध नहीं है। अत मेरे लिए यह आवश्यक हो गया कि मै अपने पीएच. डी. के शोध प्रबन्ध में

आवश्यक सशोधन करू, ताकि वह यदि प्रकाशित किया जाय तो पूर्णता के साथ प्रकाशित हो। इसीलिए मैंने इस महत्त्वपूर्ण आलेख को लिखा तथा इस सकलन में प्रथम स्थान पर रखा। इसमे आमेर के कछवाहा शासको का भी उल्लेख आवश्यक प्रतीत हुआ, क्योंकि उनके शासनकाल के ज्ञान के बिना विद्वान् का राज्याश्रयकाल भी स्पष्ट नहीं होता। श्री बहुराजी ने उपर्युक्त सूचीपत्र की भूमिका मे जो महत्त्वपूर्ण उल्लेख किया है, उसका सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित रूप में यहा सकेत किया गया है। जहा विस्तार की आवश्यकता प्रतीत हुई, वहा वह विषय सोद्धरण भी प्रस्तुत हुआ है। जैसे **'मानसिंह प्रतापकल्लोल'** रचना का विवेचन। इसी प्रकार 'मानसिह वर्णनम्' का भी सोद्धरण प्रस्तुतीकरण है। वस्तुत यह आलेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा पठनीय है। इसमें कछवाहो के आमेर नगरी पर शासन काल में सस्कृत का जो योगदान रहा है, सक्षेप, किन्तु सारगर्भित रूप मे प्रस्तुत हो गया है।

द्वितीय आलेख है- **'पृथ्वीराज विजय' एक ऐतिहासिक महाकाव्य।** सन् १९६३ ई मे 'एशियाटिक सोसायटी', पार्कस्ट्रीट, कलकत्ता का सर्वेक्षण करते समय मुझे १२ पत्रो का एक खण्डित काव्य देखने को मिला, जिसमे आमेर के कछवाहा शासको का इतिहास था। मैने यह अनुमान भी लगाया कि सभवत इस महाकाव्य की पूर्ण पति पोथीखाना मे उपलब्ध होगी, परन्तु जब पोथीखाने का सूचीपत्र प्रकाशित हुआ तो वह विचार या आशा धूमिल होगई। मैने इसकी पूर्णप्रति या द्वितीय प्रति खोजने का भरसक प्रयास किया, परन्तु अबतक सफलता नहीं मिली। मैंने सर्वप्रथम इस महत्त्वपूर्ण अन्वेषणा को लेखो द्वारा प्रकाशित किया और उन १२ पत्रो की सामग्री को लोकार्पित किया। वही लेख यहा पुनर्मुद्रित किया जा रहा है। उसका प्रथम प्रकाशन पुरातत्त्वाचार्य श्री मुनि जिन विजय के अभिनन्दन ग्रन्थ में हुआ था।

जयपुर के एक ऐतिहासिक महाकाव्य (आशिक खण्डित) श्री कृष्णराम भट्ट रचित **'कच्छवंश महाकाव्य'** जो अभी तक अप्रकाशित है, मूल लेखक के वर्तमान वंशज वैद्यराज श्री देवेन्द्र जी भट्ट के अनुग्रह से मुझे पाण्डुलिपि के रूप में देखने को मिला। संस्कृत साहित्य के इतिहास मे काश्मीर के इतिहास को प्रस्तुत करने वाली 'कल्हण की राजतरगिणी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है, ठीक उसी तरह राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट का यह अप्रकाशित महाकाव्य 'कच्छवंश महाकाव्य' आमेर-जयपुर के कछवाहा शासकों का सपूर्ण इतिहास प्रस्तुत करने के गौरव से मण्डित है, जो तत्कालीन दस्तावेजो को आधार बनाकर लिखा गया है। इसका १७ वां सर्ग लेखक के

आश्रयदाता के इतिहास को पूर्णरूप मे उपस्थित नही कर पाया है, अत आशिक रूप से अपूर्ण है। इस महाकाव्य की एक विशेषता यह है कि इसमे आमेर-जयपुर के प्रत्येक शासक का राज्याधिरोहणकाल, इनकी रानियो के नाम, उनकी समस्त सन्ततियो के नाम, उनका इतिवृत्त यथावत् वर्णित है। तृतीय आलेख मे इसकी पुष्टि मे पृथ्वीराज महाकाव्य के साथ तुलनात्मक समीक्षण प्रस्तुत करने से दोनो महाकाव्यो का महत्त्व बढ गया है। इसका कारण यह है कि आमेर के शासको के पुरातन प्रामाणिक इतिहास को प्रस्तुत करने वाला प्रथम महाकाव्य पृथ्वीराज विजय महाकाव्य ही है।

चतुर्थ आलेख का शीर्षक है- **'मानप्रकाश-एक अप्रकाशित महाकाव्य'।** पृथ्वीराज विजय के समान ही इस महाकाव्य की भी खण्डित प्रति एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता मे ही उपलब्ध है, जहा से फोटोप्रति प्राप्त कर राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के पूर्व निदेशक डॉ पद्मधर पाठक ने सम्पादित करवाकर प्रकाशित करवा दी है। इसकी भी सर्वप्रथम ख्याति मेरे इस आलेख से ही हुई। यद्यपि पूर्वोक्त सम्पादित प्रति के अनेक तथ्य आज भी अन्वेषणीय हैं, क्योंकि उनकी पुष्टि किसी भी प्रमाणान्तर से नही हो पाई है। उसके लेखक श्री रायमुरारिदास ने अपने को महाराजा मानसिह प्रथम (मिर्जाराजा) का मन्त्री लिखा है, जो किसी भी समकालीन या अन्य प्रमाणो से पुष्ट नहीं हो पाया है। यह महाकाव्य भी पूर्ण प्राप्त नही हुआ है और जो प्राप्त अश है, वह प्रमाणान्तर से पुष्टि भी चाहता है।

पचम आलेख का सम्बन्ध भी चतुर्थ आलेख से जुडा है, मैने इस 'मान प्रकाश' के उस अश का सम्पादन कर सशोधन के साथ प्रस्तुत किया है, जो मिर्जाराजा मानसिह के महाराणा प्रताप के साथ हुए हल्दीघाटी युद्ध से सबद्ध है। महाराणा प्रताप जयन्ती के समय १९७० ई. मे प्रकाशित विशिष्ट ग्रन्थ में इसका प्रकाशन हुआ है।

इस खण्डित ग्रन्थ की यदि पूर्ण प्रति प्राप्त हो जाती तो महाराणा प्रताप तथा आमेर के शासक मिर्जाराजा मानसिह प्रथम के सम्बन्ध मे प्रचलित अनेक किंवदन्तियो का समाधान हो जाता। जितना सा अश प्राप्त हुआ है, जिसे सम्पादित कर प्रकाशित किया है, उस कारण पर प्रकाश नहीं डालता, जो दोनों राजपुत्रो के युद्ध का कारण बना था।

षष्ठ आलेख है -**'मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम और उनके शिलालेख'**। इन शिलालेखों की संख्या चार है, जो कछवाहा शासक मिर्जाराजा मानसिह द्वारा विभिन्न स्थानो पर स्थापित किये थे, जो ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप मे अपना महत्त्व रखते है।

सप्तम आलेख **श्री दलपतिराय और उनकी रचनाओं** से सबद्ध है। श्री दलपतिराय मिर्जाराजा मानसिह कालीन सस्कृत विद्वान् थे, जिन्होने 'राजरीति निरूपणम्' ग्रन्थ लिखा। यद्यपि यह कृति बहुत बडी नही है, तथापि यह महत्त्वपूर्ण है। इसमे मुगल बादशाहों के समय की राज्यनीति का वर्णन है। उस समय कितने महकमे (विभाग) होते थे, उन विभागो के क्या क्या नाम थे, उन नामो का सस्कृतीकरण भी लेखक ने किया है तथा उनकी परिभाषा प्रस्तुत की है। वस्तुत मुगलकालीन राजरीति का विवेचक यह ग्रन्थ ज्ञानवर्द्धक तो है ही, तत्कालीन वस्तुस्थिति का भी चित्रण करता है, जो उस समय का परिचायक दस्तावेज प्रमाणित होता है।

अष्टम आलेख का शीर्षक है **'पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण'**। मिर्जाराजा मानसिह प्रथम के सहोदर कनिष्ठ भ्रता श्री माधवसिह, जो प्राय ज्येष्ठ भ्राता की अनुपस्थिति मे आमेर का शासन सभालते थे, सगीत प्रेमी थे। श्री विट्ठल या पुण्डरीक कर्नाटक सगीत के विशेषज्ञ थे, जो आमेर आने से पूर्व मुगलदरबार मे रहे थे। श्रीमती (डॉ.) कपिला वात्स्यायन ने इनकी सगीत रचनाओ का अभी हाल मे सम्पादन कर प्रकाशन किया है। उसमे उन्होने पुण्डरीक के स्थान पर 'पण्ढरि' शब्द को प्रामाणिक मान कर उसका प्रयोग किया है, जबकि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ने भी इनकी उपलब्ध सभी सगीत विषयक रचनाओ का सम्पादन-प्रकाशन किया है। मेरा यह आलेख इन दोनो से पुरातन है। मैने मूल पाण्डुलिपियो को आधार बनाकर उनका परिचय प्रस्तुत करने की दृष्टि से यह आलेख लिखा था। इस विषय मे अभी भी अन्वेषणीय है कि ये समस्त रचनायें पुण्डरीक की कृति है या विट्ठल की। सगीत विषयक इनकी रचनायें अलग अलग उल्लेख करती है। यह चिन्तनीय प्रश्न है।

अनेक ऐतिहासिक आज भी दिग्भ्रान्त है कि अकबर के प्रधान सेनापति मिर्जाराजा मानसिह प्रथम महाराज भगवन्तदास की औरस सन्तान थे या महाराज भगवानदास की सन्तान थे। उन ऐतिहातिको की भ्रान्ति के निवारणार्थ मैने यह आलेख प्रस्तुत किया था- **'जयपुर के ऐतिहासिक महाकाव्यों की दृष्टि में महाराज भगवन्तदास एवं भगवानदास** आमेर के छवाहा शासको के इतिहास को प्रस्तुत करने वाले उपलब्ध ऐतिहासिक महाकाव्यों ने इस सबन्ध मे क्या उल्लेख किया है तथा क्या इतिहास सम्मत पक्ष है, यह इस आलेख में सप्रमाण चर्चित है।- इस विवेचना से ऐतिहासिक प्रामाणिक पक्ष प्रस्तुत होता है। इस प्रकार यह आलेख पठनीय व मननीय है।

दशम आलेख है - **'आमेर के कछवाहा शासकों की परम्परा में व्युत्क्रम'**। प्राय राजपूतों में यह परम्परा रही है कि ज्येष्ठपुत्र ही उत्तराधिकारी होता

था। उसके दिवगत होने पर भी उसका पुत्र ही उत्तराधिकारी होता था, राजा बनता था। परन्तु कछवाहो की इस शासक परम्परा मे जहा जहा इस सिद्धान्त का हनन हुआ है, उसका पूरा लेखा-जोखा इस आलेख मे विवेचित है। इस आलेख द्वारा व्युत्क्रम का कारण भी स्पष्ट किया गया है तथा साथ ही इतिहास की परम्परा का भी सही चित्रण प्रस्तुत हुआ है। ऐतिहासिक विवेचना की दृष्टि से यह आलेख महत्त्वपूर्ण है ।

ग्यारहवा आलेख है -**'मानसिंह कीर्ति मुक्तावली एक विवेचन'**। जयपुर के कुछ विद्वानो ने अपने लेखो के माध्यम से यह उल्लेख किया था कि 'मानसिह कीर्ति मुक्तावली' शीर्षक रचना बादशाह अकबर के प्रधान सेनापति मिर्जाराजा मानसिह प्रथम की यशोगाथा को प्रस्तुत करने वाली रचना है। मैने उनके कथन पर विश्वास कर अपने शोध प्रबन्ध मे उनके सन्दर्भो को उद्धृत कर इस रचना को मानसिहकालीन रचना मान लिया था, परन्तु शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करने के उपरान्त जब मै एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी, कलकत्ता गया तो मुझे उक्त रचना की प्रति मिली। मैने उसका ऐतिहासिक दृष्टि से आकलन किया तो यह स्पष्ट हो गया कि यह अवध फैजाबाद के राजवश से जुडी रचना है। उनकी राजवशावली मे भी मानसिह-माधवसिह शासक हुए है। मैने भ्रान्तिनिवारणार्थ यह उचित समझा कि सोद्धरण लेख लिखा जाय और अपनी भूल को स्पष्ट किया जाय। मैने उक्त आलेख उसी सन्दर्भ मे लिखा, जिसे बीकानेर से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक शोध पत्रिका 'विश्वम्भरा' मे स्थान मिला। ऐतिहासिक तथ्यो का उद्घाटन करने वाला तुलनात्मक व समीक्षात्मक यह आलेख शोध प्रविधि के स्वरूप को स्पष्ट करने मे पूर्ण सक्षम है।

बारहवा आलेख - **'मिर्जाराजा रामसिह प्रथम एवं तत्कालीन विद्वान्'** ज्ञानवर्द्धक शोधलेख है। मैने इस लेख से आमेर के शासक के सस्कृत भाषा के प्रति प्रेम को उजागर किया है। जयपुर नगर सस्थापक सवाई जयसिह द्वितीय के प्रपितामह थे मिर्जाराजा रामसिह प्रथम । इनके पुत्र श्री कृष्णसिह शासनाधिकार प्राप्त करने से पूर्व ही अपने पिता के समक्ष दिवगत हो गये थे। यह प्रसन्नता की बात है कि उस समय तक महाराज विष्णुसिह का जन्म हो चुका था, जो मिर्जाराजा रामसिह के बाद आमेर के राजा बने थे, जिनके पुत्र जयसिह द्वितीय ने आमेर पर शासन करते हुए जयपुर जैसे नगर की स्थापना कीं थी। सास्कृतिक दृष्टि से मिर्जाराजा रामसिह प्रथमं का शासन काल महत्त्व पूर्ण रहा है। इनके समय मे श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे ने 'रामविलास' नामक चार सर्गो का काव्य लिखकर अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाये उपलब्ध कराई है, जिसमें रामसिह, विष्णुसिह एव जयसिंह कालीन अनेक सास्कृतिक घटनाए गुम्फित हैं, जो कवि की प्रत्यक्ष दृष्टि का समर्थन करती है। इन्ही की अन्य दो रचनाए शम्भुविलास

महाकाव्य व शृगारवापिका इगलैण्ड के इण्डिया आफिस लाइब्रेरी-मे सुरक्षित बताई जाती है। इन्ही के साथ अन्य विषयक विद्वानो का दाय भी स्पष्ट किया है इस लेख में, जो पठनीय है।

अन्तिम तेरहवा आलेख शोध की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसका शीर्षक है- **'जयपुर राज्य के प्राचीन संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक सामग्री'**। मेरा शोध कार्य तो साहित्यिक व सास्कृतिक बिन्दुओ पर केन्द्रित रहा है, परन्तु यथावश्यक ऐतिहासिक चर्चा भी करनी पडी है। वस्तुत मै इतिहास का विद्यार्थी नही रहा। मूलत ऐतिहासिक दृष्टि से यदि गवेषणा की जाय तो आमेर-जयपुर के प्राचीन सस्कृत साहित्य मे बहुत सी सामग्री विद्यमान है, जिनका मैने यथास्थान स्पर्शमात्र किया है। यहा जयपुर राज्य से अभिप्राय आमेर राज्य से अधिक संपृक्त है। चूकि शोध प्रबन्ध मे शीर्षक का सबन्ध 'जयपुर' से रहा है, अत· आलेख मे भी उसी का उल्लेखन किया गया है।

इस प्रकार १३ आलेखो का यह प्रथम सकलन जयपुर राज्य की स्थापना से पूर्व के सस्कृत साहित्य के सर्जनात्मक इतिवृत्त को सारगर्भित रूप मे प्रस्तुत करता है।

द्वितीय खण्ड - 'जयपुर खण्ड' मे लगभग २३ आलेखो का सकलन है। यद्यपि उसके कतिपय आलेखो का सबन्ध आमेर (अम्बावती) से भी रहा है, तथापि सर्वाङ्गीण विवेचना की दृष्टि से उन्हें जयपुर खण्ड मे ही रखा है। दोनो खण्डो के समेकित किये जाने से ही समग्र दृष्टि से हम आमेर-जयपुर के कछवाहा शासको के संस्कृत भाषात्मक योगदान का सही मूल्याकन कर सकते है। द्वितीय खण्ड की भूमिका को इसके साथ सपृक्त कर देखने से ही विषय की पूर्णता का आभास होगा।

इस शोधकार्य की सम्पन्नता को लगभग चालीस वर्ष पूर्व की स्थिति के सन्दर्भ मे देखना होगा, क्योंकि यह सामग्री तत्कालीन समय की देन है। इस पर विज्ञ पाठक ही अपने निर्णय को सूचित कर अनुगृहीत करेंगे।

विनीत-

वसन्त पञ्चमी स. २०५८
१७ फरवरी, २००२ ई.

प्रो. (डॉ.) प्रभाकर शास्त्री
अध्यक्ष, अखिल भारतीय सस्कृत परिषद्
(राजस्थान-प्रान्त)
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष सस्कृत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर (राज.)

□□□□

‘आमेर’-‘जयपुर’ का संस्कृत वाङ्मय

सूचनिका

आमेर-खण्ड



आमेर - खण्ड

'आमेर' (अम्बावती) के कतिपय उल्लेखनीय संस्कृत-विद्वान्

वस्तुत सन् १९६१ में जब मैने **'जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन'** विषय (शीर्षक) पर शोधकार्य प्रारम्भ किया था,तो उस समय एतद् विषयक सामग्री-सकलन मे बहुत ही कठिनाईयॉ थी। न तो तत्कालीन सस्कृत विद्वानो का शोध-प्रविधि से परिचय था और न ही सुदूर काल के विद्वानो का पूर्ण ज्ञान था। यह अपने प्रकार का एक निराला ही कार्य था। मुझे जब उपाधि प्राप्त हो गई, तब तो अन्य राज्यो की देन पर भी कार्य प्रारम्भ हुआ तथा न केवल राजस्थान मे, सम्पूर्ण भारत मे एक लहर ही चल पडी। इस का प्रमुख श्रेय मेरे स्वर्गीय पूज्य पिता **पं.वृद्धिचन्द्र जी शास्त्री** को दिया जाना सर्वथा औचित्यपूर्ण है, जिनकी प्रेरणा ही मेरे लिए आदेशरूप थी। उन दिनो जयपुर महाराज का निजी पुस्तक - सग्रहालय 'पोथीखाना' सीलबन्द था और मै उसका प्रयोग नही कर सका था। जो लेख विद्वानो ने लिखे थे, उन्हे आधार बनाकर ही भारत के विभिन्न हस्तलेख भडारो का परिशीलन किया गया और सामग्री सकलित की गई। चूँकि अब 'पोथीखाना' की सामग्री सुलभ हो गई तथा आदरणीय **पं. गोपालनारायण जी बहुरा** ने उसका सूचीपत्र भी प्रकाशित कर दिया, तथा उनने महत्त्वपूर्ण सूचनाओ से सकलित विस्तृत लेख भी प्रकाशित कर दिया, अत मैं इस लेख मे अपने **'शोध प्रबन्ध'** तथा **'लिटरेरी हैरिटेज ऑफ दी रूलर्स ऑफ आमेर एण्ड जयपुर'** को आधार बनाकर सवाई जयसिह द्वितीय तक के कतिपय संस्कृत विद्वानों का उल्लेख करना चाहता हूँ, क्योकि मेरा यह शोधप्रबन्ध अभी तक अप्रकाशित है। जयपुर नगर की स्थापना सवाई जयसिह द्वितीय ने की थी, परन्तु तत्कालीन कुछ विद्वान् उनके पिता महाराज विष्णुसिह के समय मे भी विद्यमान

थे, इसके पुष्ट प्रमाण प्राप्त हैं।

कछवाहा-वश के सस्थापक का नाम **दूलहराय** (दुर्लभराय) या 'दुलह', या 'धूला' था। ग्वालियर छोडकर सर्वप्रथम ये ही ढूंढार प्रदेश में आये थे। इनके पिता का नाम सोढदेव था, जो ईशासिंह के पुत्र थे। इन्होने सर्वप्रथम 'दौसा' पर अधिकार किया था। वहाँ से रामगढ पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया था। इनका देहान्त १०९३ विक्रम सवत् में हुआ था। इनके पुत्र का नाम **'काकिलदेव'** था। इनने 'माची' पर विजय की थी और बाद में 'आमेर' को जीत कर उसे अपनी राजधानी घोषित किया था। **'काकिल जी आमेर बसायो'** - यह उल्लेख **'मुंहता नैणसी री ख्यात'** में मिलता है। इनका शासनकाल १०९३ से १०९६ विक्रम संवत् अर्थात् १०३६ ई. से १०३९ ई. रहा है। यह आमेर जयपुर की स्थापना तक कछवाहों की राजधानी रही है। **सवाई जयसिंह द्वितीय** का शासनकाल १७५६ से १८०० विक्रम सवत् अर्थात् १६९९ ई. से १७४३ ई. तक रहा है।

महाराज काकिल के बाद श्री हणूंत देव (१०३९ ई.-१०५३ ई.) इनके पुत्र श्री जान्हडदेव (१०५३-१०७० ई.),उनके पुत्र श्री पज्वनदेव (१०७० ई.-१०९४ ई.), उनके पुत्र मलेशि (१०९४ई.११४५ ई.) तथा उसके बाद बीजलदेव (११४५ ई.-११७९ई.), श्री राजदेव (११७९ई.-१२१६ई.), श्री कील्हण देव (१२१६ ई.-१२७६ई.) श्री कुन्तल (१२७६ ई.-१३१७ई.), श्री जोनसी (१३१७ई.-१३६६ई.) श्री उदयकरण (१३६६ ई.-१३८८ई.), श्री नरसिंह (१३८८ई.-१४२८ई.) श्री बनवीर (१४२८ ई.-१४३९ई.), श्री उद्धरण (१४३९ई.-१४६७ई.) श्री चन्द्रसेन (१४६७ ई.-१५०२ ई.) ने शासन किया। उस समय भारत में मुगलशासन था। इनके शासन काल तक का कोई भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता, कि कोई प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् यहाँ राज्याश्रय में रहा हो।

श्री चन्द्रसेन के पुत्र का नाम **'पृथ्वीराज'** था। इनका शासनकाल(१५०२-३ ई.-१५२७ ई.) माना जाता है। इनके शासन काल में किसी संस्कृत कवि ने 'पृथ्वीराज-विजय' नामक महाकाव्य लिखा थां। परन्तु खेद है वह पूर्णरूप में प्राप्त नही हो सका। केवल उसके ७ पृष्ठ **एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी**, कलकत्ता में उपलब्ध है। इनका विवरण देते हुए मैंने दो लेख- 'पृथ्वीराज-विजय' एक अप्रकाशित

महाकाव्य शीर्षक से लिखकर प्रकाशित कर दिये हैं, जो इस संकलन में भी सकलित हैं।

इसके बाद राजा **भारमल** के, जो बिहारीमल के नाम से भी जाने जाते थे, जिनका शासनकाल (१५४७ ई.-१५७३ ई.) रहा हैं, के समय किसी रचना का पोथीखाने में होना या रचना होना अब स्पष्ट हो गया है। हॉ, १६१४ विक्रम सवत् अर्थात् १५३७ ई. की एक रचना **विष्णुसहस्रनाम** की प्रति आमेर किले में लिखी गई थी, क्योकि यहॉ के शासक वैष्णव थे। जैन भाण्डागारो में तत्कालीन लिपीकृत अनेक ग्रन्थ आज भी सुरक्षित हैं।

महाराज भगवन्तदास के आश्रय में किसी विद्वान् शभुभट्ट की रचना 'लक्ष्मण मजरी' नामक छन्द· शास्त्रीय कृति का उल्लेख पं. गोपालनारायण जी बहुरा ने किया है, जिसे लेखक ने अपने पिता श्री लक्ष्मण भट्ट की स्मृति में लिखा था।

मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम को विद्वानों के सम्मान करने का शौक था। वे जहॉ भी जाते, उन्हे यदि कोई विद्वान् या बहादुर व्यक्ति मिलता, तो वे उसे अपने पास रख लेते थे। कहा जाता है कि जब वे पजाब - विजय हेतु उधर गये थे, तो उन्हें उत्तर पश्चिम प्रदेश मे 'सियालकोट' से गुजरते हुए **बढेरा के राय मुरारिदास** से परिचय हुआ, जो जाति से खत्री थे। उनकी बुद्धिमत्ता, प्रशासकीय क्षमता, दूरदर्शिता एवं चातुर्य से वे इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने राय को अपना मन्त्री बना लिया। ये कवि भी थे। इन्होंने संस्कृत मे '**मानप्रकाश**' नामक महाकाव्य लिखा है, जिसमें राजा मानसिंह सबधी अनेक ऐतिहासिक तथ्य अकित हैं। खेद है, '**मानप्रकाश**' की पूर्ण प्रति उपलबध नहीं हो सकी। आशा थी कि इस महाकाव्य की प्रति 'पोथीखाने' में सुरक्षित हो सकती है, परन्तु अब यह स्पष्ट हो गया कि यहॉ पर यह रचना नहीं है, उस पर मैंने विस्तार से लेख लिख दिया था, जो प्रकाशित है तथा यहॉ सकलित है।

इसके अतिरिक्त पं.बहुराजी ने श्री गिरिधर के पुत्र **श्री शिरोमणि** कवि का उल्लेख किया है, परन्तु उनके रचनात्मक कार्य अथवा भाषा विशेष का कोई सन्दर्भ नहीं दिया है। एक अन्य कवि **श्री त्रिमल्ल** का उल्लेख भी मिलता है, जिन्होंने '**मानसिंह प्रताप कल्लोल**' नामक ग्रन्थ लिखा था, जिसमें १०८ स्रग्धरा छन्द हैं। ये प्रताप - वर्णन (२७ पद्य), कीर्ति वर्णन (३८ पद्य), खड्ग वर्णन(१३ पद्य),चाप वर्णन

(१ पद्य), शरवर्णन (१ पद्य), दुन्दुभि वर्णन(२ पद्य), छत्र वर्णन (१पद्य), सिंहासन वर्णन (१ पद्य), चामर वर्णन (१पद्य), अश्व वर्णन(१ पद्य) गजवर्णन (१पद्य), आशीर्वादात्मक (११ पद्य) तथा अन्य ११ पद्य हैं। इस का प्रारम्भ इस प्रकार किया गया है -

'आस्ते श्रीमानसिंहः क्षितितिलकमणिः सर्व- सर्वंसहाया
नाथः पुण्यपवित्रः प्रतिनृपतितमस्तोमसोमः क्षमायाम्।
गाम्भीर्य-स्थैर्य -धैर्य -प्रणयनयचय· क्रौर्य -सौन्दर्यशौर्यो-
दार्यादीनां गुणानां खनिभिरनुलवं राजभिर्वन्दितांघ्रि·॥ १॥
तस्योर्वीन्द्रस्य किंचिद् गुणलवममलं वारिराशेरिवाम्भो-
र्बिन्दुं ब्रूते त्रिमल्लः पुरमथनपरध्यान - लब्धप्रभावः।
दुष्टानां निग्रहाय श्रुतिगदितलसद्धर्म - कर्मावनाय
त्राणायाशेष -साधोरपि च धृतव्रतो जन्म विष्णोरिवात्र॥२॥''

ग्रन्थान्त मे पुष्पिका है-'इति श्री महाराजाधिराज-राजा मानसिंहस्य प्रतापकल्लोलाख्य समाप्तम्। **इति श्री मानसिंहस्य..... ..... महीयस·। गुणाम्भोधे· त्रिमल्लेन, बिन्दुरेकोऽत्र वर्णितः॥** सवत् १७४५ कार्तिक कृष्णा द्वादश्या लिख्यत हृषीकेश प्रो (पुरो) हितेन। शुभमस्तु। प्रोहित श्रीधरस्यात्मजेन गढ आम्बेरमध्ये राजा विष्णुसिह - राज्ये। राजाजी श्री विष्णुसिह जी दर्शनार्थम्। श्रीरस्तु।'

इस विवरण से यह ज्ञात होता है कि जयपुर सस्थापक सवाई जयसिह द्वितीय के पिता महाराज विष्णुसिंह के शासनकाल में इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि की गई थी। प्रतिलिपिकार पुरोहित श्रीधर के पुत्र श्री हृषीकेश पुरोहित थे। यह पोथीखाने में ग्रन्थाङ्क ४८ पर उपलब्ध है।

मिर्जाराजा मानसिंह के आश्रय में एक अन्य विद्वान् का संकेत पं. बहुराजी ने किया है, जिनका नाम है **श्रीहरिनाथ,** जिन्हें हरनाथ बारहट से भिन्न प्रमाणित किया है। इनकी रचना का नाम है '**काव्यादर्शमार्जनं**' जिसे सवत् १६५१ (१५९४ ई.) मे पूर्ण किया था। लेखक के पिता का नाम **विश्वधर** था तथा दो बडे भाईयों श्री केशव तथा भानु का भी लेखक ने स्मरणपूर्वक उल्लेख किया है-

'तातं विश्वधरं नत्वा ज्यायांसं केशवं गुरुम्।
भानोरवरजेनायं प्रक्रम. क्रियते मया॥'

इन्ही श्री हरिनाथ ने **'सरस्वती-कण्ठाभरणमार्जनं'** नामक रचना भी की थी, जिसका आरफ्रेच्ट ने अपने केटेलोगस केटेलोगरम् -प्रथम भाग पृ.७५८ पर उल्लेख किया है, जो मूलत भोजदेव की रचना मानी जाती है।

महाराज मानसिंह प्रथम व उनके राज्याश्रित सभासदो के मनोविनोदार्थ **श्रीमोहन कवि** ने **'दमन-मंजरी'** नामक ४ अक की संस्कृत नाटिका का प्रणयन किया था। सस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के सेवानिवृत्त अध्यक्ष डॉ. गगाधर भट्ट के निर्देशन मे डॉ कमलकान्ता दाधीच ने इस ग्रन्थ का सम्पादन समीक्षण कर १९८६ ई. मे पीएच.- डी. उपाधि प्राप्त की है। 'दमनमजरी' इस नाटिका की नायिका है तथा कुसुमपुर का मन्त्री वसन्तमित्र राजा मदनबन्धु के साथ उसका विवाह करवा देता है, जो विदर्भराज पुष्पराज की पुत्री थी।

मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम के छोटे भाई का नाम **महाराज माधवसिंह प्रथम** था। ये भानगढ के जागीरदार थे। इनका सस्कृत भाषा और साहित्य से विशेष प्रेम था। ये नाटक - प्रिय व्यक्ति थे। इनके राज्याश्रय में **पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण** कर्नाटक से आये थे, जिन्होने **रागमंजरी, नर्तननिर्णय शीघ्रबोधिनी, मानमाला तथा षड्राग - चन्द्रोदय** आदि रचनाये प्रस्तुत की थी। इनका उल्लेख आफ्रेच्ट के केटेलोगस केटेलोगरम् मे भी है।

मैने भी अपने पीएच.-डी. शोधप्रबन्ध में इसका विवेचन किया है तथा एक स्वतन्त्र लेख भी लिखा था, जो इस सकलन मे सकलित है।

मिर्जाराजा मानसिह के ज्येष्ठ पुत्र का नाम- **जगत्सिंह** था। इन्हें **'मानसिंह वर्णनम्'** नामक रचना मे 'विपश्चित्' (विद्वान्) कहा है, **'मानवंश-वर्णनम्'** नामक रचना पोथीखाने में ग्रन्थाङ्क ४६२ पर प्राप्त है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है-

''मंगलनामस्मरणं हेरम्बं भारतीं नत्वा।
वर्णयितुमारभेऽहं वंशं श्रीमानसिंहस्य ।।१।।
धरायां काकुत्स्था भुवन - विशदस्थास्नुपयशः
स्वराज्यस्वाराज्य प्रभव- विभव -श्रोणि - सुभगाः।
बभूवुर्भूपाला निखिल - वसुधा - पालनपराः
पुरा सौरे वंशे सगर-रघु-रामप्रभृतयः ।।२।।

> खड्गाघातविखण्डितारिनिवह - श्रीमानसिंहागम-
> त्रस्यद् बंगधराधिपप्रणिहिताऽगाधेऽम्बुधावम्बिका।
> खड्गक्षालनरक्तगन्धमुदिता सूवाच तं स्वप्नगा
> साम्राज्यं भज वीर वारिधितलाद् धाम स्वकं मां नयेः ।। ८ ।।
> यत्नादूरत्ननिधे - र्निधानमिव तां रत्नव्रजानां शनै-
> रुन्नीयानयति स्म सद्म स निजं सम्पूज्य साम्राज्यदाम्।
> जित्वा सत्वरमुद्धतानपि रिपून् द्वीपाधिपांश्चिन्हयन्
> तत्तद्धामसु पंचरागरचनानुच्चैर्बबन्ध ध्वजान्।। ९ ।।
> प्रासादे विहिते स्वासौध - सविधे शैले सरो रोधसि
> श्रीमानुत्तमकान्तिशालिनि वरे देवी वरेण्यां दिने।
> आधायापि सुपूज्य भूरिविभवो राजोपचारार्पणैः
> संजज्ञे भृकुटीविधेय -विकट -क्षोणीश शिक्षोत्कटः ।। १० ।।
> आम्बेरी लसदम्बिका निलयिकां शैलावलीदुर्गमां
> गुप्तस्पर्श - महावटाभिधसरस्तीरे तरूरंचिताम्।
> आस्थाय स्थिरधीरधीतसमरो भातिस्म शासद्दिवं
> पूर्णश्रीरमरावतीपतिरिव श्री मानसिंहो भुवम्।।११।।"

इन पद्यों में शिलामाता की आम्बेर में स्थापना का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है, जो एक ऐतिहासिक साक्ष्य है। अग्रिम पद्य में **जगत्सिंह,** उनके पुत्र **महासिंह,** उनके पुत्र श्री **जयसिह प्रथम** का स्पष्ट उल्लेख है-

> "पश्चाद्यश्च विपश्चिदुत्तमयशाः श्रीमानसिंहात्मजो
> वीरव्रातजयव्रतो ननु जगत्सिंहोऽभ्यधायि श्रुतः।
> तत्सूनु सुनतो जनैरथ महासिंहो महाविक्रमो
> विक्रान्तं जयसिंहमाप विजयश्रीशालिनं नन्दनम्।।१८।।
> अष्टाषष्टिषडेक विक्रमशके (१६६८ वि.)षड्वक्त्रसद् विक्रमो
> जज्ञे विज्ञमनोज्ञधीरधिशुचि श्रीलः सतिथ्यां शुचेः।
> कृष्णो जिष्णुगुणोऽध्युवास पृथुको द्योसाभिधानं गिरिं
> दुर्गं कश्चिदनेहसं च ववृधे शुक्ले यथा शुक्लगुः।।१९।।"

इस क्रम मे लेखक ने मिर्जाराजा जयसिह प्रथम के उत्तराधिकारी एवं ज्येष्ठ पुत्र मिर्जाराजा रामसिह प्रथम का उल्लेख किया है-

श्रीमान्नीतिबलातिशायि विजयश्रीरामसिंहो नृपो
लोकानन्दकचारुकर्म चतुरो विद्वत्सु चिन्तामणिः ।
वर्णश्रोणिसुवर्षणैर्गुणिगणान् सारंगवर्गानिव
प्रीत्या सत्कवि-केकिवर्णितगुणो रेजे स धाराधरः।।२६।।'

श्री रामसिंह के पुत्र का नाम श्री कृष्णसिह था, जो पिता के सम्मुख दिवगत हो गये थे। उनके पुत्र महाराज विष्णुसिह थे, जिनके पुत्र सवाई जयसिंह द्वितीय थे. जिन्होंने जयपुर नगर की स्थापना की थी। इसमे इनके जन्म एवं अन्य सस्कारो का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है । यह रचना महाराज विष्णुसिह के समय लिखी गई थी। यह रचना अपूर्ण मानी गई है,जिसकी समाप्ति १०० वे पद्य पर हो जाती है। इसका ग्रन्थाङ्क ४६२ है। पं. बहुराजी ने सकेत किया है कि इसके लेखक गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य रहे हैं, ऐसा कहीं उल्लेख मिलता है।

श्री गोपालनारायण बहुरा ने लिखा है कि श्रीमिर्जाराजा मानसिह के १२ पुत्रो मे से १० की मृत्यु उनके सामने ही हो गई थी, और केवल दो पुत्र भावसिंह एव श्री कल्याणसिंह जीवित थे। परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र जगत्सिह के पुत्र श्री महासिंह को उत्तराधिकार प्राप्त होना चाहिए था, परन्तु श्री भावसिह को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। वे उस समय बंगाल के डिप्टी सूबेदार थे और यही कारण है कि उनका बगाल निवासी **न्यायवाचस्पति** उपाधिधारी **कवि श्री** रुद्र से संपर्क हुआ होगा, जिन्होने अपने आश्रयदाता महाराज भावसिह की प्रशसा मे 'भावशतकम्' नामक शतककाव्य की रचना की , जो काव्यमाला सीरिज के द्वितीय गुच्छक मे प्रकाशित हो चुकी है। कवि ने इसका प्रारम्भ निम्नलिखित पद्य से किया है-

"यः फल्गूकृतफाल्गुनो रणभुवि प्रौढप्रतापानल-
ज्वालाभिः प्रतिपक्षपक्षविधिकश्रेणीर्ददाह क्षणात्।
योऽभूद् भूसुरभूरुहोऽत्र भगवद्दासो निवासः श्रियां-
तस्मादाविरभूत् प्रभूतमहिमा श्रीमानसिहो नृपः।।१।।"

इसी क्रम मे चतुर्थ पद्य मे श्रीभावसिंह का उल्लेख हो गया है-

'श्रीमच्छ्रीमानसिंह क्षितिपतिजलधेरुद्गतो भावसिंह.
पूर्ण.पीयूषभानुर्विलसति किरणध्वस्त - दैन्यान्धकारः।
स्फारस्फारस्तुषाराचलसुरतटिनी हंसहारानुकारा.
कीर्ति-ज्योत्स्ना· पिबन्ति प्रतिदिशमनिशं यस्य विद्वच्चकोराः ।।४।।'

अन्त मे 'कविप्रशस्ति' भी प्राप्त है-

''सद्गुणानां समुद्रेण रुद्रेण ग्रथिता गुणैः।
कण्ठस्था श्लोकमालेयं केषां न कुरुते श्रियम्।। १३५।।
विद्याविलासपुत्रस्य न्यायवाचस्पतेरियम्।
काव्यालाप-विदग्धानां मुदे निर्मातु निर्मितिः ।। १३६।।''

श्री महासिंह की मृत्यु ज्येष्ठ शुक्ला पचमी सवत् १६७४ वि. सवत् को (१६१७ ई) हो गई थी। इन्होंने अपने समय मे 'महाराजकोश' का निर्माण कराया था, जो आयुर्वेद का महत्त्वपूर्ण शब्दकोष है, जिसका उल्लेख मैंने अपने शोध प्रबन्ध मे किया है, परन्तु इस ग्रन्थ को देखने का अवसर नही मिला था। इसका प्रारंभ है -

'श्रीगणेशाय विश्वेशवैभवाद्भुतहेतवे।
नमो निर्विघ्नमारब्ध-कार्यनिर्वाह-हेतवे।।७।।
जयति श्री महासिंह-भूपालो योऽयमुद्यतः।
स्वं विस्तारयितुं कोशं परितोषाय सद्धियाम् ।।२।।''

यह ग्रन्थ म.मानसिह द्वितीय आर्ट गैलेरी मे प्रदर्शनार्थ रखा हुआ है।

महाराज भावसिंह के कोई औरस सन्तान नहीं थी । अत. श्रीमहासिह के पुत्र **श्रीजयसिंह प्रथम** को म. भावसिह का उत्तराधिकारी घोषित किया गया, जिन्होंने आषाढ कृष्णा प्रतिपदा स.१६७८ (१६२२ ई.) को शासन प्रारंभ किया। मिर्जाराजा उपाधिधारी श्री जयसिंह स्वय संस्कृतज्ञ थे तथा उर्दू, पर्शियन, तुर्की आदि भाषाओं के विद्वान् भी थे। ये असामान्य बुद्धिसम्पन्न राजा थे। मुगलबादशाह ने इन्हें ही छत्रपति शिवाजी को गिरफ्तार करने भेजा था। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि कुलपति मिश्र, श्रीबिहारीलाल तथा नरोत्तम प्रभृति तत्कालीन होते हुए उनके आश्रय मे भी रहे ।

सस्कृत के प्रसिद्ध अलकारशास्त्री पण्डितराज जगन्नाथ का भी इनसे संपर्क रहा है। **श्रीकुलपतिमिश्र** इन्हीं पण्डितराज के शिष्य थे, जो महाराजकुमार रामसिंह प्रथम के अध्यापक नियुक्त हुए थे।

मिर्जाराजा जयसिह के समय संगृहीत किये गए अनेक हस्तलेखों व हस्तलिखित ग्रन्थो का भी बहुराजी ने उल्लेख किया है। इनमे ऋग्वेद से लेकर अनेक ग्रन्थो का संकलन है। श्री **नीलकण्ठ** के **शब्द शोभा व्याकरण, छन्दोमंजरी** नामक **वृत्तरत्नाकर पर टीका, श्रीगोपालभट्ट** रचित **'जयचम्पू', काशीनाथ** रचित **छन्दोगोपालं' श्री गोपीनाथ मौनी** रचित **'न्यायकुसुमांजलि'** उल्लेखनीय हैं। यद्यपि ये समस्त रचनाये उनके आश्रय मे लिखी गई हो, यह प्रमाणित नहीं है, तथापि जिन रचनाओ मे महाराज के आश्रय का उल्लेख है, उनकी चर्चा यहाँ आवश्यक है।

श्री नीलकण्ठ के **शब्दशोभाव्याकरण** की समाप्ति पर जो सूचना प्राप्त है, उसके अनुसार ये नीलकण्ठ श्री जर्नादन शुक्ल के पुत्र थे तथा बच्छाचार्य के दौहित्र थे। ये शैव थे तथा इन्होने व्याकरण शास्त्र का अध्ययन श्री भट्टोजि दीक्षित से किया था। इनकी माता का नाम श्रीमती हीरादेवी था-

''यद्यपि खलबहुलोर्वी न वृथा क्लेशस्तदप्येषः।
तुष्यतु तदेव तेजो विलसति यस्य प्रसादोऽयम्॥१॥
शुक्लजनार्दनपुत्रो बच्छाचार्यस्य दौहित्रः।
अभ्यस्त-शब्दशास्त्रो भट्टोजिदीक्षितच्छात्रः॥२॥
हीराभिधपातिव्रतमहसि प्राप्तनिजजन्मा
कवि-नीलकण्ठ शर्मा निर्मितिमेनां विनिर्ममे शैवः॥३१॥''

उपर्युक्त ग्रन्थो मे से **श्री दामोदर तैलंग** के पुत्र एव **श्री गोपाल** द्वारा रचित **'जयचम्पू'** (ग्रन्थाङ्क ५४५) इन कछवाह शासको के आश्रय में रचा गया था। यह इस विवरण से प्रमाणित हो जाता है-

ग्रन्थारम्भ-

'गुरुमहिमानं देवं निजभासा भासमानं तम्।
इष्टमनिष्टनिवृत्त्यै स्वेप्सितसिद्ध्यै च वन्देऽहम्॥१

गुरौ कुर्वे गुर्वी नमनततिमुर्वीतलपरि-
स्पृशन् मूर्द्धा श्रद्धादररति निबद्धामलमतिः।
यतः स्वादु स्वादु स्फुरदमृतमास्वादितमलं
यशस्यं शस्यं वाग् विलसितमयं रस्यमतुलम्॥ २१॥'

इसके बाद ८ पद्यो में महाराजा मानसिह जी, महाराजकुमार जगत्सिंह जी एव उनके पुत्र महाराजकुमार महासिह का वर्णन किया गया है। उसके बाद श्री जयसिंह का वर्णन है -

'तस्यात्मजः कुलकदम्बकुलाम्बुदोऽय-
मुद्भूतवैरितिमिर - प्रशमप्रदीपः।
यो जन्मनैव जयशालिकृती पृथिव्यां
नाम्ना ततो विजयते जयसिंह देवः ।११॥'

अग्रिम पद्य में लेखक अपनी रचना के सबद्ध में निवेदन कर रहा है-

'तस्यैवाद्भुतकर्मणः श्रुतगुणग्रामानुरागोदिता-
ऽमन्दामोदरसेन मे खलु रुचिर्यद्वर्णनायाभवत्।
तच्चम्पूं सुयशः प्रतापरचनां चित्रां तनोम्युत्सुकः
साम्यश्लेषविरोधरूपकलसज्जात्यादिभिर्भूषिताम् ॥१२॥'

अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार अंकित है-

'इति श्रीमत्तैलङ्गवर पञ्चनदान्वयोद्दाम-दामोदरसूनुर्कविगोपाल-विरचिता विजयवर्णनमनोरमा जयचम्पूः सम्पूर्णा। शुभं भवतु। संवत् १७१८ वर्षे वैशाख वदि ६ बुधवासरे लिखितमिदं पुस्तकं विद्वज्जनदर्शनाय॥

मैने **'मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम एवं तत्कालीन विद्वान्'**- शीर्षक लेख में, जो पिलानी (राजस्थान) से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'मरुभारती' (१३ वर्ष प्रथम अक, अप्रैल १९६५ ई.) में प्रकाशित हो चुका है, तत्कालीन विद्वानों का परिचय प्रस्तुत कर दिया है, जो यहाँ संकलित है। श्री बहुराजी ने एक तथ्य की ओर संकेत किया है कि मिर्जाराजा जयसिंह ने अपने पुत्र महाराजकुमार रामसिंह के अध्ययनार्थ काशी में एक संस्कृत विद्यालय खोला था, जो संभवत· **'मानमन्दिर'**

काशी मे चलता था। इसमें बडे-बडे पण्डितों को सस्कृत पढाने के लिए नियुंक्त किया गया था। **'पिंगलहमीर'** नामक हस्तलिखित पुस्तक के मार्जिन में यह सकेत मिलता है कि ३२ पत्रात्मक हस्त रचना के १४ पत्र महाराज कुमार रामसिह के महल मे अध्ययनार्थ **श्री हरिजीवन मिश्र** ने प्रतिलिपि करवाये थे। श्रीहरिजीवन मिश्र तत्कालीन सस्कृत नाटककार थे, जिनकी अनेक नाट्यकृतियां प्रसिद्ध हैं। इनमे १. **'विजय पारिजात'** नाटक (लेखनकाल- १७३० सवत् १६७३ ई.), २. **प्रासंगिक प्रहसन, ३. सहृदयानन्द, ४. विबुधमोहन, ५.अद्भुततरंग** का उल्लेख डॉ एम कृष्णमाचारियर अपने इतिहास में करते है। अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में इनकी निम्नलिखित नाट्य कृतियो की, जानकारी प्राप्त होती है-

१. **अद्भुत तरंग**- ग्रन्थांक ३१२२ हरिजीवन मिश्र पुत्र लालमिश्र पुत्र वैजनाथ मिश्र ई. १९१६।

२ **घृतकुल्यावलि** -३१५१-७ पृष्ठ (१-९ खण्डित)

३. **पलाण्डुमंडन प्रहसन**- ३१६३ - १२ पृष्ठ

४. **प्रासंगिक प्रहसन**- ३१७१ - ७ पृष्ठ

५. **विबुधमोहन** - ३२००-८ पृष्ठ

६. **सहृदयानन्द प्रहसन** - ३२०२ - १२ पृष्ठ

इनके अतिरिक्त **'प्रभावली नाटिका'** राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जोधपुर में १२२५८ क्रमाक पर उपलब्ध है। इनमे **'विजयपारिजात'** का नाम भी मिलता है, यह रचना नहीं मिली थी, जो अब पोथीखाने में उपलब्ध हो गई है। अद्भुत तरंग, सहृदयानन्द प्रहसन व प्रभावली नाटिका मे ही राजा रामसिह का नामोल्लेखन हुआ है। इनमे घृतकुल्यावलि, पलाण्डुमडनप्रहसन, प्रभावली नाटिका व विजयपारिजात नाटक की प्रति पोथीखाने मे प्राप्त है।

श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे महाराज रामसिंह प्रथम कालीन विद्वान् रहे हैं। इनके द्वारा रचित **'शृंगारवापिका'** नाटिका (राजकुमार विष्णुसिह के मनोविनोदार्थ) का उल्लेख मिलता है तथा इन्होने म. जयसिंह द्वितीय के प्रसादनार्थ

'रामविलासकाव्य' की रचना की, जो अब प्रकाशित हो चुका है। इनकी तृतीय रचना का नाम **'शम्भुविलास'** काव्य है।

> **'श्रीषट्केन समन्वितं प्रथमतो नत्वा गुरुं बुद्धिदं**
> **विघ्नध्वंसपरायणं च हृदये ध्यात्वा गणाधीश्वरम्।।**
> **नानालङ्कृतिरीति-जातिमहितं श्री विश्वनाथ· कविः**
> **काश्यां शम्भुविलास नाम कुरुते संख्यावतां प्रीतये।।'**

इनमे **'शृंगारवापिका'** नाटिका का हस्तलिखित ग्रन्थ इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लन्दन मे सुरक्षित बताया जाता है। महाराज रामसिंह प्रथम के समय हिन्दी के प्रसिद्ध कवियो में बिहारीलाल, कुलपति मिश्र, कृष्णजीवन, खड्गसेन,दूनाराय नन्दन, प्राणनाथ श्रोत्रिय, रामचन्द्र दुबे, तथा रूपा कवि स्मरणीय माने जाते है।

(मिर्जाराजा) **महाराज रामसिंह प्रथम** के समय पुस्तकालय समृद्ध हुआ तथा इस समृद्धि में उनकी रानियो का भी योगदान स्मरणीय रहा, जिन्होने अनेक ग्रन्थो की सुन्दर प्रतिलिपियाँ की । महाराज रामसिह के पुत्र श्री कृष्णसिह अपनी युवावस्था में २८ वर्ष की आयु मे परन्दा (दक्षिण) मे १० अप्रैल सन् १६८२ ई को दिवगत हो गये। पुत्र निधन से अत्यन्त खिन्न म. रामसिह भी कोहट मे आसोज बदी ५ पचमी १७४६ सवत् (१६८८ ई.) में दिवगत हो गये। इसके बाद मात्र ११ वर्ष श्री विष्णुसिह शासक रहे तथा १६९९ ई. में उनके निधन के बाद म. सवाई जयसिंह आमेर के शासक बने।

'रामविलास' काव्य की उपलब्धि से अनेक तथ्य प्रकट हुये हैं। **श्रीविश्वनाथ कवि** ने इस काव्य मे **श्री रत्नाकर पौण्डरीक** का वंशपरिचय विस्तार से प्रस्तुत किया है, जो इस बात का संकेत देता है कि पौण्डरीक परिवार का सबन्ध महाराज रामसिंह प्रथम के साथ भी था, जब वे काशी में अध्ययन करते थे। एक पद्य है-

> **''काश्यां धर्मपरायणो बुधवरः शाण्डिल्यगोत्रो महा-**
> **शब्दोपाख्य इह प्रसिद्धविभव· श्री देवभट्टो द्विजः।**
> **मान्यः सर्वमहीभृतां विजयते श्रीरामसिंहार्चितो**
> **वेदार्थस्य विचारकृत् प्रतिदिनं पुत्रादिभिः शोभितः ।।'**

(सर्ग-३/४)

इस पद्य मे श्री देवभट्ट म. रामसिह द्वारा अर्चित बतलाये गये हैं तथा 'विजयते' क्रिया वर्तमानकाल का सकेत कर रही है, पहले यही अवधारणा थी कि महाराज स. जयसिह द्वितीय ही श्री रत्नाकर पौण्डरीक को उनके गुरु प. नागेश भट्ट की अनुज्ञा से जयपुर लिवा लाये थे।

अन्यान्य रचनाओं मे-**'जानकी राघवम्'** नाटक का उल्लेख तो मैने अपने शोध प्रबन्ध मे किया था, परन्तु उसकी उपलब्धि न होने से सही विवरण प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। पोथीखाने के सर्वेक्षण के बाद वह स्पष्ट हो गया कि यह रचना **महाराज रामसिंह की स्वरचित** है। इसका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

इसका प्रारम्भ है -

'६४ (ग्रन्थाङ्क) जानकीराघवम्-द्वारा महाराजकुमार रामसिंह

'केयं देव तवोत्तमाङ्गसुभगा पीयूषभानो· कला
तस्या अप्युपरि स्रगम्बुनिचयः कस्मात्तवेर्ष्याजुषः।
पादान्ते प्रणते मयि प्रियतमे स्वेदाम्बुधाराऽभवत्
एषा सेति समाकलय्य गिरिजा नम्रानना पातु व ॥९॥'

अपि च-

'कस्त्वं कासि भवान् स्वयं कथयतु प्राणेश्वरी कस्य मे
श्रीकण्ठः किमु ते निजः परिजनः प्राणेश्वरस्तद् भवान्।
इत्थं मोहमुपेयुषो रसलवामासेदुषो संविदम्
गौरीशङ्करयोः स्खलन्नवसुधा धारागिरः पातु वः ॥२॥'

नान्द्यन्ते-

सूत्रधार -अलमतिविस्तरेण। (नेपथ्याभिमुखीभूय नटीमालक्ष्य)-प्रिये! इतस्तावत्।

नटी-(प्रविश्य) इयम्हि,आणवेदु अज्जो।

सूत्रधार·- प्रिये, आदिष्टोऽस्मि नानादिग्देशागतै श्रीरामनवमी यात्रोत्सुकैरसख्यात-

सख्यावद्भिर्यत्ताण्डव-मण्डनाचार्यकर्णितमेव युष्माभि

'मध्याह्ने स मरीचिमालिकिरणप्रकान्तविक्रान्तभू-
र्धीरोदात्तगुणैरलङ्कृत मतिर्वैदग्ध्य-दीक्षागुरु ।
इक्ष्वाकोरिव मानसिह नृपतेर्गोत्रे गुरोस्तेजसां
धारायां जयसिंहवीरतनय. श्री रामसिह प्रभु ॥३॥'

यमुद्दिश्य प्रतिदिशि प्रगायन्ति गाथा कवय -

'वतंसमरिकामिनी धरणिरेक-कर्णान्तिकां
वृष· कलिज पंगुतां कमलया कलिं भारती।
अनङ्गपदमुज्जहौ मदन उज्जिहाने क्षितौ
महीन्द्र जयसिंहजे जयति रामसिंहे प्रभौ ॥४॥'

अपि च-

'देव्यौ वाचां विभूतेर्व्यपगतकलुषे यन्मिथः प्रेमरक्ते
कुर्वाते स्वैरलीलां ललित-विलसितैर्नायके रामसिंहे।
सृष्टिर्नव्या तु धातु. किमुत रतिगुरो. शिल्पसार कवीनां
कान्तासौभाग्य-कन्दाकरगुरुतपसामीदृश किं विवर्त्त ॥'

अन्तिम 'पुष्पिका' है। इति सरस्वती कमलाकलानिर्यासार्णवकर्णधार महाराजकुमार श्री रामसिह विरचिते जानकी-राघवनाम्नि नाटके कोसलप्रवेशो नाम सप्तमोऽङ्क । समाप्तश्चाय ग्रन्थ श्रीरामाय नम । सवत्-१७२१

'वैशाखमासस्यासिते पक्षे अष्टम्यां भृगुवासरे।
लालाभिधेन लिखितं मुदे भवतु धीमताम् ॥ श्रीरस्तु ॥'

इस ग्रन्थ मे रामकथा व ताडका वध का प्रसग वर्णित है। प. गोपालनारायण बहुरा जी ने इस नाटक के रचयिता महाराज कुमार रामसिह प्रथम पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाया है, क्योकि आफ्रेच्ट ने एक' जानकीराघव' नाटक का उल्लेख किया है, जिसका उद्धरण 'साहित्य-दर्पण' मे प्राप्त होता है। साथ ही श्रीरामनाथ रचित ' त्रिकाण्डविवेक' मे भी उल्लेख है, परन्तु वहाँ लेखक का नाम नहीं दिया है। ऐसे भी श्री विश्वनाथ (साहित्य-दर्पणकार) का समय १४ वीं शताब्दी माना गया है।

श्रीकृष्णमाचारियर ने 'जानकी-राघवम्' का उल्लेख कर उसे युवराज रामसिंह पुत्र जयसिंह (१६२५ ई.) की रचना बताया है। इसकी प्रति नेपाल पुस्तकालय में बताई गई है। म. रामसिंह का जन्म पोथीखाने में उपलब्ध रिकार्ड के अनुसार भाद्रपद पंचमी १६९२ विक्रम संवत् (१६३५ ई.) में माना गया है तो उन्होने १६२५ ई. में इसकी रचना कैसे की, यह चिन्तनीय है। नेपाल प्रति से पोथीखाने की प्रति का मिलान कर समस्या का समाधान किया जाना चाहिए।

'धातुमंजरी पददीपिका' एव **'रूप मंजरी पददीपिका'** नामक दोनो कृतियाँ भी म. रामसिह की रचनाये कही जाती है। 'रूपमजरी पद दीपिका' के इस पद्य से ज्ञात होता है कि लेखक पर्याप्त विद्वान् है-

'शब्दब्रह्मात्मकं रामनामैवार्थ - प्रकाशनम्।
प्रकृतिप्रत्ययाभ्यासात् साधितं द्योतते रामः ॥'

महाराज रामसिह रचित **'राजोपयोगिनी-पद्धतिः'** की प्रति भी पोथीखाने मे उपलब्ध हुई है। मगलाचरणात्मक पद्य मे तो नहीं, ग्रन्थान्त पुष्पिका में इसका स्पष्ट उल्लेख है-

प्रारभ- **'विनायकं विभुं रामं गुरुं नत्वा समासत·।**
नित्यानुष्ठानसरणि' स्वोपयोगि तथाऽऽरभे ॥'११ ॥

अन्त- **'दृष्ट्वा भाष्यं निबन्धांश्च मन्वादींश्च स्मृतीरपि।**
पद्धती रचिता सेयं नाम्ना राजोपयोगिनी ॥'

पुष्पिका- इति श्रीमहाराजाधिराज श्री जयसिहदेवात्मज श्री रामसिहदेव विरचिता राजोपयोगिनी पद्धति समाप्तिमगात्। सवत्१७४१ ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठ्यां लिखितमिदं पुस्तक श्रीरामसिहदेवाज्ञया श्रीरामनाथेन ॥ मु. जमरोज।

श्री रामसिह केसमकालीन अन्य सस्कृत विद्वानो मे **श्री नीलकण्ठ** ने **गुणदूत काव्य'** की रचना की थी। इसी प्रकार- **श्री यज्ञेश्वर दीक्षित** ने **'रामसिंहीय वृत्तमयूखमाला'** (१७१५ वि. सं.) **श्रीनीलकण्ठ** (श्रीकण्ठोपनामक) ने **'कीर्तिचन्द्रोदय'** श्रीगोपाल भट्ट के पुत्र **श्री शंकरभट्ट** ने **'वैद्यविनोद'** तथा **विश्वनाथ चित्पावन रानाडे** ने **'शृंगारवापिका'** आदि तीन ग्रन्थों का निर्माण किया

था। इनमे से कतिपय का परिचय दिया जा चुका है।

महाराज विष्णुसिंह का शासनकाल मात्र ११ वर्ष रहा। इनके समय तन्त्र-मन्त्र विशारद **पं. शिवानन्द गोस्वामी** का आमेर मे आगमन हुआ। ये पहले चेदिनरेश के आश्रय मे थे तथा फिर आमेर से बीकानेर चले गये थे। इस परिवार का संस्कृत वाड्मय को महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उनमे श्री शिवानन्द भट्ट के दो भ्राताओं **श्रीजनार्दनभट्ट** एव **चक्रपाणि गोस्वामी,** उनके पौत्र **श्रीनिकेतनगोस्वामी** एव अन्य कतिपय के नाम सस्मरणीय है। श्री शिवानन्द गोस्वामी ने महाराज विष्णुसिह का पूर्णाभिषेक किया था तथा 'श्रीविद्यामन्त्र ' की दीक्षा दी थी। **'वंशप्रशस्ति'** नामक ग्रन्थ का उल्लेख इसकी पुष्टि करता है-

' आम्बेरेश्वर-विष्णुसिंहनृपतिः पूर्णाभिषिक्तो गुरुं
पंच ग्रामवरान् समर्प्य चरणार्चां तस्य भक्त्याऽकरोत्।
तेनाभ्यर्चित-पादपद्मयुगलः श्रीमच्छिवानन्दनो
देवाराधनसिद्धिदां क्षितिमिमां मत्वान्वगृह्णन्नयम्॥'

'ईश्वरविलास' महाकाव्य- कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्ट रचित इन विषयो का स्पष्ट उल्लेख करता है, जो तत्कालीन रचना होने से प्रामाणिक है-

'श्रीविद्यामन्त्रदीक्षाकरणपटुमतेः श्रीगुरोः पादपद्मे
ग्रामान् कामाभिरामांश्चतुर उदसृजत् पूरयन् पाद्यपाथः।
यश्चैष श्री भवानीपुरमथन-पराम्भोजभक्तिप्रभावा-
न्निस्त्रैगुण्यं पदं तत्समलभत परं सच्चिदानन्दमेकम्॥'

(द्वितीय सर्ग- सप्तम पद्य)

गोस्वामी परिवार का योगदान आमेर-जयपुर-बीकानेर मे विभक्त रहा है, फिर उसे राजस्थान का योगदान मानकर स्वतन्त्र लेख से प्रस्तुत किया जायेगा।

***

'पृथ्वीराज-विजय'
एक ऐतिहासिक महाकाव्य

आमेर-जयपुर के शासक सूर्यवशी कछवाहा है, जिनका सबन्ध भगवान् श्रीराम के पुत्र कुश के साथ जोडा जाता है। इतिहास में इन्हे 'कच्छपघात' के नाम से लिखा है। सवत् १०८८ के एक शिलालेख से , जो देवकुण्ड नामक स्थान पर मिला था, विदित होता है कि ९७७ ई. (संवत् १०३४) मे वहॉ पर 'वज्रदामन्' नामक एक प्रतापी राजा राज्य करता था। इसने कन्नौज के राजा विजयपाल परिहार पर विजय प्राप्त कर ग्वालियर राज्य को अपने अधिकार में कर लियाा था। वज्रदामन् के पुत्र का नाम मङ्गलराज था। श्री मङ्गलराज के छोटे पुत्र सुमित्र और उनके क्रमश मधु ब्रह्मा, कहान, देवानीक, ईश्वरीसिह (ईशदेव) तथा सोढदेव हुए। महाराज सोढदेव ही प्रथम व्यक्ति है, जिन्होंने दूढाड प्रदेश पर अपना अधिकार किया था।

इस कच्छवशीय शासकों की वशावली के मूल पुरुष है- **महाराज ईशदेव**। ये ग्वालियर के शासक थे, जिसे तत्कालीन इतिहास मे गोपाद्रि' कहते है । इस पर उनके भगिनीपुत्र श्री जयसिंह तवर का शासन हो गया था, जिसके सबन्ध मे अनके मतभेद हैं। प्राचीन रिकार्ड से यही सिद्ध है कि महाराज सोढदेव को अपने पिता का राज्य नहीं मिला। इन्होंने करौली की तरफ अमेठी नामक स्थान पर शासन किया था। उनके पुत्र का नाम '**दूलहराय**' था। इनका विवाह मोरा के राजा रालणसी **(रालणसिंह)** चौहाने की पुत्री 'सुजानकुंवरी' के साथ सम्पन्न हुआ था। इनकी सहायता से ही श्री दूलहराय ने द्यौसा (दौसा) पर अधिकार किया और वहॉ के शासक

मीणो एवं बडगूजरों को युद्ध में परास्त किया। इनको दूल्हा भी कहते थे और इसी को अग्रेजी मे लिखने की भ्रान्ति से राजस्थान के इतिहासकार कर्नल जेम्स टाड ने इन्हें **'ढोला'** के रूप में प्रस्तुत किया है। इन्होंने 'जमवाय माता' का मन्दिर बनाया था, जब 'मांची' पर विजय प्राप्त की थी। यह मन्दिर मांची से ३ कोस पर आज भी विद्यमान है। इनके पुत्र का नाम **काकिल जी** था, जिन्होंने आमेर बसाया था। **'काकिल जी आमेर बसायो'**-(मुहता नैणसी री ख्यात जयपुर भाग एक) । तभी से सवाई जयसिंह द्वितीय तक आमेर इन कछावाहो की राजधानी रही। श्री जयसिह ने जयपुर बसाकर राजधानी मे परिवर्तन किया था। जयपुर के कछवाहों की वशावली बहुत विस्तृत है, उसके प्रस्तुतीकरण की यहाँ आवश्यकता भी नहीं । जिस काव्य का विवेचन कर रहे हैं, उसमें यह वशावली उपलब्ध है, इससे साहित्यिक प्रमाण भी उपलब्ध हो जाता है। जैसाकि इसका नाम है, (पृथ्वीराज-विजय)इस वंशावली में **श्री पृथ्वीराज** १८ वीं पीढी मे हुए थे। यह इतिहास से प्रमाणित तथ्य है।

एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ते मे सगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों में इतिहास विषयक एक ग्रन्थ आमेर-जयपुर के शासको से सबद्ध भी है। इसका नाम **'पृथ्वीराज-विजय'** है। यह क्रमांक १०४३४ पर उपलब्ध है। प्रकाशित सूचीपत्र में इसकी विगत इस प्रकार है-

substnance	-	country made paper.
Size	-	5x9 inches.
Folio	-	12 [Marked by M.M. Harprasad shastry, vice president of Asiatic Society Calcutta.]
Line	-	9to12 in a page.
Character	-	Modern Nagar.
Appearance	-	Solid,written lengthwise & on the one side. The former owner of the Manuscript thought the 7th leaf to be the first on which he wrote-

'गोकुलप्रशादस्येदं पुस्तकं पृथ्वीराजविजय खण्डित् १२ पत्राणि।''

इस ग्रन्थ मे ६२४ वे पद्य से ७७९ पद्य तक उपलब्ध हैं। इनमें आमेर के कछवाह शासकों का इतिहास है। इतिहास के आधार पर हम इसकी आलोचना प्रस्तुत करते हैं। ग्रन्थ के नाम का औचित्य विचारणीय है। लेखक का नाम कहीं भी नहीं आया है। इसे ऐतिहासिक महाकाव्य न कहकर केवल काव्य की ही संज्ञा देगे, जो १२ पत्र उपलब्ध है, वे अपने में पूर्ण हैं। कहीं-कहीं पर अशुद्ध अवश्य है और दुर्वाच्य भी। पलब्ध १५६ पद्यों में २० शासकों का वर्णन है।

इस ग्रन्थ का प्रथम श्लोक (उपलब्ध ६२४ वां इस प्रकार है-)

'स श्रीमानुपगृह्य हर्षदकृतिस्तत्पारिबर्हं ततो
विस्मेरीकृत-सर्वलोकनिवहो रम्यैरनेकैर्गुणैः ॥
औदार्यादिभिराविधाय विधिवद् वैवाहिकांस्तान् विधीन्
स्तेनैनु व्रजता समं कतिपयैः प्रत्याययौ पद्धतिम्' ॥६२४॥

यह महाराज सोढदेव का वर्णन है। महाराज सोढदेव ने यादव कुल की राजकुमारी से विवाह किया था, जिसके गर्भ से 'दूलहराय' उत्पन्न हुए थे। (जयपुर का इतिहास-प. हनुमान शर्मा चौमूं -पृष्ठ१३-१४) जैसाकि हम विवेचन कर चुके हैं, इनके पिता का नाम महाराज ईशदेव था। इनका देहावसान संवत् १०२३ में हुआ था। इस पद्य में उल्लेख न होने पर भी यह कहा जा सकता है कि यह पद्य महाराज सोढदेव से संबद्ध है, क्योंकि इसकेबाद इनके पुत्र दूलहराय की उत्पत्ति वर्णित है।

इन्हीं सोढदेव के विषय में कुछ पद्य है,जिनमें इनके विवाह तथा शृङ्गार का विवेचन है। इनके विवाह से इनकी माता बहुत प्रसन्न हुई थी।पद्य है-

'धीमान् नीतिविशारदो विदमित-प्रोन्नद्ध-दस्युव्रजो
भूपालेन्द्र-विभाविताखिलविधिर्वाग्भिर्विदाम्यत् खलः ॥
कन्दर्पातिमनोहरो नववधूहृद्वारिजहृत्करो
राजा रञ्जित-सर्वलोकनिवहो मातुर्वितेने मुदम्' ॥४२३॥

इसके पश्चात् दो पद्य शृंगारिक हैं, जिसमें नववधू का सज्जित होकर अपने वीर पति के पास आना तथा पति का उसके साथ विलास वर्णित है। रानी गर्भवती होती है तथा पुसवनादि क्रियाये यथाविधि सम्पन्न की जाती हैं। श्री दूलहराय का जन्म होता है।

**'दानप्रीत-महीश्वराभिहितगा रागाभि-शर्माश्रया
देवी-दर्शन-लस्यमानमहिमा देव्या विजज्ञे सुत. ।
भूपालस्य शुभाशया ग्रहवरैरावेद्यमानोदये
लग्ने लग्नपतौ बलीयसि पिता प्राचेतसं दूल्लहम्' ।।६३१ ।।**

क्रमश। बाल्यकाल व किशोरावस्था को पार कर दूलहराय युवा बने। तरुणावस्था मे उनकी आभा दर्शनीय थी। विवाह सम्पन्न हुआ। जैसाकि इतिहासो में लिखा है- श्री दूलहराय ने एक ही विवाह किया था। वह भी मोरा के चौहान रालणसिह की पुत्री सुजान कुवरी के साथ। चौहान रालणसिह का दौसा(द्यौसा) पर आधा अधिकार था। इन्होंने इसे दूलहराय को दहेज मे दे दिया था और कुछ सैनिक सहायता भी दी थी , जिसकी सहायता से दूलहराय ने मीणों व बजगूर्जरों को परास्त कर सम्पूर्ण दौसा अपने अधिकार में कर लिया था। दूढाड प्रदेश में इन कछवाहो का यह प्रथम स्थान था। इसे ही उन्होने राजधानी बनाया था।

**'वीर श्रीरुचिताश्रितो गुणगणैरुज्जृम्भमाणो बलै-
र्निघ्नन् वैरिजनान् गजानिव बली पंचाननो हेतिमान्।
राजेन्द्रप्रतिनन्दितेन गुरुणा राजन्यकन्यां शुभां
चन्द्रास्यां प्रतिलम्भितोऽधि-शुशुभे चन्द्रो यथा, रोहिणीम् ।।६३५'
'जित्वा सत्वर-जित्वरो रिपुजनान् द्यौसाचलस्थायिनो
रम्यं स्थानमवेक्ष्य स क्षितिपजो वस्तुं समीहां दधौ।।
आहूय स्वजनान् स्वकं च जनकं तद् गोपनाय प्रभुं
तत्रैवोत्थ-निजोजिसाधु-विजयी प्रत्यर्थिनां निर्ययौ' ।।६३६**

इसको जीतने पर श्री दूलहराय ने 'माची पर अधिकार किया। 'हितैषी' (जयपुर अक)मे 'जयपुर के राजवश' का वर्णन करते हुए- प. श्री हनुमान शर्मा(चौमूं) ने लिखा है-

'अपने पिता की आज्ञानुसार श्री दूल्हरायजी ने सर्वप्रथम 'मांची' के मीणों पर चढाई की, जिसमे वे असफल रहे। उस फतह का मीणों ने एक जलसा किया। सब मीणे मदिरा पीकर जब मस्त हो रहे थे, तब इन्होने पुन· धावा किया और उन्हें मार भगाया तथा उनके राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में

दूलहराय ने मांची से तीन कोस पर एक देवी का मन्दिर बनवाया, जो जमवायमाता के नाम से आद्यावधि वर्तमान है'(पृ.५१)

कुछ पद्यो मे युद्ध का वर्णन किया गया है-

'सैन्यं शत्रुविभीषणं गजरथ-व्यूहैर्हयारोहिभि·
वीरैर्भूरिपदाति - वर्ग - शतकैरग्रेसरैर्दुर्जयम् ।।
आदायाभिजगाम धाम अपरं बिभ्रत्स धीरोत्तमो
मांची नामपुरीं परैरविजितां जेतुं जनेशात्मजः' ।।६३७ ।।
'आरुह्योरुजवं महाश्वमभितो वीरैरनेकैर्वृतो
भिन्दन्नापततोऽसिपाणि-रहितान् वीरानिभारोहिणः ।
कुम्भे दन्तयुगे च वाजिचरणानुच्चैरिभानां दधत्
वाहस्याशु जघान वारिणि गजो दीर्घास्तरङ्गानिव' ।।६४२ ।।
'एवं गर्जति सिंहराजतनये सिंहायमाने परं
धर्मं संब्रुवति व्यतीतसुकृता हित्वा रणं निर्घृणाः ।
द्राक्सर्वेपि तिरोदधुर्निजबलै-रुद्धा स्व ये दन्तिभिः
सोऽग्रीभूय रणांगणस्थविजयी रेजे सहायोऽपि सः' ।।६४९ ।।

युद्ध मे विजय प्राप्त कर राजा दुर्लभराय भगवती की स्तुति करते है। इसमें भगवती की गुणमहिमा वर्णित है-

'या भीतेन विरंचिना परिणुता हन्तुं मधुं कैटभम्
विष्णुं बोधयितुं च नेत्रयुगलादाविर्बभूवार्चिकम् ।
तस्यैषा विजयप्रदा निजपदं संसेदुषोऽधीश्वरी
पायान्त· शरणं रणाङ्गणगतानागत्य लोकाम्बिका' ।।६५२ ।।

अतिम पद्य है-

'या सर्वाशयवेदिनी गुणमयी वेदैरशेषैर्नुता
चिद्रूपा च परावरान्तरचरी चित्तादि-संचारिणी ।
सा माता जगतां मतिर्मतिमतां मां तिग्महेतिक्षतं
चक्षुर्गोचरतामुपेत्य सदया पायात्पतन्तं शिवा ।।६६० ।।'

स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने दर्शन दिये। राजा सोढदेव के पुत्र दूलहराय को बालक के रूप में संबोधन करती हुई उसने राजा की प्रशसा की और उसे आशीर्वाद प्रदान किया-

'एवं दुर्गतिहारिणी रणगते दुर्गा प्रणम्यावनौ
पित्सत्यंगुलिकास्ति तत्समयुगे व्यादीर्यमानव्रणे।(?)
तस्मिन् वीरवरे विमुह्यति महो विध्वंसितध्वान्तिका
भक्तत्राणमहाव्रता सकरुणा प्रादुर्बभूवाम्बिका ॥६६१॥'
'मापन्नो विमुहोऽपि तन्नहृदय-प्रोदग्रतापावली
वेलेव प्रतिरोद्धुमम्बुधि-चलत्कल्लोलमालामहम्।
वर्ते संप्रति सन्निधौ तव जवादेवाजयश्रीरिव
श्रीमानेधिसमेधिताखिलवलो 'काले'ति सा तं जगौ॥'
पीयूषायितमेतदेव वचने तस्या निपीयोत्थितं
प्रोत्थाय प्रणनाम वर्णित-गुणैर्विश्वाम्बिकाया बुधैः॥
श्रीमत्याश्चरणाम्बुजद्वयमिदं भाग्यं ममाहो महन्
मन्दस्येति विभावयन् दृढमतिः श्रीसोढदेवात्मजः॥६६३॥
'प्रीतास्मि त्वयि निर्भयेन मनसा दुर्हृद्बले भीषणं
पाथोधिं तरसा विलोकितवती श्रीकोलविष्णाविव॥
क्षात्रे विक्षतविग्रहे ऽप्यजहति पेयं स्वधर्मं परं
रक्तस्राव - सुतोषितस्वकगुणा शृण्वेहि कोदन्तकम् ॥ ६६६॥

इसी समय भगवान् नारद दिखाई दिये। राजा ने उन्हें देखकर प्रणाम किया। श्रीनारद मुनि ने भी भगवती की अर्चना के लिए ही उपदेश दिया-

'दैवादेव तदैव देवपथगो दृग्गोचरो नारदो
वीणापाणिरुदाननीकृतमृगो वेगोद्वमद्दीप्तिगः।
दृष्टो हृष्टतनूरुहेण सहसा वेधो भुवाभ्यर्थितो
लब्धार्थी कृतज्ञातदर्शनजनो नत्वा विमिन्ये भुवम् ॥६७०॥'

मुनि नारद ने उपदेश दिया-

'शक्तिं सर्वविधायिनीं भज विभो! भक्तप्रियां शक्तये
भ्रातर्भ्रातरमार्तिशमिनीं विभ्राजिनीं जन्मिनाम्।
सा शीघ्रं मनसा धृताङ्घ्रिकमला विध्यच्युतेशार्चिता
चिन्ता सन्ततिमोचिनी भगवती कर्त्री च तेऽभीप्सितम् ॥६७२॥

राजा दूलहराय ने पुन भगवती की आराधना प्रारम्भ की। सन्तुष्ट होकर भगवती ने उसे दर्शन ही नहीं दिये, अनेक वरदान भी दिये। राजा ने उसका मंदिर बनवाकर वहाँ स्थापित कर दिया। यह मन्दिर 'जमुवायमाता ' के नाम से प्रसिद्ध है, जो माची से ३ कोस दूर है। रामगढ के बन्ध से कुछ दूर, अनुमानत २ मील नीचे 'जमुवा रामगढ' नामक ग्राम है, वहीं देवी का प्राचीन मन्दिर है।

'श्रीभिर्मिश्रितमेनमाश्रुतवचा माता कृतानुग्रहा
गुह्यानुग्रहणोचितां धियमथ प्रागल्भ्य-गर्भां मुदा।
दिव्यां च प्रतिमां दधानमधिकां विक्रांततां कुर्वती
भूयो वाचमिमामुवाच रुचिरां तं सर्वलोकेश्वरी॥६७६॥'
'याहि त्वं विजहीहि संशयहतां चिन्तां सुचिन्तामणौ
चिन्तान्तर्निहिते हिते पदयुगे याभ्यर्हिते मामके।
साहं पूर्विकमापतन्ति सहसा संचिन्तितार्थालयो
व्यर्थार्था विलयो पयः सुनिगतो नश्यन्ति सर्वेऽरयः॥८२॥'
'तत्सर्वं स निशम्य रम्यसुषमे देवीं स्वनामाङ्किता
सद्यो जाम्बवतीं निवेश्य भवने हृद्याकृतिं कल्पिते।
देवी वागमृतस्तुतिग्रह-बृहत्स्फूर्तिप्रभावोदयो
धुर्यो निर्धुतसंशयोधृतजयो धीयोगिनामुद्ययौ ॥ ८४ ॥'

प. श्री हनुमान् शर्मा ने अपने जयपुर के इतिहास में महाराज दूलहराय का परिचय देते हुए लिखा है-

१. वंशावलियो में लिखा है कि माची की पहली लडाई मे दूलहरायजी मूर्च्छित हो गये थे। तब वहाँ की 'बुढवाय' माता ने सपने मे कहा कि 'डरो मत, दुबारा चढाई कर। मरी हुई सेना मजीव हो जायगी और तुम जीतोगे। यह

सुनकर दूलैराय चैतन्य हुए और दारू पीये और मीणो को मारकर माची में अधिकार किया।'(पृ.१५)

२. 'मांची विजय की यादगार मे दूलैरायजी ने माची से तीन कोस पर नाके मे देवी का नवीन मन्दिर बनवाया था और उसको 'बुढवाय' के बदले 'जमवाय' नाम से विख्यात किया था। इस अवसर तक दूलैराय जी दौसा ही रहे थे। किन्तु 'माची' मे अधिकार हो जाने से वहॉ रामचन्द्र जी के नाम पर 'रामगढ' बसाया और वही रहने लगे। (पृ. १६)

म. सवाई जयसिंह तृतीय के सभासद एव राजगुरु पं. श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर ने अपने सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य में उन घटनाओ को इस रूप मे उपस्थित किया है-

**'इत्थं स्थिते रात्रिरभून्निशीथे देवी पुरोऽस्याविरभूद्दयालुः।
आपन्नदीनोद्धरणव्रतं यन्न देवतानामिदमस्ति चित्रम्॥२७॥
उत्तिष्ठ वत्सेति वचो निशम्य देव्याःकुमारः सहसोदतिष्ठत्।
उत्थाय तां बुद्ध्यनुसारमेव स्तोतुं प्रवृत्तो व्यथितोऽपि देवीम्॥२८॥
नमोऽस्तु ते देवि विशालनेत्रे कृपानिधे त्वं शरणागतान्न·।
पाहि प्रशंस्यासि महेन्द्रपूर्वैः सुरैर्न चेत्तर्हि कुतो मनुष्यैः॥२९॥
अस्याः प्रतीरे खलु बाणनद्या· मूर्तिं महीयां यमवाय-नाम्नीम्।
विधाय संस्थाप्य यथावदेनां पूज्यामविच्छिन्नतया यजस्व॥३२॥
ततो यथा वैभवमेव तस्या निर्माय देव्या नरदेवसूनुः।
स्वं मन्दिरं तां यमवायदेवीमास्थापयामास यथावदर्चाम् ॥३८॥'**

इत्यादि (जयवंश महाकाव्य-प्रथम सर्ग. पृ. ३-५)

'सस्कृत-रत्नाकर' के सपादक स्व. श्री सूर्यनारायण जी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने 'मानवंश महाकाव्य' लिखना प्रारम्भ किया था। यह भी एक ऐतिहासिक काव्य है। इसके कुछ ही सर्ग प्रकाशित हैं। उपर्युक्त घटनाओं के सबध में उनका साक्ष्य इस प्रकार है-

'अथैकदाऽयं धृतसैन्यसंघो मश्चादिकान् ग्रामगणान् विजित्य।
ग्राहो यथा हन्ति सुपुष्टमीनान् तथैव मीनान् तरसा जघान ॥२०॥'

(मानवंश काव्ये द्वितीय सर्गे-पृ. ५१)

'भुवः पतिर्दूलहराय वीरो विजित्य माञ्चीं विजयप्रहृष्टः।
गिरि-प्रदेशे निजवंशदेव्याः विनिर्ममे मन्दिरमुच्चशृङ्गम् ॥१॥
देव्याः स'बुढ्वाय' इति प्रसिद्धं नामैष 'जमवाय' इति प्रचक्रे।
जम्वायमातुस्तु नितान्तरम्यं तन्मन्दिरं ख्यातिमिहाद्य यावत् ॥
यद्यप्यमुष्मिन् समये स द्यौसां समध्यतिष्ठन्नृपदूल्हरायः।
तथाप्यहो रामगढं गरिष्ठं न्यवासयत् पत्तनमेव शूर· ॥४॥
कुर्वन् स्थिति रामगढे स वीर. स्वराज्यसीमापरिवर्द्धनेच्छुः।
खोहं च गेटोरमहो विजित्य स झोटवाडं सहसा विजिग्ये ॥ ५॥'

(संस्कृत रत्नाकर- वर्ष८१ संचिका ३ अक्टूबर १९४१ पृ. ८८)

'इतिहास-राजस्थान'में भी श्री रामनाथ रत्नू ने लिखा है-'सोढदेव जी खोह विजय तक दूलहराय के साथ रहे थे। खोह में जाने पर उनकी मृत्यु हुई थी। खोह एक प्रकार से आमेर का ही अंग है।' (पृ. ८८)

इस ग्रन्थ में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है। खोह पर अपना अधिकार कर श्रीदूलहराय ने अपने पिता को दौसा सूचना भेजकर वहीं बुला लिया था और उनकी सेवा में रहने लगा था। वहीं श्रीसोढदेव का परलोकवास हुआ था -

''तातं दूतमुखेन वृत्तमखिलं सम्बोध्य साम्बं मुदा
देवी-वागमृत-स्तुतिप्लुतमतिः मित्रैः समेतोऽमितैः।
कोशादात्तधनो निधेरिव भृशं कर्तुं स वै मण्डपं
गण्डो भुञ्जदलि-व्रजैर्गजवरैरश्वैः सवीरै. ययौ'' ॥६९५॥
'धृत्वा सत्त्वसमूर्जितो हृदि शुभं देवी पदाब्जद्वयं
खोदेश-प्रमुखाः वरानविकलं प्रोत्खाय सर्वान् खलान्।
राज्यं प्राज्यतरं विधाय जनकं सत्सूनुतानन्दितं
कुर्वन् गर्व-विवर्जितोर्जितयशा रेजे स राजात्मज· ॥ ६९८॥'

श्री दूलहराय के पुत्र का नाम 'काकिल' था। काकिल के जन्म का वर्णन इस पद्य से प्रकट किया है-

'तस्य सान्वय-वर्द्धनस्य दयिता देवी मनोरञ्जिनो
देवाधीश-समद्युतेः समभवत् स्मेरस्फुरद्दोहदा।
काले सा सुषुवे जयन्त-सुषमं शर्म प्रकाशे ग्रहै-
रुच्चस्थैरभिसूचितैः स्थितितमो व्युत्सारि दीप्तिं सुतम्।।७०१।।
अन्या काकिल सोष्यते कुलवधू रुद्दाम-धामाद्भुतं
बालं लोक-मनोहराक्ततिमिति प्रोचुर्नरेशं जनाः।
सोऽप्येनं किल काकिलाभिधमथो संकथ्य सार्थाभिधं
देव्यन्या मम काकिलेति नृपतिर्यातिस्म चित्ते मुदम् ।। २।।''

(३) महाराज काकिलदेव (माघ शु .७ सं.१०९३ से वैशाख शु. १०संवत् १०९६)

अपने पिता श्री दूलहराय की आज्ञा लेकर महाराज काकिल ने 'भाण्डारेज' को जीतने के लिए प्रस्थान किया था। लिखा है-

''ताताज्ञां परिगृह्य दैवतमपि स्मृत्वा च नत्वा द्विजान्
वृद्धानष्टप्यपरान् परन्तपततिर्वाहानि वृन्दैर्भृताम्(१)।
सेनां बोधवरैर्नयन्नृपसुतो भीमप्रभां पत्तिभिः
भाण्डारेजि पुरीममण्डित-वपुर्वीरो विजेतुं ययौ ।।८।।''

'जयवश महाकाव्य' में श्रीसीताराम भट्ट पर्वणीकर ने भी इसी घटना की पुष्टि की है। लिखते हैं-

''राजा कदाचित्खलु सौढदेवैर्गृहीतुकामोऽजनि भाण्डरेजीम्।
स्वभाव एवैष हि विक्रमस्य युयुत्सुता प्रत्यहमुद्भवेद्यत्।।१६।।
विचार्य चश्चद् भुजदण्डवीर्य-नृपोत्तमः काकिलमादिदेश।
कुमारविक्रान्तिदिदृक्षुचित्तःस तु प्रणम्याथ युधि प्रतस्थे ।।१७।।''

इसके पश्चात् महाराज दूलहराय की दक्षिणयात्रा का उल्लेख है। यह वर्णन प्राय. सभी ऐतिहासिक ग्रन्थों मे मिलता है। परन्तु इसमे कुछ मतभेद है। वंशावली में एक स्थान पर लिखा है कि- 'आयुष्य के अन्त में दुलैराय जी ग्वालियर के राजा की

अर्जी पर वहाँ गये थे और दक्षिण से आये हुए शत्रुओ को परास्त कर ग्वालियर के जयसिह को सहायता दी थी।' एक अन्य वशावली मे लिखा है कि- 'ग्वालियर से दूलहराय घायल होकर आये थे और खोह में आकर सवत् १०९३ मे परलोकवासी हुए थे।'' वशावली की तीसरी प्रति के ११ वे पृष्ठ पर लिखा है कि-''दुलैरायजी ग्वालियर के युद्ध मे विजयी हुए थे और वही मरे थे।'' 'वीर-विनोद' मे भी ग्वालियर मे ही मरने का उल्लेख है। राजस्थान के इतिहास लेखक कर्नल जैम्स टाड ने तो इन सभी से भिन्न लिखा है तथा मीणों के द्वारा उनकी मृत्यु का उल्लेख किया है। वे तो काकिलजी की उत्पत्ति भी दूलहराय की मृत्यु के पश्चात् बतलाते है, जो किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ या प्रमाण से पुष्ट नहीं है।

श्री सीताराम भट्ट ने जयवंश महाकाव्य मे लिखा है कि ग्वालियर के राजा द्वारा बुलाये जाने पर दाक्षिणात्यो से युद्ध करते हुए ही महाराज दुलहराय की मृत्यु हुई थी।

''पतिर्गवालेर-पदस्य वार्तामश्रावयद्दूतमुखेन राज्ञे।
इदं पदं ते बलिनो ग्रहीतुकामाः प्रसह्येति हि दाक्षिणात्याः॥
हेतारतस्त्वं समुपेहि शीघ्रं तेभ्य. पदं स्वं परिपालय त्वम्।
वयं न तादृग्बलिनो यत.स्युः पराजितास्ते विमुखा भवेयुः॥
गत्वा गवालेरमसौ नरेन्द्रस्तैर्दाक्षिणात्यैर्बलिभिस्त्वनन्तै·।
शस्त्रास्त्र-विद्यानिपुणैः ससेनैरयुद्ध दोर्दण्डपराक्रमेण॥३४॥
स छिन्नभिन्नापघनो घनोऽपि पेपीयमानश्रुतशोणितोस्त्रै·।
लेभे महेन्द्रादवनीमहेन्द्रः सत्कारमर्हत्तममाशु नाके ॥३९॥''

(द्वितीय सर्ग- ३१ से ३९ श्लोक पृ.-९/१०)

'मानवश महाकाव्य' मे श्री सूर्यनारायणजी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने लिखा है-

'दुर्गे नवीने निवसन् प्रवीरो भुञ्जान आसीद् विविधान् सुभोगान्।
अथैकदा पत्रमवाप दीनं ग्वालेरराज्यस्य जयाभिधस्य॥६॥
लेखीऽभवत् तत्र तु राजपत्रे यद् दाक्षिणात्या रिपव. सुधीराः।
हर्तुं यतन्ते मम राज्यमेतत् संत्रायतामेत्य भवान् सुशीघ्रम्॥७॥
लब्ध्वैव संदेशमिमं स वीरः स्वदत्तराज्यं परिशंक्य नष्टम्।
तत्त्राणहेतोः स्वयमेव गत्वा ग्वालेरराजं तरसा जघान॥८॥

जातो जयी यद्यपि दूल्हरायो वीरास्तशस्त्रक्षतपूर्ण-देह· ।
स्वल्पैर्दिनैरैव जगाम धाम तद् यत्र वीरेतरसं प्रवेश्यम् ॥ ९ ॥ '

(मानवंश- तृतीय सर्ग- संस्कृतरत्नाकर वर्ष ८ संचिका ३ पृ.८८)

इस 'पृथ्वीराज महाकाव्य' मे यह वर्णन इन पद्यो से प्रस्तुत किया गया है। इसमे भी यह बताया गया है कि दुलहराय की मृत्यु ग्वालियर मे ही हुई थी। अत यही बात प्रमाणित है-

'राजन्! दक्षिणदिक्पतेर्बलवतो योधाश्चमूचारिणो
राज्य जातु जिघृक्षवो नृपशवो गर्जन्ति संपित्सव· ॥
भूपालेशकमर्दिनोऽपि भवतो भूपालसिंहस्य तत्
नीतिज्ञैरवधीर्यता यदहिते सावज्ञतैवाज्ञता ॥१५॥
श्रुत्वा विश्रुतपौरुषो नृपवरो दूतस्य वाचंरुषो
वेगं संशमयन्निषोद्गतमिति प्रत्युक्तिमुच्चैर्जगौ ।
क्षात्रं धर्ममिहोज्झतामिति वचो भीत्यै न च क्षत्रिया
वीक्ष्यन्ते निजजीवितक्षयमपि क्षात्रैकरक्षापरा ॥१६॥
'आपत्य प्रणिहत्य यान्ति विमुखा दूरादरं खादिव
प्रत्यापत्य पुनर्वियन्ति च परामृष्टैर्विनष्टानुगा. ।
एवश्चश्चलविक्रमा बहुतमास्ते दाक्षिणात्या भटा
दृष्ट्वा चण्डपराक्रम नृपतेश्चक्रे असिं विच्युताम् ॥२३॥'
'तं संहत्य रणे निपत्य नृपतिं हेति-प्रणीतोन्नतिं
चश्चद्द्वारकचन्द्रहासशतकैरेकैकशः सर्वतः
घ्नन्तं भूरिबलाम्बुजघ्नुरनयं रंहास्विबाहाजवा-
दुद्विग्नाविमयं भयंकरममुं ते दक्षिणेशानुगाः ॥२९॥
'कृत्वासौ जनकस्य चोत्तरविधिं यातस्य दिव्यं पदं
राज्यं प्राज्यतरं विधाय विविधैर्भूयो बलैर्दुर्ग्रहम् ॥
आश्वास्य स्वजनानुपेत्य गृहिणीं हृद्यप्रभारोहिणीं
बुद्ध्वा दोहदशालिनीं प्रमुदितो युद्धाय बुद्धिं दधौ ॥ ३२ ॥'

अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर पिता की मृत्यु के पश्चात् महाराज काकिल ने

आमेर को जीता और खोह के स्थान पर इसे राजधानी बनाया। श्री काकिल का राज्य-काल ३ वर्ष का ही रहा, परन्तु इतिहास मे आपका नाम प्रसिद्ध है। आपने आमेर को राजधानी बनाने के अतिरिक्त आमेर मे अम्बिकेश्वर महादेव की स्थापना की। यह मदिर आज भी विद्यमान है। गालवाश्रम (गलता) के पर्वतों मे पृथ्वी में विद्यमान, अनेक नागो से वलयित इस मूर्ति को लाकर भगवती के आदेश से आमेर में स्थापना की थी। इस सबन्ध मे इस काव्य मे लिखा है-(भगवती काकिल को कह रही है।)

'तावत्तज्जन-केरितेव जननी लोकाम्बिका त्र्यम्बका
रोचीरोचित - लोहितांचित - समिद्रङ्गाशुतङ्गामिमाम्।
आविर्भूय तदङ्गसङ्गतिहितप्रेक्षा समक्षाहितं
प्रोचे, काकिल! नाकिलम्भितपदा त्वां संपदा योजये ।।७३६ ।।
भूमौ गूहितमम्बिकेश्वरभरं पातारमभ्यचर्यतां
दातारं च दुराप वस्तु वितते धातारमेतस्य च।
हर्त्तारं सुमहापदां त्रिजगतां भर्त्तारमाविष्कुरु
क्रूराणामनवेक्षण-क्षममथ स्वं दुर्गमारात् कुरु ।।३७ ।।
पावन्यां दिशि गालवाश्रम-ग्रिरेर्वन्यान्तराले गिरौ
वाराधार - महावटाभिधसरोरोधौ महीगूहितम्।
गौरेका पयसाभिसिश्चति परं लिङ्गं सलिङ्गं मया
यत्तेऽवादि तदादिहेतुरहितध्वंसे च शर्मोदये ।।३८ ।।
उज्जीवद्बलसंयुतो व्रजगिरा प्रातर्ममेति स्फुटं
विध्वस्तं कुटिलाशयैरकुटिलं प्रोज्जीव्य चादिश्यताम्।
सा तेन प्रणता यथा मतिनुता माताऽथ विश्वस्व तम्
वाचाश्वास्य सुधारुचा सुचतुरं भक्तिप्रियन्तर्दधे ।।३९ ।।'
'देव्या वाचमनुस्मरन् मृगयया वीरैरनेकैर्वृतो
गत्वा तत्पदमाप संपदवधि तल्लिङ्गमालिङ्गितम्।
भीमैर्भोगिवरैर्मणिधरैर्निर्भिन्द्यभूमिं दृढा-
माविर्भाव्य महोपचार - निचयैस्संपूजयामास सः ।। ७४२ ।।''

'जयवश महाकाव्य ' मे भी इसी वृत्त को प्रस्तुत किया है। अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों में अम्बिकेश्वर के प्राप्ति स्थान के विषय में नहीं बतलाया गया है। फिर भी जमीन

के अन्दर से ही इस मूर्ति को निकाल कर स्थापित किया गया था - इस विषय मे सभी एक मत है। श्री पर्वणीकरजी लिखते हैं -

'मदाज्ञयेतो रचयाम्बिकापुरीं 'पुरीं' महेन्द्रस्य पराजये तया।
तथैकपिङ्गीमपि सम्पदंचितां दशाननीयामपि हाटकोच्चिताम् ।।२२ ।।
भुवोऽन्तरालीनमिहैव यत्नतो नरेन्द्र! निस्सार्य तमम्बिकेश्वरम् ।
प्रतिष्ठितीकृत्य यथावदर्चये: जयस्ततस्तेऽधिरणं भविष्यति ।।२३ ।।'

'तत्राम्बिकेश्वरमथार्च्यमशेषदेवैः
सन् मन्दिरे धरणितो नृपतिः प्रतापी।
उद्धृत्य सद्विजवरैः प्रयतैः प्रतीतैः
तं प्रत्यतिष्ठिपदथान्वहमार्चिचच्च ।।३९ ।।

(जयवंश-तृतीय सर्ग-२२ से ३९ श्लोक, पृ.१३-१५)

श्री सूर्य कवि की कल्पना है कि भगवती पार्वती भगवान् शिव के बिना सन्तुष्ट नहीं रहेगी- इसी विचार से काकिल ने आमेर में अम्बिकेश्वर की स्थापना की थी।

''अभीष्टदात्री मम सा हि दुर्गा विना शिवं स्थास्यति न प्रतुष्टा।
इतीव संचिन्त्य तमम्बिकेशं शिवं समस्थापयदत्र पुर्याम् ।। ''

(मानवंशाख्य महाकाव्य -तृतीय सर्ग २१ वां पद्य पृ.८९)

इनके पश्चात् इनके पुत्र श्री हणूदेव आमेर के शासक बने।

४. श्री हणूंदेव (वैशाख शु.१० सं.१०९६ से कार्तिक शु.त्रयोदशी सं.१११०)

यद्यपि इनका शासनकाल श्रीकाकिल की अपेक्षा बहुत अधिक था, इन्होंने कुल १४ वर्ष राज्य किया था, तथापि इनके शासन काल में कोई विशेष घटना नहीं हुई। कसी भी इतिहास में इनके जीवन पर अधिक विवेचन नहीं मिलता । इनके पुत्र का नाम था-

५.श्री जान्हड (कार्तिक शु.१३ सं.१११० से चैत्र शु.७ सं.११२७)

इनके अनेक नाम थे। इस काव्य में इन्हें 'जानुग' नाम से व्यवहृत किया है। यों इनका नाम जनदेव भी मिलता है। इन्होंने भी १७ वर्ष राज्य किया, परन्तु इनके

समय मे भी विशेष घटना नहीं हुई थी। 'पृथ्वीराज विजय' नामक इस काव्य मे श्री हणूदेव एव श्री जानुग के लिए एक ही श्लोक लिखा गया है-

'सूनुस्तस्य हनोतको गतवति श्रीकाकिले भूपतौ
देव्या धाम भुवं शशास, बलवानुग्रप्रतापश्चिरम्।
तस्य श्री बलभूषितेऽमरपुरं याते च तस्मिन् महा-
सूनुर्जानुग बाहुराहवजयी सभ्रातृकः संययौ' ।। ७४४ ।।

इनके पश्चात् प्रजवन (पजवन या पजोन जी) उत्तराधिकारी बने।

६. श्री पजवन जी (चैत्र शु.७ सं.११२७ से ज्येष्ठ कृ. ३ संवत् ११५१)

महाराज पजवन जी राजनीति तथा युद्धादि मे निपुण और साहसी होने के कारण हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के पचवीरों मे से एक थे- ऐसा प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज रासो मे महाकवि चन्दबरदाई ने इनका ओजस्वी वर्णन किया है। 'पृथ्वीराज-विजय' काव्य मे इनका वर्णन एक ही पद्य मे किया है-

''श्रीमांस्तस्य सुतो बली प्रजवनो नामस्फुरद् विक्रमे
भर्तु-र्विक्रम यत्कलासु चतुरो हर्षं प्रतेने गुरौ।
गर्जद्वैरिगज - प्रभञ्जन - हरिर्मोहाब्धि - मज्जत्तरि -
स्स्वर्याते पितरि प्रभासवितरि त्राता बभूवावनेः ।। ७५५ ।। ''

इनके एक ही पुत्र था, जिसका नाम मलयसी जी (मलेषी) था।

७. श्री मलयसीजी (ज्येष्ठ कृ. ३ सं. ११५१ से फाल्गुन शु.३ सं.१२०३)

अपने पिता के समान ये भी वीर व पराक्रमी थे। श्री चन्दवरदायी ने इनकी भी प्रशसा की है। सभी इतिहासों मे यही लिखा है कि पजवनजी के एक ही पुत्र था, परन्तु इस काव्य मे चार अन्य पुत्रों के विषय मे भी सकेत है-

'मल्लेषी-तनयो बभूव भयदो मल्लो व्रतो द्वेषिणां
चत्वारस्तनया बभूवुरपरे तस्य प्रभावोज्ज्वलाः।
राजासौ निबबन्ध युद्धविजितं नागौरिकाधीश्वरं
तद्राज्यं निजसाच्चकार मिहिरो भूचारिपाथो यथा' ।। ७४६ ।।

'कन्नौज युद्ध के एक वर्ष पश्चात् मलयसीजी ने नागोरगढ गुजरात, मेवाड तथा मांडू को जीता था। श्री पर्वणीकरजी ने 'जयवश महाकाव्य' मे लिखा है-

'उपेत्य नागौरमनल्प-विक्रमस्तदीश- गौरीपतिना नृप· समम्।
अयुद्ध लक्षत्रयसैन्य-संयुजा स्वयं पर-पञ्चसहस्र-सैनिकाः ॥१०॥
स्व-विक्रमोपायविधेर्व्यधात्तमां स गुर्ज्जरीये ऽ सुलभे ऽ पि नीवृतिम्।
पदं स्वकीयं निहितं हितं ततं न कस्य विक्रान्तिबलं बलीयसः ॥१७॥
कदाचिदत्यन्तरणोद्धतोद्भटः क्षमापतिः प्राप्त-महेन्द्र-विक्रमः।
मेवाडदेशाधिपतिं ससेनकं रणेषु धिक्कृत्य पदं स्वकं न्यधात् ॥ १९॥'

(जयवंश-चतुर्थ सर्ग -१० से २० तक)

नागौर विजय तक श्री प्रजवनजी जीवित थे। यहाँ जो श्लोक दिया गया है, उसमें श्री मलयसीजी के उत्तराधिकार प्राप्ति की पुष्टि करता है। यहाँ सवत् की समानता तो है, परन्तु तिथि की समानता नहीं है। इतिहास मे उनके शासन प्रारम्भ करने की तिथि ज्येष्ठ कृष्णा तृतीया है, जब कि इस काव्य मे माघ शुक्ला ९ है। सवत् के विषय मे श्री हनुमान शर्मा ने 'जयपुर के इतिहास' (नाथावतों का इतिहास) पृ.२५ पर लिखा है-

'(१) सवत् ११५१ में अपने पिता (पजोनजी) के उत्तराधिकारी हुए।.... (२) कन्नौज युद्ध के एक वर्ष बाद मलैसीजी ने नागौर गढ विजय किया और गुजरात मेवाड एव माडू आदि में अपनी वीरता दिखलाई।'

'जयपुर की वशावली' में भी ज्येष्ठ वदि ३ स. ११५१ मिलता है। इस काव्य में यह श्लोक तिथि का सकेत करता है-

'वर्षे विक्रमतो यतीन्दुशरभूच्चन्द्र-प्रमेये मधौ (११५१)
शुक्ले धूनित धन्वनि ध्वनदलिज्येये, नवम्यां तिथौ।
लब्ध्वा राज्यमसौ विधातुमधिकं वीरश्चमत्कारिधा-
युद्धाय प्रबलैर्बलैरनुगतो गर्जत्पुरा निर्ययौ ॥ ७४७ ॥ '

अग्रिम पद्य में मलैसीजी की गुजरात विजय का उल्लेख है-

'तस्मिन् भूपवरे विभुज्य विभवान् पुण्येन याते दिवं
'मल्लेषी 'पदमाप तस्य तनयो ज्यायानजय्योऽरिभिः।

जित्वा गुर्जरराजमानिचतुरो निर्जित्य भूपान् परान्
बाहूदर्जित-भूरिकीर्ति-कनको भुङ्क्तेस्म भौमं सुखम् ।। ७४८ ।।'

इनके ६ पत्नियाँ तथा ३२ पुत्र हुए थे। 'जयपुर के इतिहास ' मे श्री हनुमान शर्मा ने लिखा है-

(४) 'इनके १ मनलदे (खींचणजी) राव अतल की, २ महिमादे (सोलखणी) राव जीमल की, ३.नरमदे (देवडीजी) देवा देवडा की, ४. बडगूजरजी , ५ चौहाणजी, ६ दूसरा चौहाणजी - ये ६ राणी थी। इनके १. बीजल, २.बालो, ३ सीधण, ४.जेतल, ५.तोलो, ६ सारग,७ सहसो, ८. हरे, ९. नद, १०.बाघो, ११.घासी,१२. अरसी, १३. नरसी,१४.खेतसी १५.गागो १६.गोतल,१७.अरजन, १८.जालो,१९.बीसल, २०.जोगो २१.जगराम २२.ग्यानो, २३.बीरम, २४.भोजो,२५.बेणो २६.चांचो २७. पोहथ ,२८.जनार्दन २९. दूदो ३०.गबूदेवो ३१.लूणो और ३२. रतनसिंह ये बत्तीस बेटे थे।'

'इतिहास राजस्थान' में लिखा है कि मलैसी के ३२ पुत्रो मे से अधिकाश तो कछवाहे रहे और कुछ ने दूसरी जाति ग्रहण करली।'(पृ ९२)

इस काव्य में भी इनका उल्लेख सकेत मे है-

'तस्यारीन् बलिनो बलैर्जितवतो द्राङ्मालवेन्द्रादिकान्
कीर्तिर्दिग्वलयं चकारधवलं ज्योत्स्नेव भूर्युज्ज्वलाः ।।
षड्भार्यस्य बभूबुरुग्रमहसो द्वात्रिंशदात्मोद्भवा-
भावज्ञा भुज-वैभवार्जितधना धन्यं च तं चक्रिरे' ।। ७४९ ।।

८. महाराज बीजलदेव जी (फा.शु.३ सं.१२०३ से आषाढ शु.१२३६)

इनके जीवन की भी कोई उल्लेखनीय घटना नहीं है। इनके समय मे विद्वानो का बडा सम्मान था। इनके समय मे अनेक ग्रन्थो का निर्माण भी हुआ होगा, अभी तक पता नहीं चल सका है। इस काव्य में लिखा है-

'स्वर्याते जनके, पदेऽस्य बिजलो ज्यायान्सुतो मंत्रिभि·
नीतिज्ञैरुपवेशितो मतिमतां मान्यो बभूवौजसा।
दीप्तो वह्निरिव द्विषां विषधरो गर्तोन्दुरूणामिव
श्रीर्दोर्दण्डधरो विदामविदुषां जिष्णुर्जिगायाहितान् ।।७५०'

'विद्वद्भिर्धनदानमानिततया सुप्रीत चित्तैर्भृशं
बालानां कुलयांबभूव कलया बोधाय शब्दावलेः।
ग्रन्थं सुग्रथितं विभक्ति - गुणितैर्बोध्यैः समासादिभि·
धीमानुद्धतिवर्जितोर्जितयशा राजा जुगोपावनिम् ॥ ७५१ ॥'

इनके तीन पुत्र हुए थे, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम श्रीराजदेव था। उसे राज्य सोपकर श्री बीजलदेव दिव्य धाम चले गये-

'भुक्त्वाऽसौ चिरमत्र मन्त्रचतुरैर्द्वित्रैरमात्यैर्धृतो
राज्ये दुर्जयतां गते जितरिपुश्शर्माणि भौमानि स·।
दिव्यं धाम जगाम भीमवपुषे राज्यं प्रदाय स्वकं
पुत्राय प्रतिगर्जिशत्रु-जयिने तज्ज्यायसे भूपतिः' ॥ ७५२॥

९. महाराज राजदेव (आषाढ शु. ४ सं .१२३६ से पौष कृ.६ सं.१२७३)

इन्होंने आमेर का जीर्णोद्धार किया था। अपने दोनों भाईयों के साथ प्रेम पूर्ण रहते हुए इनका समय भगवान् अम्बिकेश्वर महादेव की पूजा में बीता था। इनके ६ पुत्र थे, जिनमे श्री कील्हणजी सबसे बडे थे। इस काव्य में लिखा है-

'भ्रातृभ्यां मुदितो भुवं स बुभुजे श्री राजदेवो दिवा
संस्पर्द्धामिव संविधाय नगरीम् आम्बेरिकामम्बिकाम्।
संपूज्यार्चितमम्बिकेश्वर - महादेवेश्वरो मां युवां
सन्मातापितरौ प्रयातमिति तौ संप्रार्थ्य तस्थौ पुरः' ॥७५३ ॥

श्री कील्हण के जन्म का वर्णन करते हैं-

'राज्ञी तस्य मनोज्ञलक्षणयुतं सूनुं विशालेक्षणा
वर्षान्तक्षणदा पतिद्युतिभरा भूरक्षिणः सत्क्षणे।
विक्षीणीकृत - दीप - दीप्तिमतुलं दत्तक्षणं वीक्षिणां
भूरक्षा-सुविचक्षणं प्रसुषुवे पद्मेक्षणं कीलनम् ॥ ७५६ ॥'

१०. महाराज कील्हणजी (पौष कृ.६स.१२७३ से कार्तिक कृ. ९ सं.१३३३ तक)

श्री कील्हणजी के समय चित्तौड तथा मालवा , गुजरात में बडे शक्तिशाली शासक थे । ये उनके पास कुम्भलमेर रहा करते थे। यह 'वीर-विनोद तथा 'महाराणा

रायमल्ल' के रासे ' में लिखा है। इनके दो रानियाँ थी, जिनसे ६ पुत्र हुए थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम 'कुन्तिल' था, जो उत्तराधिकारी बने थे।

'जयपुर का राज्यवंश ' (हितैषी जयपुर- अंक,पृ. ५५)तथा 'जयपुर का इतिहास'(नाथावतो का इतिहास) पृ.२९ /३० पर लिखा है-

'इनके एक राणी श्री भावलदे निर्वाणजी खडेला के रावत देवराज की। इनके कुन्तलजी हुए। दूसरी राणी कनकादे चौहाणजी । इनके २ पुत्र हुए ।'

इस अवतरण में दो रानियाँ होना तो सिद्ध होता है, परन्तु पुत्रों की सख्या ३ बनती है। 'वीर-विनोद' में ३ पुत्रों का उल्लेख इस प्रकार है-

(१) कुन्तलजी- राज पायो। (२) अखैराज- जिसके वंशज धीरावत कहलाते हैं। (३) जसराज- जिनके टोरडा और ब्गवाडा के जसरा पोता कछवाहा कहलाते हैं।

केवल एक वशावली में ६ पुत्रों का उल्लेख है, जिनमें तीन नाम तो 'वीर-विनोद ' के है ही, इनके अतिरिक्त (४)सैबरसी (५) दैदो तथा (६) मसूड और है। मसूड के वंशज टाट्यावास के बधवाड कछवाहे है। यहाँ काव्य में ६ पुत्रों का उल्लेख .इस प्रकार है -

'रेमेऽसौ रमणीद्वयेन रहसि श्रीमान् दिनेशद्युति-
र्भूमिं भूरि जुगोप जिष्णु - विभवो विष्णुस्त्रिलोकीमिव।
षड्सूनुस्स नृपो निहत्य च रिपूनाराध्य देवीं भवे
लब्ध-ज्ञान-महोदयो द्विजवराल्लेभे दुरापं पदम् ॥ ७५८ ॥'

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि श्री कुन्तलजी ज्येष्ठ पुत्र थे।

११. महाराज कुन्तलदेव जी (कार्तिक वदि ९ स १३३३ से माघ कृ.१० स.१३७४)

इन्होंने आमेर मे 'कुन्तल किला' बनवाया था, जो आज 'कुन्तलगढ' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके ५ रानियाँ तथा १३ पुत्र थे।'जयपुर के इतिहास' -पृ. ३० पर लिखा है-

''इनके राणी १. काश्मीरदेजी,चौडाराव जाट की बेटी २.रैणादे (निर्वाण जी) जोधा की बेटी, ३.कनकादे (गौडजी) ४. कल्याण दे (राठौड जी) वीरमदेव की बेटी

और ५ बडगूजरजी पूरणराव की बेटी थी।''

वशावली की एक प्रति मे पुत्रों के नाम इस प्रकार है-

१. जूणसी, २ हमीर, ३ भडसी, ४.आलणसी, ५ जीतमल, ६. हणूतराव, ७.महलणसिह, ८.सूजो, ९.भोजो ,१०.बाधो ११.बलीबग १२. गोपाल, १३.तोरणराव ।[१]

'वीर-विनोद' मे केवल प्रथम चार पुत्र ही प्रसिद्ध हैं । ज्येष्ठ पुत्र जूणसीजी (जोनसी) आमेर के शासक बने थे। पद्य मे इनका संकेत है-

'धीमांस्तस्य पदं शशास विधिवत्सूनुर्बली कुन्तिलो
लालत्कीलित-शत्रुरिन्दुरुचिरो दुर्गं परं रोचयन्।
रामाभिः स च पञ्चभि· सुचतुरो रेमे रतिं वर्द्धयन्
पुत्रानात्मसमांस्त्रयोदश दिशो धावच्च लेभे यशः'॥ ५५९॥

१२. महाराज जूंणसी (माघ कृ.१० सं.१३७४ से माघ कृ.३ सं.१४२३)

महाराज 'योनसि' के जीवनकाल में शान्ति रही। कोई भी उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। इनके 'उदयकरणजी ' ज्येष्ठ पुत्र थे , जिन्होने आमेर का राज्य सभाला था-

'कुन्तैरुन्नत-वैरिदन्तदलिनि क्ष्मापालके कुन्तिले
याते चारुतिलोत्तमादिकलिते गीते समाकर्णके।
राज्यं तस्य सयोनसिर्विनयवान् रूपैर्नयैरर्दयन्
दस्यून् वश्यनृपावलिर्विबुभुजे चन्द्राननां चाङ्गनाम् ॥ ७६१ ॥'

१३. महाराज उदयकरणजी (माघ कृ. ३ स.१४२३ से फाल्गुन कृ. ३ सं. १४४५)

इनके विषय में भी कोई विशेष वृत्तान्त नही मिलता। इस काव्य में भी एक ही पद्य द्वारा इनका वर्णन किया गया है। इनके पुत्र नरसिह उत्तराधिकारी बने थे।

''तस्योद्यत्किरणो बभूव तनयो बाल्येऽपि भूयो नयो
जन्मागार - तमो निरासक - महावंशार्णवेन्दुर्वशी।
ताते भुक्तसमुज्झिताखिलसुखे नाकोन्मुखे सत्सखे
वर्षन् वस्वमृतं प्रजाकुमुदिनीराल्हादयामास सः ॥ ७६२ ॥''

इनका सस्कृत नाम- 'उद्यत् किरण' रखा गया है।

१४. महाराज नरसिंह जी (फा. कृ.३ सं. १४४५ से भाद्रपद कृ.६ सं.१४८५)

श्री उदयकरण जी के पुत्र का नाम नरसिह था। पद्य है-

'तस्य स्वानुगुणो गुणैरगणितैर्वर्ण्यः सुवर्णोज्ज्वलो
जज्ञे नूत्नमतिर्मनोज्ञरचना - नारीमनोरोचनः।
पुत्रो मित्ररुचिर्हृदम्बुज मुदि त्रिभ्रातृकस्योन्नतो
नाम्नायं नरसिंहमाह मुदितो भूरि स्म भूमीपतिः' ।।७६३ ।।

इनके तीन रानियाँ थी तथा ७ छोटे भाई थे। तीन पुत्रो मे से ज्येष्ठ पुत्र बनवीर ने आमेर का शासन किया था। वशावलियो से यह सभी सख्या सिद्ध है। महाराज उदयकरण जी के आठ पुत्रो के नाम इस प्रकार मिलते है-

'१ नरसिंह, २.वरसिह, ३ बालाजी, ४.शिवब्रह्म, ५ पातल , ६.पीथल, ७ नाथा, ८.पीपाजी ।'

इनके तीन रानियो के विषय में इतिहास का साक्ष्य इस प्रकार है-

१.सीसोदण जी राणा दुदा हमीर की , २ सोलखणी की राव सातल बली की बेटी ,३.भागा चौहाण जी पुष्पराज की पुत्री थे। इनके बनवीर २ जैतसी और ३ काधल तीन पुत्र हुए थे।

पद्य है-

'तेनासौ तनयेन प्रोदितमना राजा जितारिर्बली
रामाभिः तिसृभिर्विभुज्य बहुलं भौमं चिरं सत्सुखम्।
स्वसौख्याभिमुखो बभूव स तदा सप्तानुजो बुद्धिमान्
सूनुस्तस्य जुगोप गोपतिरिव प्रोद्यन्महीमण्डलम् ।।७६४ ।।'
'तिस्रो - सौरमयन्वधूरवहितो निर्धूतवैरिव्रजो
लब्ध - श्रीर्जनयांबभूव तनयांस्तासु प्रभावोज्ज्वलान्।
श्रीनुग्रानपि राज्यमर्जितयशा धाम व्रजन्नाकिनां
सत्सूनौ वनवीर नामनि निजं सर्वं स राज्यं दधौ ।। ७६५ ।।'

१५.महाराज बनवीर जी (भाद्रपद कृ.६ स १४८४ स. आश्विन कृ.१२ स १४९६)

इनकी भी कोई उल्लेखनीय घटना नहीं है। इनके ६ रानियाँ थी और ६ पुत्र थे, परन्तु इस काव्य में उनके ५ पुत्रों का उल्लेख है। इतिहास में लिखा है-

''इनके ६ रानिया थी। १.उत्सवरंगदे (तंवर जी) कवल राजा की २.राजमती (हाडीजी) गोविन्दराज की ३.कमला (सीसोदणजी) कीचैचा की ४ सहोदरा(हाडीजी बाधा की) ५ करमवती (चौहाणजी) बीजा की और ६. गौरा (बघेलजी) रणवीर की थी। इनके पुत्र १.उद्धरण २.मेलक ३.वरो ४.नरो ५.हरो और ६ वीरम थे।' (पृ.३२)

पद्य है-

'षडजानि· स षडाननश्रियमपि स्वस्मिन् समावेशयन्
लब्धं राज्यमवत् पितुर्भुजबलैर्जित्वा रिपून् दुर्जयान्।।
पंचोत्पाद्य सुतान् प्रकामसुभगान् भुक्त्वा च भौमं सुखं
पात्रे वित्तमपि प्रणीय बहुलं यातिस्म दिव्यं पदम् ।। ७६६ ।।'

१६. श्री उद्धरण जी (आश्विन कृ.१२ सं.१४९६से मार्गशीर्ष कृ.१४ सं.१५२४)

इनके चार रानियाँ थीं। पुत्र एकमात्र श्री चन्द्रसेन जी थे। इतिहास में इनके नाम ये हैं-

१.हसावदे (राठौड जी) राव रणमल की २.मापू (चौहाण जी)मेदा की ३.इन्द्रा (सीसोदण जी) राणा कुम्भा की ४.अनन्तकुंवरि(चौहाण जी) राव वैरिसाल की पुत्री थी। पुत्र १. चन्द्रसेन जी थे। (पृ.३२)

काव्य का पद्य इस प्रकार है-

'धीमानुद्धरणाभिधो भुजबलैरुद्धू निजारिव्रजो
दीर्घापज्जलधि - प्रमज्जदचिर - प्रोद्धारण - प्रोद्धुरः ।।
राज्यं प्राप्य पितुर्विराजित-यशो राशीन् दुराशा ततो
कान्ताभि· बुभुजे चिरं चतसृभिर्भौमं स्मराम· सुखम् ।।७६८।।'

इनके पुत्र चन्द्रसेन जी का वर्णन इस पद्य से प्रकट किया है-

'तस्मिन् विस्मयकारिके च तनये श्रीशालिनि प्रोन्नते
लोकाह्लादिनि चन्द्रमस्सुरुचिरे द्राक् चन्द्रसेनाह्वये।
चन्द्र - ध्वान्तचयानि वाजिषु परानाराजयत्युन्मना
राजा रञ्जयितुं नरानिव सुरान् सौरान्वय· स्वं ययौ ॥७७०॥'

१७. महाराज चन्द्रसेन जी (मार्गशीर्ष कृ.१४ सं. १५२४ से फाल्गुन शु. ५ सं.१५५९)

इनके सम्बन्ध में कोई विशेष उल्लेख नहीं है। इनके ६ पत्नियाँ थीं। पुत्रो में से ज्येष्ठ महाराज पृथ्वीराज आमेर के शासक बने। इतिहास मे लिखा है-

'महाराजा चन्द्रसेन की राणी १. नोली (सोलंखणीजी) सातल की, २.बोली (बडगूजरजी)राव चांदा की, ३.अमृत दे (चौहाणजी) ऊधो की ४.राकण (सुरताणजी) रावत कुम्भाकी ५. भागा (चौहाण जी) नरसिंह की ६.आभावती (चौहाण जी) वीरमदेव की थी। इनके पुत्र १ पृथ्वीराजजी अमृत दे (चौहाण)के उत्पन्न हुए।' (पृ.३३) पद्य है-

''राज्यं प्राप्य पितुश्शतक्रतुरुचो विक्रम्य जित्वा रिपून्
आपूर्य द्रविणैः स्वकोशमधिकं चिक्रीड षड्भिर्युवा॥
कान्ताभिः सुमनोहराभिरभितो राजावनीषु श्रिया
राजन्तीषु जयी गजीभिरिव स श्रीमान् गजाधीश्वरः॥७७१॥'
'श्रीमांस्तस्य सुतो बभूव बलवान् पृथ्वीपतिर्बुद्धिमान्
पृथ्वीराजमरातिभीतिकरकं नाम्ना स नामोत्सवे।
एवं प्रीतमना द्विजैरभिदधे संपूजितैर्व्याहृतो
हृष्यद्भिर्बहुरत्न - हेमनिकरं श्री चन्द्रसेनः किरन् ॥ ७७२॥'

१८.महाराज पृथ्वीराजजी (फा. शु. ५ स.१५५९ से कार्तिक शु. ११ सं. १५८४)

इनका नाम इतिहास में बहुत ही प्रसिद्ध है। यह काव्य भी इन्हीं के नाम पर लिखा गया है। इनका जीवन एक भक्त के समान था। प्रथम तो ये बाबा चतुरनाथ के शिष्य बनकर जोगी बन गये थे, परन्तु बाद मे श्री कृष्णदासजी पयोहारी के शिष्य बनकर भगवान् श्रीकृष्ण के उपासक बन गए थे। आमेर जाते समय संस्थापित

बदरीनाथ जी की डूगरी आपके द्वारा बनवाई गई थी। आपकी पत्नी बाला बाई प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त थीं तथा प्रतिदिन बद्रिकेश्वर के दर्शन करने जाया करती थी। इनके सबध में अनेक जनश्रुतियाँ है। आमेर में बालाबाई की साल के नाम से आज भी एक स्थान है, जहाँ राजघराने के मागलिक कार्य सम्पन्न होते हैं।

महाराज पृथ्वीराज के राज्याधिरूढ होने का समय इस काव्य मे पद्य द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो सभी इतिहास-ग्रन्थो से पुष्ट है। पद्य है-

''राज्यं प्राज्यतमं विभुज्य जनके स्वाराज्य - भोगेशया
स्वर्याते बहुदायिनि श्रितनयः श्री चन्द्रसेने नृप·।
अङ्केषुश्वसनावनी परिमिते संवत्सरे वैक्रमे
चक्रे फाल्गुनकृष्ण-कुण्डलितिथौ विप्रैरसौ पार्थिव· ॥७७४॥''

अङ्क ९, इषु-५, श्वसन-५, अवनि-१,अङ्काना वामतो गति =१५५९ विक्रम सवत् -फाल्गुनकृष्णा कुण्डलि =सर्प=पचमी तिथि को इनका राज्याभिषेक हुआ था।

इस काव्य मे इनके विषय मे कोई विशेष उल्लेंख नही हैं। इनके ९ रानियाँ थी । १८ पुत्र थे तथा इन्होंने २४ वर्ष ८ मास २१ दिन राज्य किया था, इसका उल्लेख है। इनके पश्चात् इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री पूर्णमल आमेर की गद्दी पर बैठे थे, इस दिन कार्तिक शुक्ला ११ थी। वंशावलियो में इनके १९ पुत्र बतलाये हैं, जबकि इस काव्य में १८ का ही उल्लेख है। रानियों के संबंध में भी लिखा है कि बालांबाई के अतिरिक्त ९ थीं। परन्तु यह इतिहास में असत्य सिद्ध है। बालाबाई का नाम अपूर्व देवी था। यहीं भ्रान्ति सख्या मे वृद्धि करती है। इतिहास में लिखा है-

'पृथ्वीराज जी के राणी- १. भागवती (बडगूजर जी) देवती के राजा जैता की, २. पदारथदे (तवरजी) भगवन्तराव गांवडी की ३. अपूर्वदेवी 'बालांबाई' (राठौड जी) राव लूणकरण जी बीकानेर की ४. रूपावती (सोलखणी जी) राव लखानाथ टोडा की ५ जाबवती(सीसोदण जी) राणा रायमल जी उदयपुर की ६. रमादे (निर्वाण जी) रायसल अचला की ७. रमादे (हाडी जी) राव नरवद बूदी की ८. गौरवदे (निर्वाण जी) धामदेव की और ९.नरबदा (गौड जी) खैरहथ की थी।' (पृ. ४२)

'रामाभिर्विजहार भूरि नवभिर्लब्धाङ्गकामद्युति
श्रीदश्री - स्मरसुन्दरी सुरुचिभिः द्रोणीर्निजादे शुभा।

नानर्तुप्रभवप्रसूननिकर - स्वामोद मन्तालिका
अध्युष्येन्दुमरीचि-रोचितरुचि श्री चन्द्रसेनात्मजः ।।७७५ ।।'

पुत्रो के विषय मे लिखा है-

'तस्याष्टादश तुष्टिदा जनहृदां पुत्राः बभूवुः शुभा
मित्राभाः सुहृदां हृदम्बुजवने शूरा रणोत्साहिकाः ।।
राजा राज्यसुखं चतुर्भिरधिकां संवत्सराणामसौ
भेजे विंशतिमेकविंशति दिनानष्टौ च मासानपि ।।७७६ ।।

१९. महाराज पूर्णमलजी (कार्तिक शु. ११सं. १५८४ से माघ शु. ५सं. १५९०)

इनके सबन्ध मे इतिहास मे मतभेद है। इतिहास-लेखक श्री हनुमान्प्रसाद शर्मा ने लिखा है कि ये १८ भाईयो में एक से बडे तथा अन्य सबसे छोटे थे। किसी कारणवश महाराज पृथ्वीराज ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया था। इस काव्य में भी इनके लिए कही ज्यायान् शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। लिखा है-

'पृथ्वीराजसमाह्वये नरपतौ याते पदं नाकिनाम्
कीनाशाति - भयङ्करे भगवतो न्युत्थापनार्हे तिथौ।
अन्येद्युस्तनयोऽस्य भास्वरवपुः श्री पूर्णमल्लाभिधो
राज्यं प्राज्यगुणं गुणैरगणितैराप प्रजाः रञ्जयन् ।।७७७ ।।'

इन्होने ६ वर्ष २ मास २३ दिन राज्य किया था। इनकी मृत्यु सदिग्ध है । कुछ लोग भीमसिह (भाई) द्वारा मारे गये थे, ऐसा कहते हैं, कुछ प्राकृतिक मृत्यु बतलाते हैं। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र सूजाजी बालक थे, इसलिए इनके भाई महाराज भीमसिंह गद्दीनशीन हुए।

''षड्वर्षाणि षडाननोन्नतरुचिर्नीचीकृतान्यद्युति·
द्वौ मासौ दिवसानपि श्रुतवतां वर्षस्त्रयोविंशतिम्।
भुक्त्वा भौमसमौ सुखं सुखसखौ राजा बभूबुर्दिवं
पुष्पोघैरनघोर्जितां जितरिपु : श्री पूर्णमल्लो ययौ ।।७७८ ।।''

२०. महाराज भीमसिंहजी (माघ शु. ५ सं. १५९० से श्रावण शु. १५ सं. १५९३)

यहाँ पहुँच कर नियमित चला आ रहा कछवाहो का इतिहास अपने नियमो से च्युत हो गया। गद्दी पर श्री पूर्णमल्ल के बेटे श्री सूजासिह नही बैठे। उनके भाई श्री भीमसिह ने सत्ता सभाली। उनके विषय मे इतिहास अभी तक सदिग्ध है। कोई इन्हे पितृहन्ता बतलाते हैं। उपलब्ध काव्य का यह अतिम पद्य है, जिसमे महाराज भीमसिंह को उत्तराधिकार मिलने का वर्णन है-

"याते तूवरिकासुते सुरपुरं बालासुतो विक्रमी (?)
संचक्राम च वैक्रमे बलनिधिर्व्योमाङ्क - बाणेन्दुभिः।
वर्षे संकलिते सहस्यधिकधीः शुक्ले मृडानी तिथौ
राज्यं भ्रातुरलंचकार चतुरो भीमोभिधस्स्वैर्बलैः ॥७७९॥"

यावन्मात्र वशावलियो एव इतिहास ग्रन्थो मे श्री पूर्णमल्ल की निधनतिथि तथा महाराज भीमसिह की राज्याभिषेक तिथि माघ शु ५ स १५९० दी गई है, परन्तु इस काव्य मे सवत् तो ठीक है परन्तु मास व तिथि का उल्लेख ठीक नही है। सहस्य का अर्थ पौष मास होता है- 'पौषे तैष सहस्यौ द्वौ। ' अमरकोश में लिखा है। 'अधिक धी' शब्द से तात्पर्य यदि एक मास अधिक है तो मास ठीक है । 'मृडानी' तिथि से तात्पर्य पचमी तो नहीं होता। षष्ठी या एकादशी होता है। एक तिथि का अन्तर कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नही । पद्य मे -'भ्रातुरलंचकार' पद इस बात को सिद्ध करता है कि श्री भीमसिह अपने भाई के उत्तराधिकारी बने थे। इस पद्य में उनकी माता 'बालाबाई' का भी उल्लेख है- 'बालासुतो' पद से । संवत् के लिए विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है- व्योम=० ,अंक=९, बाण=५,इन्दु=१- अकानां वामतो गति के अनुसार १५९० संवत् आ जाता है।

खेद है , इस पद्य के पश्चात् ग्रन्थ के पत्र नही मिलते। अत अपूर्ण होने से नहीं कहा जा सकता, यह कितना और रहा होगा।

समालोचना

इस ग्रन्थ के लेखक का नाम उपलबध पद्यो मे कहीं भी नहीं मिलता। ग्रंथ के नाम के सम्बन्ध मे भी केवल पुस्तक के (उपलब्ध पत्रो के ७ वे पत्र के पृष्ठ पर लिखे गए- 'गोकुलप्रसादस्येदं पुस्तक पृथ्वीराजविजय खण्डित १,२ पत्राणि) के आधार पर

स्वीकार किया गया है। मेरी दृष्टि से इस काव्य का यह नाम नही रहा होगा। क्योंकि इस काव्य का नायक यदि पृथ्वीराज को मानते है तो लेखक उसका बहुत बडा विस्तृत वर्णन करता तथा उनके जीवन की घटनाओं पर विशद प्रकाश डालता । लेखक ने पृथ्वीराज के विषय में कोई भी उल्लेखनीय घटना नहीं लिखी तथा रानियों एव पुत्रों की सख्या मात्र दी है। किसी भी काव्य या महाकाव्य के नायक केलिए २-३ पद्य लिखना ही पर्याप्त नही माना गया है। फिर एक बात और भी है। पृथ्वीराज ही यदि इसके नायक है तो उनकी विजय से सम्बन्धित किसी घटना का उल्लेख भी होना चाहिये- तब इस नाम की सार्थकता बनेगी। इसके अतिरिक्त लेखक इसकी समाप्ति पृथ्वीराज के शासनकाल के साथ ही नहीं करता , वह उसके पुत्र पूर्णमल व भीमसिह का भी वर्णन करता है। चूकि इतने ही पद्य उपलब्ध हैं अत· नहीं कहा जा सकता, इसके पश्चात् किनने शासको का वर्णन और किया होगा। श्री पृथ्वीराज के वर्णन से तो अधिक महाराज सोढदेव व दूलहराय का वर्णन है।

जब इस काव्य का नाम 'पृथ्वीराज-विजय' उचित नहीं है तो क्या नाम हो सकता है- इस पर विचार करना भी कठिन है। यदि ग्रथ आदि या अत मे कही भी पूर्ण होता तो यह विचार फिर भी सभव था। इतना जरूर कहा जा सकता है कि इसमें जयपुर (आमेर) के कछवाहो का इतिहास वर्णित है और यह इतिहास उपलब्ध वशावलियो एव ऐतिहासिक घटनाओं के विरुद्ध नहीं है। कहीं कही मत-मतान्तर अवश्य है, परन्तु वे इतने विचारणीय नही है। बीच-बीच में शासनकाल का भी संकेत इसके ऐतिहासिक काव्यत्व मे सहयोगी है। चूकि, इसमें इतिहास एव ऐतिहासिक घटनाओ का काव्यमय वर्णन है, अत इसे ऐतिहासिक काव्य के रूप में स्वीकार करने में सदेह नहीं है। महाकाव्य स्वीकार किया जाय या नही, यह प्रश्न विचारणीय अवश्य है,परन्तु ग्रथ के पूर्ण उपलब्ध न होने एव उपलब्ध पद्यो के आधार पर इसे लक्षणग्रथों की कसौटी पर नहीं उतारा जा सकता ।

साराश में- यही कहा जा सकता है कि पद्य सरल एव सुन्दर हैं। यह एक ऐतिहासिक काव्य है- यह तथ्य निर्विवाद है। ग्रन्थ मे अशुद्धियाँ लेखक की न होकर लिपिकार की हैं, जिसने मूलग्रन्थ से इसकी नकल की थी। ग्रन्थ त्रुटित व कीट भक्षित लगता है, क्योकि अनेक स्थानों पर पद उपलब्ध नही हैं।

इस काव्य की पूर्ण प्रतिलिपि राजकीय पोथीखाने मे हो सकती है। यदि वह उपलब्ध हो तो इस पर पुन विस्तृत विवेचना की जा सकती है।

(पोथीखाने के सर्वेक्षण के उपरान्त प्रकाशित सूचीपत्र व प. श्री गोपालनारायण बहुरा जी के प्रास्ताविक लेख से यह स्पष्ट हो गया है कि इसकी प्रति पोथीखाने में उपलब्ध नही है। कहीं अन्वेषण से उपलब्ध हो जाय, तो ही इस पर विस्तृत विवेचना सभव है। -सम्पादक लेखक)

'भारतीय पुरातत्त्व'- पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय अभिनन्दन ग्रन्थ १९७१ ई. (पृ २८७-३०७) पर प्रकाशित लेख।

❋❋❋

संस्कृत के अप्रकाशित ऐतिहासिक महाकाव्य

'पृथ्वीराज विजय'' और ''कच्छवंश महाकाव्य'

व्यतीत काल की प्रसिद्ध घटनाओ एव तत्कालीन प्रसिद्ध पुरुषों के वर्णन से युक्त ग्रन्थ को ''इतिहास'' कहते है। इस शब्द के निबधन से पता चलता है कि यह परम्परागत प्राचीन उपाख्यानो को प्रस्तुत करने वाला ग्रन्थ है। इसमे दो पद है। १.इति ह और २ आस । इतिह भी दो भागो मे विभक्त किया जाता है । इति और ह। इति का शब्दार्थ है एव, अर्थात् सत्यरूप। 'ह' का पर्यायवाची शब्द है, 'किल' जिसका अभिप्राय है निश्चित स्वरूप । आशय यह है कि -कोई भी घटना ठीक उसी रूप मे प्रस्तुत की जाय, जो जैसे सपन्न हुई है। दूसरा पद है 'आस'। जो अस् धातु के परोक्ष लिट् का रूप है। 'आस' जिसका अर्थ है - बीता हुआ । इस प्रकार परम्परा से प्राप्त उपाख्यान- समूह जो अतीत से सबद्ध होता है - इतिहास कहलता है। लिखा भी है -

''धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेश-समन्वितम् ।
पूर्ववृत्त कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ।। ''

पुरुषार्थ चतुष्टय में से किसी एक का दिग्दर्शन कराते हुए किसी विख्यात पूर्ववृत्त का उपदेशात्मक कथा-शैली मे चित्रण प्रस्तुत किया जाय, वही इतिहास है। कुछ समालोचक व कोशकार वीरगाथात्मक साहित्य को भी इतिहास कहते हैं।

साहित्य में दो वाद अति प्राचीन हैं-१. यथार्थवाद और २.आदर्शवाद । इतिहास यथार्थवाद का पयार्यवाची शब्द है और आदर्शवाद ऐतिहासिक महाकाव्य का समानार्थक शब्द । इतिहास आदर्श को चित्रित करने का प्रयास नही करता, अपितु वह किसी भी घटना को यथार्थ रूप मे प्रस्तुत करता है. चाहे वह नायक के गुणपक्ष से सबद्ध हो या दोषपक्ष से। इसके विपरीत एक महाकाव्य या काव्यकार अपने काव्य की वस्तु इतिहास सम्मत लेता हुआ भी इस बात का ध्यान अवश्य रखता है कि यथासभव उसका नायक सर्वगुणसंपन्न हो। वह समाज के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, उसके चरित्र-चित्रण से। इस प्रकार इतिहास तथा ऐतिहासिक महाकाव्य दोनो का एक रूप होते हुए भी भिन्नरूपत्व सिद्ध है।

सस्कृत साहित्य के इतिहास मे उपर्युक्त दोनो प्रकार की रचनाये प्राप्त होती है। यद्यपि इतिहास लेखन का कार्य बहुत ही स्वल्प है और इस विभाग के अतर्गत काश्मीरक श्री कल्हण कृत राजतरगिणी का ही समावेश किया जा सकता है, तथापि ऐतिहासिक महाकाव्य भी महाकाव्य की वस्तु को सीमित तथा इतिहास की सामग्री को अधिक मात्रा में प्रस्तुत करने के कारण इसी श्रेणी में रखे जाते है। इस परम्परा में,विद्वान् पाठक हिन्दू साम्राज्य के अंतिम सम्राट् पृथ्वीराज चौहान का नाम नही भूले होंगे, जो मुहम्मदगौरी को भारत से बार-बार खदेडने मे अपना जीवन सर्वस्व अर्पण कर चुके थे। उनकी घटनाओ का चित्रण किसी अज्ञातनामा कवि ने 'पृथ्वीराज विजय' नामक एक काव्य ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया था, जिसके टीकाकार है जोनराज । यह खण्डित काव्य अजमेर से म. म. गौरीशकर - हीराचन्द्र ओझा ने प्रकाशित करवाया था। अब तक पृथ्वीराज विजय के नाम से यही काव्य प्रसिद्ध था, परन्तु इस लेख मे एक अन्य 'पृथ्वीराज-विजय' काव्य का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है, जो अभी तक अप्रकाशित है तथा जयपुर के कछवाहो के इतिहास से संबद्ध है।

''**जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन**'' विषय के अन्तर्गत इस काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें कछवाह वंश की उस शाखा का इतिहास प्रस्तुत किया गया है, जो मध्यप्रदेश से ढूंढाड में आकर अपने पराक्रम से मीणों व बडगूजरों पर शासन करने में सफल हो सकी थी । इसका प्रामाणिक इतिहास तत्कालीन काव्य ग्रन्थों से ही मिल सकता है। एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता के सग्रह में क्रमाङ्क-१०४३४ पर उपलब्ध यह महाकाव्य **'पृथ्वीराज-विजय'** आमेर के प्रसिद्ध शासक महाराज

पृथ्वीराज के समकालीन किंवा समाश्रित किसी विद्वान् ने लिखा है, जिसका नाम पता अज्ञात है। सूचीपत्र के अनुसार इस ग्रन्थ की विगत इस प्रकार है -

substnance	-	country made paper
Sıze	-	5x9 ınches
Folıo	-	12 [Marked by M M Harprasad shastry, vıce presıdent of Asıatıc Socıety Calcutta]
Lıne	-	9to12 ın a page
Character	-	Modern Nagar
Appearance	-	Solıd.wrıtten lengthwise & on the one sıde The former owner of the Manuscrıpt thought the 7th leaf to be the first on which he wrote-

इस ग्रथ के उपलब्ध १२ पत्रो मे से ७ वे पत्र के पीछे लिखा है -**'गोकुल प्रशादस्येदं 'पुस्तकं पृथ्वीराज-विजयं खण्डित १२ पत्राणि ।'** केवल यही पक्ति इसका नाम निर्धारण करती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी सकेत नहीं मिलता, जो इस विषय मे विचारणीय हो। उपलब्ध पृष्ठो पर संख्या अंकित नहीं है। अत. यह नही कहा जा सकता कि इससे पूर्व कितने पृष्ठ और थे। केवल श्लोक संख्या ६२४ वें से प्रारम्भ होकर ७७९ तक क्रमश पद्य उपलब्ध हैं। इन १५३ पद्यों मे कछवाहों की वशावली के अनुसार २० शासको का वर्णन प्राप्त होता है।

राजस्थान के विभिन्न भागो का इतिहास लिखा जा चुका है, परन्तु जयपुर का प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नही होता है। चौमूं निवासी श्री हनुमान् शर्मा ने नाथावतों के इतिहास के साथ ही जयपुर के शासकों का भी वर्णन प्रस्तुत किया है, जिसका आधार प्राचीन हस्तलेख व दस्तावेज बताये गये हैं। यदि इसी के आधार पर उपलब्ध इन १५६ पद्यो की समीक्षा करें तो साम्य ही दृष्टिगोचर होगा । इस प्रकार सस्कृत के एक अन्य अप्रकाशित महाकाव्य (ऐतिहासिक) कच्छवश का आश्रय लेने पर भी उपर्युक्त विषय पुष्ट होता है। कच्छवश महाकाव्य के लेखक स्व. श्री कृष्णरामजी भट्ट (राजवैद्य)ने पोथीखाने से प्राचीन संग्रह किया था, जो एक प्राचीन रजिस्टर मे लिखित आज भी उनके वंशज श्री देवेन्द्रकुमार जी भट्ट के पास सुरक्षित है। प्राचीन हस्तलेखों से

उद्धृत उन महत्त्वपूर्ण घटनाओ को ही कवि ने काव्यरूप मे प्रस्तुत किया है। जिसकी पुष्टि उपलब्ध इन १५६ पद्यो से हो जाती है। इस प्रकार इन दोनो ग्रन्थो को प्रकाश में लाना आवश्यक है। यहा दोनों ग्रन्थों के साम्य-वैषम्य पर प्रकाश डाला जा रहा है।

'कच्छवंश महाकाव्य' २० सर्ग का एक विशाल ऐतिहासिक महाकाव्य है, जो कछवाहो की सपूर्ण वशावली प्रस्तुत करता है। **'मुंहता नैणसी री ख्यात'** मे जो वंशावली उपलब्ध है, इसी के आधार पर लेखक ने प्रत्येक शासक का वर्णन किया है। ग्रन्थ विस्तृति के भय से केवल उल्लेख ही किया जा सका है, विस्तृत वर्णन नहीं। इसके विपरीत -**'पृथ्वीराज विजय'** काव्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में विस्तृत वर्णन करता है। इसका विभाजन नही किया गया है। इसका प्रारभ राजा सोढदेव के वर्णन से होता है, जिसमे उसके विवाह का उल्लेख है। उपलब्ध प्रथम पद्य (स.६२४) निम्नलिखित है-

''स श्रीमानुपगृह्य हर्षदकृतिस्तत्पारिबर्हं ततो
विस्मेरीकृतसर्वलोकनिवहो रम्यैरनेकैर्गुणैः।
औदार्यादिभिराविधाय विधिवद्- वैवाहिकांस्तान् विथीन्
स्तेनानुव्रजता समं कतिपयैः प्रत्याययौ पद्धतिम् ॥६२४॥''

यद्यपि इसमें किसी का भी नामोल्लेखन नहीं है, परन्तु यह उल्लेख श्री सोढदेव के सबन्ध में इसलिए माना गया है कि अग्रिम पद्यों में पद्य स.६३१ श्री दूलहराय का जन्म विवेचन करता है-

''दानप्रीतमहीश्वराभिहितगा रागाभिशर्माश्रये
देवीदर्शनलस्यमानमहिमा देव्या विजज्ञे सुतः।
भूपालस्य शुभाशया ग्रहवरैरावेद्यमानोदये
लग्ने लग्नपतौ बलीयसि पिता प्राचेतसं दुल्लहकम् ॥६३१॥''

'कुलदेवी' के साक्षात् उपस्थित होकर दुर्लभराय को प्रेरणा व शक्ति प्रदान करने की घटना का वर्णन प्राय सभी काव्यकारो ने किया है। कच्छवंश में.लिखा है-

''उत्तिष्ठ,वत्स ! किं शेषे कास्मि रे पश्य मामिति।
शृण्वन् देव्याः समुत्तस्थौ हल्लं दुल्लृहः क्षतोप्यलम्॥

जानीहि गोत्रदेवीं मां प्रीतास्मि तव वीर्यतः।
अरं ब्रूहि व़रं साक्षादेवं देवी तमभ्यधात् ॥"

पृथ्वीराज विजय में यह क्रम विस्तृत रूप मे वर्णित है -

"मापन्नो विमुहोऽपि तप्त-हृदयप्रोदग्रतापावली
वेलेव प्रतिरोद्धुमम्बुधिचलत्कल्लोलमालामहम्।
वर्ते सम्प्रति सन्निधौ तव जवादेता जयश्रीरिव
श्रीमानेधि समेधिताखिलबलो कालेऽति सा तं जगौ ॥(६६२)
पीयूषायितमेतदेव वचनं तस्या निपीयोत्थितं
प्रोत्थाय प्रणनाम वर्णितगुणैर्विश्वाम्बिकाया बुधैः।
श्रीमत्या चरणाम्बुजद्वयमिदं भाग्यं ममाहो महन्
मन्दस्येति विभावयन् दृढमतिः श्री सोढदेवात्मजः ॥ (६६३)"

श्री सोढदेव की मृत्यु के पश्चात् श्री दुर्लभराय की अतिमावस्था में दक्षिणयात्रा का वर्णन सन्दिग्ध है। इनकी मृत्यु कहा हुई थी , यह विषय सदेहास्पद है। प्राचीन वशावलिया इस विषय में एक मत नही है। कुछ वशावलिया उनकी मृत्यु खोह मे मानती है तथा अन्य ग्वालियर अथवा युद्धभूमि मे ही। टाड ने तो यह विषय सर्वथा भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। वे उनकी मृत्यु मीणो द्वारा मानते हैं तथा काकिल की उत्पत्ति उनकी मृत्यु के पश्चात् लिखते है। यह किसी भी ऐतिहासिक प्रमाण से सपुष्ट नहीं है। कच्छवंश महाकाव्य मे लिखा है कि-

"अथ सोढे दिवं याते दुल्ल्हेन्द्रे दूरवर्तिनि।
दाक्षिणात्या नृपाः सैन्यं रुरुधुःद्राग् गवालयम् ॥(३-८३)
जयसिंहो जयं लिप्सुस्तोमरः सोमरोपमः।
विलिख्य विससर्जाशु दलं दुल्ल्हकवर्मणे ॥(३-८४)
संदेशमागतं श्रुत्वा खोहे संस्थाप्य काकिलम्।
वाहिनीं महतीं कर्षनगादुल्ल्हो गवालयम् ॥(३-८६)
इत्थं निपात्य परवर्गमखर्वगर्वः
शस्त्रप्रहारशकलीकृतकायसर्गः ॥
तत्रैव हन्त जयसिंह नृपोपकारी
लोकं निलिम्प कुल - लोकनमालुलोके ॥ ३ - ८१ ॥

'**पृथ्वीराजविजय**' मे यह विषय कच्छवश से साम्य रखता है। पद्य है -

> **''राजन् दक्षिणदिक्पतेर्बलवतो योधांश्चमूचारिणो**
> **राज्यं जातु जिघृक्षवो नृपशवो गर्जन्ति संपित्सवः।**
> **भूपालेशकपर्दिनोऽपि भवतो भूपालसिंहस्य तत्**
> **नीतिज्ञैरवधीर्यता यदहिते सावज्ञतैवाज्ञता ।।१५।।**
> **तं संहत्य रणे निपात्य नृपतिं हेतिं - प्रणीतोन्नतिं**
> **चञ्चद्द्वारकचन्द्रहासशतकैरेकैकशः सर्वतः।**
> **घ्नन्तं भूरिबलाम्बु जघ्नुरनयं तेजस्विवाहाजवा**
> **दुद्विग्नाविमयं भयंकरममुं ते दक्षिणेशानुगाः ।।७२९।।''**

महाराज काकिल का जन्म दुर्लभराय की मृत्यु से पूर्व हो चुका था तथा वे धर्मशास्त्रानुसार अपने पिता की उत्तर क्रिया करने के अधिकारी भी हो चुके थे-यह निम्नलिखित पद्य से पुष्ट होता है -

> **''कृत्वाऽसौ जनकस्य चोत्तरविधिं यातस्य दिव्यं पदं**
> **राज्यं प्राज्यतमं विधाय विविधैर्भूयो बलैर्दुर्ग्रहम्।**
> **आश्वास्य स्वजनानुपेत्य गृहिणीं हृद्यप्रभारोहिणीं**
> **बुद्ध्वा दोहदशालिनीं प्रमुदितो युद्धाय बुद्धिं दधौ ।।७३२।।''**

महाराज काकिल के पश्चात् हणूदेव,जान्हड(ज्ञानद) पज्वन(प्रद्युम्न) तथा मलेषी आमेर के उत्तराधिकारी बने। इनका शासनकाल सीमित रहा। पज्वन जी चौहाननरेश पृथ्वीराज के समकालीन थे तथा उनके आदेश से उन्होंने अनेक युद्धों में भाग भी लिया था। मलयसीजी के ६ रानी तथा ३२ पुत्र थे। लिखा है-

> **''तस्यारीन् बलिनो नलैर्जितवतो द्राङ्मालवेन्द्रादिकान्**
> **कीर्तिर्दिग्वलयं चकार धवलं ज्योत्स्नेव भूर्युज्ज्वलाः।**
> **षड्भार्यस्य बभूवुरुग्रमहसो द्वात्रिंशदात्मोद्भवा-**
> **भावज्ञा भुजवैभवार्जितधना धन्यं च तं चक्रिरे ।। ७४९ ।।''**

कच्छवंश महाकाव्य में भी लिखा है कि मलेषी ने ६ विवाह किये थे, जिनमे मानलदे से बीजलदेव (विज्जल) उत्पन्न हुये थे-

व्युवाहादिलजां राजा नाम्ना मानलदां मुदा।
याऽसूत सुतमुत्तंसं शूराणां विज्जलाह्वयम्।।५-६
बलैरर्बुदद्दुर्गेन्द्रं देवडं परिजित्य सः।
जग्राह तत्सुतां तारां तारामिव दिवश्च्युताम्।।५-७
एवमेव पराक्रम्य पराक्रमणकोविदः।
चतस्रः क्रमतः कन्या राज्ञामन्याः समाददे।।५-८
रममाणो गुणोदारैर्दारैर्मारमनोरमः।
क्रमादुत्पादयामास द्वात्रिंशत् तनयान्नृपः ।। ५-९

श्रीविज्जलदेव (बीजलदेव)से राजदेव तथा राजदेव से कीलन का जन्म हुआ। कीलन के दो रानी व छह पुत्र बतलाये जाते हैं, परन्तु इतिहास नाथावतो(जयपुर)का इतिहास -हनुमान् शर्मा,पृ २९-३०) मे केवल तीन पुत्रों का उल्लेख है। पृथ्वीराजविजय छह पुत्रो का ही उल्लेख करता है -

''रेमेऽसौ रमणीद्वयेन रहसि श्रीमान्द्युतीशद्युति-
र्भूमिं भूरि जुगोप जिष्णुविभवो विष्णुस्त्रिलोकीमिव।
षड्सुनुस्स नृपो निहत्य च रिपूनाराध्य देवीं भवे
लब्धज्ञानमहोदयोर्द्विजवराल्लेभे दुरापं पदम् ।। ७५८ ।।''

कच्छवंश महाकाव्य भी इसका समर्थन करता है। उसमे छह पुत्रो के नाम भी प्रस्तुत किये गये हैं - रानियों की सख्या के विषय मे विवाद नही है-

'पितुः प्राप्य पदं प्राज्ञः प्रजाःधर्मेण पालयन्।
कीलन कीलितारातिर्द्वे स्त्रियौ परिणीतवान्।।५-३१
तत्रैका दोरराजाख्या रावतेन्द्रसमुद्भवा।
आसीद् भवालदा नाम कान्ता कीलनभूपतेः।।५-३२
चाहमानमहारावहरपालस्य पुत्रिका।
राज्ञी राज्ञो द्वितीयाऽभूदद्वितीयाऽपि रूपतः।।५-३३
क्ष्मापतेः षट्सुता आसन् कुन्तिलो दोदलो मझः।
खीवराजः शिववरो यशोराज इति क्रमात् ।। ५-३४''

महाराज कीलनदेव के ज्येष्ठ पुत्र का नाम कुंतिलक (कुन्तल)था । इनके ५

रानियां व १३ पुत्र थे। 'वीर-विनोद' में केवल चार पुत्र ही बताये गये हैं। कच्छवश में ५ रानिगा व १३ पुत्रों का सकेत है-

> **''कुतिलस्य प्रिया· पञ्च तथा पुत्रास्त्रयोदश।**
> **जोणशिः किं च हम्वीरो जोबनेरमियाय य· ।।५-३९''**

पृथ्वीराजविजय में भी यही उल्लेख है-

> **''धीमांस्तस्य पदं शशास विधिवत्सूनुर्बली कुन्तिलो**
> **लालत्कीलितशत्रुरिन्दुरुचिरो दुर्गं परं रोचयन्।**
> **रामाभि· स च पञ्चभिः सुचतुरो रेमे रतिं वर्द्धयन्**
> **पुत्रानात्मसमांस्त्रयोदश दिशो धावच्च लेभे यशः।।५-५९''**

श्री कुन्तिल के पश्चात् जूणसी, उदयकरण, नरसिह तथा बनवीर राजा बने। इनके शासनकाल में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी । श्री बनवीर के उद्धरण जी पुत्र तथा चन्द्रसेन जी पौत्र थे । महाराज चन्द्रसेन के पुत्र महाराज पृथ्वीराज थे । इनका नाम जयपुर के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। आमेर मे विद्यमान प्राचीन महलो में ९ महल प्रसिद्ध हैं। उनकी पुष्टि पृथ्वीराज विजय से नही हो पाती है। यहां इनके विषय के केवल ४ पद्य है, जिनमे प्रथम उत्तराधिकार प्राप्ति व चन्द्रसेन के स्व प्रयाण का, द्वितीय राज्यारोहण सवत् का, तृतीय रानियो के विषय मे तथा चतुर्थ पुत्रो की संख्या का उल्लख करता है। लिखा है-

> **''राज्यं प्राज्यतमं विभुज्य जनके स्वाराज्यभोगेशया**
> **स्वर्याते बहुदायिनि श्रितनयः श्री चन्द्रसेने नृपः।**
> **अंकेषु श्वसनावनी परिमिते संवत्सरे वैक्रमे**
> **चक्रे फाल्गुनकृष्णकुण्डलितिथौ विप्रैरसौ पार्थिवः।।७७४।।''**

संवत् १५५९ फाल्गुन कृष्णा ५ को पृथ्वीराज का राज्यतिलक हुआ था, यही आशय है। अग्रिम दोनों पद्यों में ९ रानिया व १८ पुत्रों का उल्लेख है। कच्छवंश महाकाव्य में एक जनश्रुति भी वर्णित है, जिसके अनुसार बताया जाता है कि गालवाश्रम के मुनि श्री कृष्णदास जी पयोहारी ने कनफटे साधु योगी चतुरनाथ के चंगुल से महाराज की रक्षा की थी। अपनी तपस्या के प्रभाव से पयोहारीजी ने सिंहाकृति

योगिराज को गर्दभ बना दिया था और उनके शिष्यो के अनुनय-विनय पर पुन· मनुष्य बनाया था। उसी दिन से उन साधु योगियों का काम था कि वे एक भार लकडियों का वहा पहुचाया करते थे। यह कथानक इन पद्यो में प्रस्तुत किया गया है-

"कर्णस्फोटान् समुत्सृज्य राज्ञा रामानुजीयकः।
अकारि पय आहारो गुरुर्गुरुचमत्कृतिः ॥६-४०
योगिनोऽपि मृषामन्त्रतन्त्रदर्शितसिद्धयः।
शिला· प्रचिक्षिपुः लुब्धाःपय आहारि भीतये ॥६-४१
विलोक्य पय आहारी पतन्तीर्विपुला· शिलाः।
हुंकारेणैव ताः सिद्धो ध्वंसयामास दूरतः ॥६-४२
अथान्येद्युः पुन· पापाः पाखण्डपथवर्तिनः।
भीषयां सिद्धमासुस्तं सिंहं तां परिकल्प्यते ॥६-४३
सोऽपि रामानुजीयानां मुकटो लकुटेन तान्।
कूटकेसरिण· सद्यो द्रावयामास हेलया ॥६-४४
ततस्ते स्वामिनो ह्रीणास्तमेव शरणं ययौ।
समुद्रादपि गंभीरः समुद्राद्रागृदावहो ॥६-४५
स तानिति पराजित्य महात्मा प्रणतान्पुरः।
काष्ठानि मे तपो वन्हौ क्षिपतेत्यमशिक्षयत् ॥६-४६"

महाराज पृथ्वीराज के पश्चात् उनके पुत्र श्री पूर्णमल उत्तराधिकारी बने। इतिहास इस विषय मे बतलाता है कि श्री पूर्णमल अठारह पुत्रों मे से१७ वे पुत्र थे। परम्परा को तोडकर महाराज ने इन्हें ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। पृथ्वीराज विजय मे इस विषय को लेकर कोई विशेष बात नहीं कही गई है। वह पद्य है-

"पृथ्वीराजसमाह्वये नरपतौ याते परं नाकिनाम्
कीनाशातिभयङ्करे भगवतो व्युत्थापनार्हे तिथौ।
अन्येद्युस्तनयोऽस्य भास्वरवपुः श्री पूर्णमल्लाभिधो
राज्यं प्राज्यगुणं गुणैरगणितैराप प्रजाःरञ्जयन् ॥७७७॥"

म. पृथ्वीराज के १९ पुत्र थे- ऐसा कच्छवश महाकाव्य का मत है। वे भीमसिंह को सर्वत. ज्येष्ठ मानते हैं तथा म.पूर्णमल को सत्रहवां पुत्र। ऐसा लगता है

कि या तो महाराज पृथ्वीराज ने अपनी प्रिय रानी के पुत्र को उत्तराधिकारी बनाया होगा या अन्य कोई आन्तरिक कारण रहा होगा , जो प्रकट नही हो सका है। पूर्णमल के पश्चात् उनके भाई भीमसिंह ही उत्तराधिकारी बने थे-

"तत्रापि प्रथमं बाला बालान्वितयथाक्रमम्।
भीमो भीमोपमो जज्ञे ज्यायान् भीमोहवर्जितः ।।७-२३
असूत सा सुतं साध्वी पूर्णमल्लं यथार्थदा।
पूर्णमल्लोऽपि सुज्जोजिं जनयामास नन्दनम् ।।७-३५
(सुज्जोजिं जननी निन्ये स्वपितुर्वेश्म बालकम्।
यतस्ते तूर्णमुत्पन्नाः पूर्णमल्लोतकच्छपाः ।।
मैडहाथोजवास्तव्याः पूर्णमल्लोतका यतः ।। पाठान्तरम्)
एवमेकोनविंशत्या चन्द्रसेनसुतः सुतैः।
सहितः स हितं चक्रे प्रजाचक्रस्य नित्यशः ।।७-३९
पूर्णमल्लो राजमल्ले पितर्युपरते सति।
सिंहासनं समाक्रम्य सिंहसत्वोधरां दधौ ।।७-६९
स षड्वर्षाणि मासौ द्वौ रामदृग्दिवसानपि।
धुरं दधार ढुण्डारदेशस्य गुणपेशलः ।।७-७०
मृते भ्रातरि भूपोऽभूद् भीमो भीमपराक्रमः।
योऽस्थादब्दद्वयं मास षट्कं किञ्च दिनानि षट् ।।७-७२"

म. पूर्णमल ने ६ वर्ष २मास और २३ दिन राज्य किया था और म. भीमसिंह ने २ वर्ष ६ मास और ६ दिन शासन किया था। पृंथ्वीराज विजय काव्य भी इसका समर्थन करता है -

"षड्वर्षाणि षडाननोन्नतरुचीं नीचीकृतान्यद्युति-
द्वौं मासौ दिवसानपि श्रुतवतां वर्षस्त्रयोविंशतिम् ।।
भुक्त्वा भीमसमो सुखं सुरसखो राजा बुभूषुर्दिवं
पुण्योघैरनघोर्जितां जितरिपुः श्री पूर्णमल्लो ययौ ।।७७८
याते तूवरिकासुते सुरपुरं बालासुतो विक्रमी
संचक्राम च वैक्रमे बलनिधिर्व्योमांकबाणेन्दुभिः।

वर्षे संकलिते सहस्र्यधिकधीशुक्ले मृडानी तिथौ
राज्यं भ्रातुरलश्चकार चतुरो भीमोभिधः स्वैर्बलैः ।।७७९।।

पृथ्वीराज विजय का यह उपलब्ध अंतिम पद्य है। नहीं कहा जा सकता , इसके पश्चात् यह ग्रन्थ कितना विस्तृत है। कच्छवश महाकाव्य मे तो वशावलियों के अनुसार भीम के पुत्र रत्नसेन का गद्दीनशीन होना लिखा है ।

इस प्रकार उपलब्ध १५६ पद्यों का ऐतिहासिक विवेचन एवं अन्य ऐतिहासिक महाकाव्य कच्छवंश के साथ साम्य - वैषम्य स्पष्ट करने से यह स्वतः सिद्ध है कि पृथ्वीराज विजय एव कच्छवश महाकाव्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं तथा प्रामाणिक भी । इसकी पूर्ण प्रति उपलब्ध हो, एतदर्थ प्रयास किया जाना चाहिए, और ये प्रकाशित भी किये जाने चाहिंए, ताकि इतिहास में उत्पन्न भ्रम दूर किया जा सके।

'शोध-पत्रिका',
साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ,
उदयपुर, वर्ष -१८, अक३ से ।

***

‘मानप्रकाशः’
एक अप्रकाशित ऐतिहासिक महाकाव्य

भारत के मुगलकालीन इतिहास मे जयपुर के महाराजा मानसिह (प्रथम) का नाम बडे महत्त्व का है। ये आमेर के कछवाहा शासक श्री भगवन्तदास के औरस पुत्र थे। इनका जन्म वि. स. १६०७ में हुआ था। अपनी योग्यता एव वीरता के बल पर ये मुगल सम्राट् अकबर के प्रधान सेनापति के रूप में प्रतिष्ठित हुए। कर्नल जेम्स टाड ने इनके सबंध में राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि इन्होने भारत के प्रत्येक प्रान्त में ही नहीं, प्रत्युत समुद्र पर्यन्त अतुल पराक्रम और बाहुबल से अपनी जाति का गौरव पाया था।

महाराजा मानसिह नीति-निपुण एव शूरवीर होने के साथ-साथ बहुभाषा-विद् भी थे। यही कारण था कि इनके आश्रय में विविध भाषाओं के सुज्ञाता अनेक विद्वान् रहते थे। उन विद्वानो में एक का नाम था राय **मुरारिदास,** जिन्होने अपने आश्रयदाता मानसिंह की प्रसन्नता के लिये **मानप्रकाश** नामक एक ऐतिहासिक संस्कृत महाकाव्य की रचना की।

मानप्रकाश की मूल एव पूर्ण प्रति जयपुर महाराजा के निजी पुस्तकालय ‘पोथीखाने’ में सुरक्षित बतलाई जाती है, जैसाकि स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी एवं स्व. पं. नन्दकिशोर शर्मा साहित्याचार्य के सम्मिलित लेख

'Lıterary Actıvities and Princıpal Scholars of Jaıpur ' जो कि श्री के. एल जैन द्वारा प्रकाशित 'जयपुर-एल्बम' के १३ वे अध्याय के रूप मे प्रकाशित है, से ज्ञात होता है। उन्होंने लिखा है कि An elaboıate account of the victorıes of Maharaja Man Sınghjı ıs found ın a poetıcal work, entıtled 'Man Prakash' by Raı Muraridas It ın mentıoned ın the copy of which is ın the lıbrary of Asıatıc Socıety of Bengal that Maharaja Man Sınghjı conquered the forts of Chıttore, Ranthambhor, Khumbhalmeı and defeated all the prominent Rajput states of the perıod

महाराजा मानसिह प्रथम को प्राचीन पुस्तको के सग्रह एव अध्ययन का बहुत शौक था। आप स्वय भी कवि थे, जैसा कि आपके जीवन चरित्र से प्रकट होता है। प्रो श्री जितेन्द्र मोहन घोष- भू पू इतिहास विभागाध्यक्ष, महाराजा कालेज, जयपुर, ने एक लेख लिखा था, जिसका शीर्षक था- 'Amber-Jaipur Ruling Princes as Patrons of Letters' इसमे लिखा है -

Maharaja Man Sıngh (1589-1614) was hımself a poet in Hındı, Here ıs one of hıs Dohas -

Itai ham Maharaja hain
Utai apox Kaviraj
Hundi likhi hazar ki
Naika na ai laj
'इतही हम महराज हैं
उतही आप कविराज।
हुण्डी लिखी हजार की
नैक न आई लाज॥'

यह दोहा श्री नरहरि के पुत्र श्री हरिनाथ को लिखकर भेजा गया था, जो एक हजार का ऋणी था।

एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के पुस्तकालय मे 'मुरारिदास राय' के नाम से 'मानप्रकाश' नामक रचना उपलब्ध है, जिस हस्तलिखित ग्रन्थ का क्रमाक ८२५९ है। इसकी विगत सूचीपत्र में इस प्रकार उपलब्ध होती है -

Substance	-	Country made paper,
size	-	13 1/2 x 8 1/2 inches
Folios	-	marked 2, 3, 17-28 30-33, 66
Lines	-	10 in a page
Character	-	Nagar of the 18th centuary
Appearance	-	discoloured A mere fragment

A biography of Man Singh, the General of Akabar, Jahangir and the Raja of Jaipur The Mss from which this was copied seems to have been worm eaten '

इस विवरण के पश्चात् ग्रन्थ के कुछ उद्धरण हैं, जिनसे पता चलता है कि मानसिंह नामक राजा, अकबर के सेनापति एव आमेर के कछवाहा शासकों के वशज ही हैं। कुछ पद्य हैं -

(१) **"दुष्टानां दमनेन देवनिलयं तीर्थश्च यः स्थापयेत्,**
एवं चेतसि चिन्तयन्निति मुहुर्ज्जल्लालदीनः कृती।
एकं भारतभूतले प्रभुरसौ विज्ञापितुं मानवाः,
तद्वद् भूतलरक्षणाय विजयी सस्मार जिष्णुं पुनः ॥

इस पद्य में 'जल्लालुद्दीन' नाम अकबर के लिए प्रयुक्त है।

(२) **"यत्राभवद्भूपकुलावतंसः पृथ्वीनृपो नाम गुणप्रदीपः।**
तस्मादभूद् भारहमल्लभूपः सद्धर्मकर्मार्जितपुण्यपुञ्ज· ॥
जज्ञेऽथ तस्माद् भगवन्तदासः प्रचण्डदोर्दण्डजितारिसङ्घः।
जाते जगत्यां कछवाहवंशे राधाधवाराधनपूतपाणौ ॥
दिङ्मण्डलं साधुमनस्तदानीं बाले स्फुरत्तेजसि सुप्रसन्नम्।
मानेन सिंहो भवितेति नूनं अवेक्ष्य स क्षोणिपतिः कृतज्ञ·।
नाम्ना रिपुव्रात-भयंकरेण श्रीमानसिंहं तनयं चकार॥"

उपर्युक्त पद्यो में स्थूल दृष्टि से कछवाहवंशीय महाराजा मानसिंह की वशावली प्रकट हो रही है, जिसमें मूल पुरुष है महाराज पृथ्वीराज। वास्तव मे महाराज पृथ्वीराज के पुत्र का नाम पूरणमल, पौत्र का नाम भीमसिंह, भीमसिह के पुत्र रत्नसिंह और पौत्र आशाकरण थे। श्री आशाकरण के पुत्र का नाम भारमल था, परन्तु यहां भारमल को पृथ्वीराज का ही पुत्र बता दिया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महाराज

पृथ्वीराज के पश्चात् भारमल का ही नाम इतिहास मे प्रसिद्ध रहा है, सभवत इसी दृष्टि से ऐसा लिखा गया है, अथवा ऐसा लिखने में सक्षेप मे वर्णन की दृष्टि भी हो सकती है। श्री भारमल के पश्चात् प्रस्तुत वशावली ठीक है। श्री भारमल के पुत्र का नाम भगवन्तदास एव भगवानदास तथा पौत्र (श्री भगवन्तदास के पुत्र) का नाम श्री मानसिंह था। यही मानसिह **'मानप्रकाश'** काव्य के नायक है।

एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता मे उपलब्ध यह हस्तलिखित ग्रन्थ अपूर्ण है। जैसाकि बताया गया है, यह मूल ग्रन्थ नहीं है, अपितु मूल ग्रन्थ से प्रतिलिपिकृत है। इसके अनेक स्थल, वर्ण, पद रिक्त है, जिससे यह स्पष्ट है कि या तो वह स्थल मूल प्रति मे दुष्पाठ्य होगा या कीटभक्षित होने से नष्ट होगा। इस ग्रन्थ के उपलब्ध पृष्ठो का क्रम भी विचारणीय है। प्रथम दो पत्र अतीव जीर्ण-शीर्ण, खण्डित तथा त्रुटित है। इसके पश्चात्, १६ वे पृष्ठ तक पत्र उपलब्ध नही है। १७ वें पृष्ठ से २८ पृष्ठ तक १२ पृष्ठ (पत्र) उपलब्ध हैं। ये पत्र सुवाच्य एव प्राय पूर्ण है। २९ वां पत्र उपलब्ध नहीं है। फिर ३० से ३३ तक ४ पृष्ठ प्राप्त हैं और इसके बाद केवल ६६ वां पत्र मिलता है। ये सारे पत्र एक ही लिपिकार के द्वारा लिखित हैं। ६६ वे पत्र पर भी ग्रन्थ समाप्ति के लक्षण नहीं दिखते ।

ग्रन्थ के प्रथम दो पत्रो का विषय अग्रिम पत्रो से सर्वथा भिन्न है। प्रथम दो पत्र खण्डित, अपूर्ण एव दुर्वाच्य होने से सामान्यत· पठनीय भी नहीं है। फिर भी इनका विषय धर्मशास्त्र का आशौच प्रकरण है। इसे 'मानप्रकाश' से भिन्न रचना भी स्वीकार नहीं कर सकते, क्योकि आदि पत्र मे इसका स्पष्ट उल्लेख भी है। जैसे -

"......... ग्र पुण्डरीकाक्षं सर्वधर्म्मैकसाक्षिणम्।
मन्वादिशास्त्रमालोच्य शुद्धिरजनिरू........... ॥
.... (नि) नानास्मृतिप्रोक्तमतानि शुद्धो
महत्तकः श्रीलमुरारिदासः।
स्वल्प प्रया .... मो हि विचारणीया
शुद्धिः प्रसिद्धा यदि साक्षिसिद्धिः॥'
तयैव रिक्ता बदुति .... लि य शक्ता।
गत्वा त्रिविक्रमं वक्ष्ये तत्क्रमं क्रमतः सताम् ॥

............द्धि स्वरूपं तद्भिन्नं फलं तत्र प्रवर्तने।
सामान्यतया चतुर्वर्णं संस्थानोत्पत्ति सूत.........
..............................नाँ विशेषतः ।।
सद्यः शौचादि दशधा विविधाशौचमोचनम्।
शंकरं तु वि .... अम्।।
तथा नाशविशेषोत्थं मांसपिण्डादिजन्तया।।
तथा निर्हरणारद्या तं मन........................।
................ध्वनधिकारितवपुददानाद्यनर्हता।
औरसादि क्रमेणेन वशवा पुत्रलक्ष ....(णम्)।

प्रथम पत्र पर उपरिलिखित अश मिलता है, उसमे लेखक मुरारिदास का एव ग्रन्थ मानप्रकाश का नाम कीटभक्षित नही हुआ है ,अत इसका निर्णय सरलता से हो जाता है। उपलब्ध प्रथम दो पत्रो मे भी पत्र सख्या एक व तीन प्राप्त है। बीच का पत्र(द्वितीय)खो गया है। प्रथम पत्र की अपेक्षा तृतीय पत्र के विषय से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ का विषय धर्मशास्त्र की शुद्धि व आशौच व्यवस्था का दिग्दर्शन करना है। देखिए-

३. A'' Margin

.... महति शूद्रकायूर्यं संस्पर्शनं तथा।
अत्रेदं तात्पर्यं सर्वाशौचाभागे अतीते द ... ३
.... नारीनां दृश्यते रजः।
जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्व्वरी।।
अशौचे स्पर्शाधिकारः । तत्राङ्गिराः-
चतुर्थे ऽहनि (कर्त्तव्यः) संस्पर्शो ब्राह्मणस्य तु।
पंचमे ऽहनि विज्ञेयः संस्पर्शः क्षत्रियस्य तु ।।
षष्ठेऽहनि च विज्ञेयं वैश्यस्य स्पर्शनं बुधैः।
अङ्गस्पर्शः कर्त्तव्यः। अतएव देवलः-
'आशौचकालाद्' विज्ञेयं स्पर्शसान्नु विभागतः।
शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यथाशास्त्रप्रदर्शनात् ।। '

इत्यादि। इस तृतीय पृष्ठ का अन्तिम उद्धरण इस प्रकार है-

''३. B ब्रह्मपुराणे -

''सूतके तु मुखं दृष्ट्वा जातस्य जनक· शुचिः।
कृत्वा सचैलस्नानं तु शुद्धो भवति तत्क्षणात्॥
अन्या तु मातरस्तद्गेहं न व्रजन्ति चेत्।
सपिण्डाश्चापि संस्पृश्याः सन्ति सर्वेऽपि नित्यशः।
अन्या मातर. स .... (स्पर्शो) तु (मा) त्रे शुद्धा।
अत्र स्त्री जन्मनि - स्नानोपदेशात्। पितुरपि स्नानं
बिनैव शुद्धिरिति बोद्धव्यम् । तथा ब्राह्मणी क्षत्रिया ....

मार्जिन मे राम लिखा हुआ है। यह सभी पृष्ठो पर लिखा है। जैसाकि बताया जा चुका है इसके पश्चात् १७ वे पृष्ठ से ग्रन्थ प्रारम्भ होता है। बीच के पृष्ठ उपलब्ध नही है। परन्तु प्रारम्भिक पृष्ठो का लिपिकार एक ही है।

१७ वे पृष्ठ से राज-महिमा प्रारम्भ होती है। ये सारे पद्य इस बात को प्रकट करते है कि राजा जो भी हो, सभी के द्वारा मान्य होना चाहिए, चाहे वह यवन ही क्यों न हो।

सर्वप्रथम जो पद्य लिखित है, उनका प्रसग ज्ञात न होने से उनके विषय में स्पष्टत उल्लेख नही किया जा सकता । आभास ऐसा होता है कि किसी पातसाह अर्थात् बादशाह के सबध में लिखा गया है। सभवत बादशाह की ससार में क्या आवश्यकता रही है , इसी पर लेखक के विचार हैं । देखिये-

''......पद निर्द्दलद्वरा न खण्डवेनूत्करै-
र्द्दिनं समलघन्निशा नृपमनोविनोदक्षमा।
विलक्षणो पतिः स्ववन्तुरगराजमध्यापयन्
कृदेति सविचारयन् धरणिचक्रचूडामणि·॥
धर्मान् स्थापयितुं धरासु धरणौ (?) सुस्थां विधातुं तथा
पिष्ठान्नृपतीनतीव विकलीकर्तुंभ्प्रभूतो......।
देवानां सदनानि दानमभितो नैतद् विना दिग्जयै-
रित्यालोच्य सपातिसाहतिलकःसस्मार विष्णुज्जयी॥

क्षोणीरक्षणकारणाय विभुना स्वागेन कृष्णेन यो
गोब्रह्मादिकधर्मसप्तनगरीरक्षार्थमाविष्कृत· ।
तस्याः प्रार्थनतः प्रतापतरणिः सल्लोकरक्षापरः
सोऽयं सर्व्वगुणाश्रयो विजयतां श्रीपातिसाहो भुवि ।।
य एनमवजानन्ति शंकन्ते सुविशङ्किताः ।
सद्भिस्त एव निग्राह्या मूढाप्पण्डितमानिनः ।।
श्रीकृष्णांगलवे भूपः कलौ गूढ-सुलक्षणः ।
सेवनीयो जनैर्नित्यं परत्रेह च शर्मणे ।।''

वह बादशाह वास्तव मे चक्रमणि ही है, अत उसके समान ही इसका सम्मान किया जाना चाहिए- यही लेखक का अभिप्रेत है-

'अयं रामासहस्राक्षवृन्दारकाश्रितः ।
चक्रपाणिरविज्ञेयो विज्ञैरिह न संशय· ।।
अन्योपि यो महीपालः स विष्णुरिव कीर्तित· ।
ना विष्णुरवनीय· स्यादिति वाक्यनिदर्शनात् ।।
अतएवायमेवैक· कलौ कलियुगे स्थितैः ।
आश्रमैरपि वर्णैश्च सेवनीयः स्वभावत· ।।'' इत्यादि

इस प्रकार राजप्रशसा करते हुए उन्होने अकबर को सम्राट् स्वीकारने के लिए अपना मत प्रकट किया है -

''न भजन्ति जना ये तन्त एव गतबुद्धयः ।
भवन्ति भुवि दैवेन न कर्मणा गतबुद्धयः ।।
ये पुनः सर्वभावेन भजन्ति तमकव्वरम् ।।
कलिकल्मषमाहत्य ते स्युः स्वागतवृद्धयः ।।''
परलोकोदयस्तेषामैहिकेनानुमीयते ।
'' यथा लोकैर्विष्णुरिव ज्ञातोऽकव्वरभूपतिः ।
स तदेति कृदाचक्रे विक्रमाक्रान्तमानस· ।।
'' माञ्च सञ्चितदर्पौघञ्ज· जानन्ति सर्वतः ।
यावन्तः सृष्टिसंभूताः यावन्तो मामकव्वरम् ।।
ज्ञात्वावतीर्णं दैत्यारिमाचरन्ति कुलोचितम् ।

आश्रमाश्चैव वर्णाश्च ये चान्ये वर्ण-सङ्कराः।
कुर्वन्ति यवनास्तद्वत् स्वधर्मं स्वेन कर्मणा।।
स्मृतिशास्त्रपुराणादि प्रोक्तं धर्मेण कर्मणा।
दुष्टानां दमनेन देवनिलयन्तीर्थञ्च यःस्थापयेद्
देवं चेतसि चिन्तयन्निति मुहुर्ज्जल्लालदीनः कृती।
एवं भारतभूतले प्रभुमसौ विज्ञापितुं मानवाः
तद् वद् भूतलरक्षणाय विजयी सस्मार जिष्णुं पुनः ।।

उपर्युक्त पद्यो में अकबर का निरन्तर कीर्तन हुआ है। ये पद्य भिन्न-भिन्न स्थलो से उद्धृत किये गये हैं। यहीं से इस ग्रन्थ का काव्यत्व एव ऐतिहासिकत्व प्रारम्भ होता है।' जल्लालुद्दीन अकबर ' ऐतिहासिक व्यक्ति है ही। इसी अतिम पद्य के बाद निम्नलिखित पद्य है, जिनमे कछवाहवशीय शासकों के वर्णन के अवसर पर इस काव्य के नायक महाराजा मानसिह का वर्णन भी किया गया है। यद्यपि उनमे से कुछ पद्य इसी लेख मे निर्दिष्ट किये जा चुके है, तथापि यहा उन्हे पुनरुक्त करते हैं-

'अथ स्मृतस्तेन महोग्रतेजा
जिष्णुस्तदाज्ञावशगस्तदैव ।
स भानुवंशोचितमेव कर्म-
कर्त्तुम्प्रपेदे जनुषे ऽत्र वंशे ।।

'भानुवश' से तात्पर्य सूर्यवश से है । श्री राम सूर्यवशी थे और आमेर के कछवाहा भी सूर्यवशी ही है।

यत्राभवद् भूपकुलावतंसः पृथ्वीनृपो नाम गुणप्रदीपः ।
तस्मादभूद्भारहमल्लभूपस्सद्धर्मकर्म्मार्जितपुण्यपुञ्जः ।।

यहा उन्ही सूर्यवंशियों में से आमेर के प्रसिद्ध राजा श्री पृथ्वीराज एव श्री भारमल का उल्लेख है। श्री पृथ्वीराज का शासन काल-फाल्गुन कृष्णा ५ सवत् १५५९ से कार्तिक शुक्ला ११ संवत् १५८४ तक रहा है। श्री भारमल ने ज्येष्ठ शुक्ला ८ सवत् १६०४ से माघ शुक्ला ६ संवत् १६३० तक शासन किया था।

'जज्ञेऽथ तस्माद् भगवन्तदासः प्रचण्डदोर्दण्डजितारिसंघः।
तस्मात् स जिष्णुः कृतविष्णुवाक्यो जातो जयायास्य महीतलस्य ।।'

श्री भारमल के पुत्र का नाम भगवन्तदास था। ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते भगवन्तदास उत्तराधिकारी बने थे। इनका शासन काल माघ शुक्ला ६ सवत्१६३० मार्गशीर्ष शुक्ला ७ सवत् १६४६ तक रहा है।

'जाते जगत्यां कछवाहवंशे राधाधवाराधनपूतपाणौ।
दिङ्मण्डलं साधुमनस्तदानीं बाले स्फुरत्तेजसि सुप्रसन्नम्।।
मानेन सिंहो भवितेति नूनमवेक्ष्य स क्षोणिपतिः कृतज्ञः।
नाम्ना रिपुव्रातभयंकरेण श्री मानसिंहं तनयं चकार ।।'

मान युक्त होने से ही सिह का सिहत्व है, इस विचार से महाराज भगवन्तदास ने अपने पुत्र का नाम मानसिह रखा। श्री मानसिंह ने आमेर पर शासन मार्गशीर्ष शुक्ला ७ संवत्१६४६से आषाढ शुक्ला १० सवत् १६७१ तक किया था। इनकी मृत्यु के समय जहांगीर हिन्दुस्तान का सम्राट् था।

श्री मुरारिदास ने महाराजा मानसिंह की प्रसन्नता के लिए ही इस काव्य का निर्माण किया था। वे अनेक पद्यो मे श्री मानसिह का यशोगान करते है। कुछ एक पद्य इस प्रकार हैं -

१- **श्रीकृष्णे व्रजति स्वधामवसुधा याचे तदैकम्वरं**
दत्त्वैकन्तु वरं द्वितीयमपि स क्षित्यै तिरोभूत्ततः।
आद्यो धर्मविवर्द्धनाय भविता जिष्णुर्द्वितीयोदयं
मानक्षोणिपतिर्ययोर्निगदितुं धातापि नालं यशः ।।६० ।।(पृ.२०ए)

२- **अर्थक्रमेणैव स मानसिंहः सिंहोपमो विक्रमणे बभूव।**
विलक्षणं लक्षणलक्षणीयम्वपुः विपक्षक्षयकारि भेजे ।। (पृ.२० बी)

जैसा कि बताया जाचुका है ,श्री भारमल के शासन काल में ही म.मानसिह का जन्म हो चुका था। श्री मानसिंह अपने पिता एव पितामह के साथ अनेक युद्धो मे गये भी थे। हुमायू की मृत्यु के समय अकबर की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी। अवसर देखकर हेमूं नामक एक योद्धा ने दिल्ली पर चढाई कर दी। परन्तु वह अकबर की तलवार से मारा गया । अकबर ने हिजरी सन् ९६३ मे नारनोल सूबे मे एक मजनू खा काकशाल को हाकिम नियुक्त किया था। जब वह वहा पहुंचा तो शेरशाह का एक

गुलाम हाजीखा पठान उस पर आक्रमण कर बैठा। मजनूखा पराजित हो गया, परन्तु भारमल ने उनकी सुलह करादी। मजनूं खा ने भारमल की प्रशसा बादशाह से की और बादशाह अकबर ने एक फरमान भेजकर इन्हें बुला लिया। इनके बुलाने की घटना उस ग्रन्थ मे इस प्रकार वर्णित है-

'तदा निजज्ञातिगणान् प्रमत्तान् धर्मद्विषोऽवेत्यलतान् दिदेश।।६९।।
आमेरनाम्नी नगरी सुरम्या या दक्षिणस्यां दिशि संचकास्ति।।(पृ.२१ए)
तस्यास्तु तं भारहमल्लभूपं समानयामास स पातिसाहः।।७०।।
स सूर्यवंशोद्भवभूपतेज्ञास्समं स्वसैन्यैस्समुपाजगाम।
सम्मानयित्वा तमनेन साकं संबन्धमप्येष तदा चकार।।७१।।
स पातिसाहः श्रुतमानतेजाः सस्मार तं दिग्विजयाय वीरम्।
संस्मृत्य विष्णुं प्रभवांशभूतस्तमाह्वयामीति मनश्चकार।।७२।।
दिशो जिगीधर्महतां समृद्धये श्रीपातिसाहोऽति हितैर्मनुष्यैः।
तमाह्वयामास स मानसिंहं विज्ञाय विज्ञानदृशा सखायम्।।७३।।
बलेन रूपेण गुणेन योग्यो यदाभवद् भूमिपतेस्तनूजः।
तदा प्रतस्थे सुबलैरनेकैरकव्वरस्यान्तिकमुग्रतेजाः।।७४।।
प्रस्थानकाले जगतां हिताय श्रीमानसिंहस्य यदा बभूव।
तदा धरामन्यत कार्यसिद्धिं शुद्धाकृते. प्रस्थितिमेव तस्य।।७५।।

जब महाराजा मानसिंह सम्राट् अकबर की सभा मे गए थे तो बादशाह ने इनका बहुत सम्मान किया था और धर्मपुत्र के रूप मे स्वीकार किया था। श्री मुरारिदास लिखते है-

जगज्जिगीषोः किमकव्वरस्य यशः सरः खेलनराजहंसम्।
पुरः प्रयाणे नृपमानसिंहं महानुकूलः पवनः सिषेवे।।७६।।
महोग्रयोधावलिजातसंगस्तरङ्ग मातङ्गघटा सवंशः।
उद्यत्प्रतापप्रतिपन्ननाकः तदन्तिकं प्राप दिनैः कियद्भिः।।७७।।
प्राप्तं पुरं प्रेक्ष्य स पातिसाहः सम्मानदानादिभिरर्च्चयित्वा।
सर्वोपरि स्यादिह मानसिंहस्तथा विधास्यामितरां त्वराभिः।।७८।।
धर्मपुत्रं करिष्यामि येनायं प्रथितो भवेत्।
इति चित्ते समाधाय चकार सुकृती तथा।।७९।।

मानसिंह मम धर्मसंभवः सूनुरस्यातुलवीरविक्रमः।
किन्तु सन्ति यदनेकसम्पदस्तवैव तत् तमूचिवानिति ॥८०॥
एवमेव जनसंसदि स्वयं प्रोक्तवानजितवीरविक्रमम् ॥[१]
संभवन्तु मम वीरयोधकास्त्वामुदारगुणवृन्दसिन्धव ॥ ८१ ॥

बादशाह अकबर ने महाराजा मानसिह को दिग्विजय करने का आदेश प्रदान किया और मथुरा से लेकर द्वारका तक विजय करने के लिए उन्होने प्रस्थान किया-

मथुरातः समारभ्य द्वारक्यमभितः पुरीम्।(द्वारकाम्)
हैन्दवीसृष्टिरस्त्यस्मात् साल्पायासेन जेष्यति ॥८५॥
इति संचिन्त्य मनसा दिग्जयायाजितो ह्ययम्।
मानसिंहं महीपालं दिदेश तमकव्वर : ॥८६॥
आज्ञामवाप्य भूपालचक्रपूजितपादुक·।
श्रीमानसिंहभूपाल इति चित्ते तदा व्यधात् ॥८८॥
वृन्दावने दैवतवृन्दवन्द्यं गोविन्दरायालयमादरेण।
अहं विधास्ये बत येन भूयः कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमः स्यात् ॥८९॥

और इसके पश्चात् द्वारकानायक को जीतने के लिए श्री मानसिह ने प्रस्थान कर दिया। ततश्च सभी राजपूतों को वश में कर लिया, जिनमें कछवाहा, राठौड, भाटी, हाडा टाक(हाडा)चौहान, खींची, सिसौदिया, परमार, सोलकी, वघेल, चन्देल, गौड यादव आदि सम्मिलित थे-

राजपुत्रान् वशीचक्रे समस्तान् इह तान् शृणु ॥९१॥
पुरः कछवाहोऽस्ति राठौरभाटीहेडाटाकनिर्व्वाणचौहान खींची।
सिसौदी-पमारः सुलंकी वघेलश्चन्देल गौडस्तथा यादवोऽपि ॥९२॥

इसके बाद चित्तौड रणथभोर व कुभलमेर के गढो के विजय के सबध में एक पद्य है। वह इस प्रकार है-

चित्तौरं रणथंभोरं कुम्भलमेरुं त्रितयमिदम्।
यः स्वजननिवासविलासकृते तं नृपतिर्विजिगीषुरगात् ॥९४॥

मानसिंह के आगमन को सुनकर शत्रुओं की स्त्रियां अपने-अपने प्रियो को

छोडकर जंगल में रहने लगीं। सेना के साथ प्रस्थान करने पर उसके संबंध मे अनेक कल्पनायें की जाने लगीं -

प्रयाणमाकर्ण्य महीश्वरस्य वैरिप्रिया. प्रेयसिवीतसंगाः।
बभूवुरुत्सादितचातुरङ्गाः भेजुः कुरंगा इव काननानि ।।१०१।।
शूरःप्रतस्थेऽरिविदारणाय स मानसिंहः सहितो बलोघै· ।
तदा जलौघैरिव-शंकितोऽभूत् किमर्ज्जुन किं पृथुरेष भूपः ।।१०२।।

मान ने राणा प्रताप को बुलाया । मान ने कहा कि या तो सर्वतोभावेन बादशाह अकबर की आधीनता स्वीकृत कीजिए अथवा युद्ध के लिए बाहर पधारिये - राणा इसे सुनकर अत्यन्त कुद्ध हुए-

अथाजगामाभिमुखस्तुवद्भिर्जनैर्वृतो धर्मधुरीणमुख्यः।
तमाह्वयामास महोग्रवीर्य्यं राणानृपं मानमहीमहेन्द्रः।।१०५।।
उवाच तं वीर ! बहिःप्रयाहि त्वं पातसाहं भज सर्व्वभावैः।
योद्धुं मतिश्चेद् बहिरेहि तूर्णं योधैर्मदीयैः कुरु युद्धमृद्धः।।१०६।।
नृपोक्तवाक्यं बहुशो निशम्य राणानृपः कोधवशादुपेतः।
हन्तुं महीपालमणिं प्रकोपाद्दण्डाहतः सर्प इवाजगाम ।।१०७।।

भयकर युद्ध हुआ। कुछ पद्यों मे युद्धवर्णन है। एक पद्य है-

वज्रांकितेनैव करेण भूपः पुरन्दरस्योपमितिं जगाम।
प्रतापदावानलदग्धवैरिकक्ष्योऽप्यलक्ष्यो द्रुततां बभूव।।११३।।
प्रताप-तिङ्भासरसित्वमेव यमोऽसि कोपेन रणाङ्गणेषु।।
एको विधात्रा विहितोऽसि तस्मादीशोदिशः पालयितुं प्रयत्नात् ।। ११४।।

इसी युद्ध के बीच जब महाराजा मानसिंह राणा की सेना से युद्ध कर रहे थे,महाराज माधवसिह आ पहुंचे। श्री माधवसिह मानसिह के कनिष्ठ सहोदर भ्राता थे, जैसाकि पहले बताया जा चुका है, ये भी अनेक युद्धो मे मानसिह के साथ गए थे और विजयी होकर लौटे थे। माधवसिह अकबर के भी कृपापात्र थे। रायजी लिखते है-

एवं रणे युध्यति मानसिंहे समागते माधवसिंहवीरः।
विश्रम्यतां क्षोणिपते क्षणन्नस्तदृदृश्यतां युद्धमिदं जगाद ।।११७।।

इसके पश्चात् माधवसिह के साथ हुए युद्ध का वर्णन है-

आदौ गजेनैव गजो नियुक्तस्तुरंगमेनैव तुरङ्गमोऽपि।
पदातिना पत्तिरथ व्ययुध्यन् समस्तदासीदुभयो प्रयोग : ॥१२६॥
एवं प्रवृत्ते गुरुसंगरेऽसिमन् विसिस्मिरे दैवतमण्डलानि।
शस्त्रान्धकारे गहने प्रवीरा भेजु भयछन्नमन·शरीरा ॥१२७॥

राणा प्रताप के बाणो की वर्षा से श्री मानसिह की क्या स्थिति हुई, इसका वर्णन करते हुए लिखा है -

तद् बाणसंभूतघनान्धकारं व्याधूय भास्वानिव मानसिंह · ।
बभौ रणक्षोणिमुखे रिपूणामप्रेक्षणीयो धरणीभुराग: ॥१३०॥

अन्त मे परिणाम यह हुआ कि राणा युद्ध से भाग निकला। मानसिह ने उसका पीछा किया, इस प्रकार चित्तौड पर अधिकार हो गया -

देशे निराशो विजये तथा द्राग् राणानृपो विद्रुतसर्वगर्वः।
रणं प्रयातुं तरुणे सचेतश्चक्रे समुद्भ्रान्तगतिक्रमेण ॥१३६॥
हृतगतिरतिवेगादास राणा नृपोऽपि
द्विमुख इव स पश्यन् पृष्ठदेशे पुरोऽपि।
नरपतिरपि रोषाद् धावमानोऽस्य पश्चाद्
असुरहितमिवैनं त्रस्तमेकं मुमोच ॥१३७॥
रणशिरसि रिपूणां मृत्युरेवास्ति कीर्त्यै
नरपतिकुलभाजां क्ष्माभुजस्ते न पण्डा.।
समरभुवि जितानां वैरि - भूपावलीनां-
प्रणतिमति बहुज्ञाः कीर्त्तये कीर्त्तयन्ति ॥१३८॥
श्रीमानसिंहभुजचंडमरीचिदग्धाः
केचिन्निपेतुरवनीपतयोऽम्बरासौ।
द्वन्द्वं च केचिदपहाय निकुंजमीयु·
केचित्तदीयपदपल्लवमीयुरार्त्ता. ॥१३९॥

इसके पश्चात् कुम्भलमेर का उल्लेख है । पद्य है-

इत्थं देशमशेषतोऽस्य तनयं दुर्गं वशं नीतवान्
धर्म्मानप्यवनीपतीन्द्रतिलकः संस्थावदानादपि।
भूदेवानथ देववृन्दसदनं प्रोन्मूलिता नापुरी
नैवं कर्म सुदुष्करं सुकृतवान् जित्वा परान् वैरिण· ॥१४१॥
काचित्कुम्भलमेरुकाननदरी द्वारि द्विषणमण्डली
पश्यन्ती नृपतेः प्रतापदहनज्वालावलीढित्विषः।
हित्वा तत्परिधानभूर्जवसनं जाता कुलीनापि सा
दिग्वासाः किमहो महोन्नतिहृदः कोपोऽपि लोकोत्तरः ॥१४२॥

राणा प्रताप को जीतकर मानसिंह ने गुजरात के गुर्जरो, मालव प्रदेश के मालवों, विदर्भ प्रदेश ,द्राविड, मलय, द्वारका आदि प्रदेशों के शासको पर विजय प्राप्त की और इनसे दण्ड एव भेंट स्वीकार कर सम्राट् अकबर के अधीन बना दिया-

''जित्वा राणानृपतिमजयद् गुर्ज्जरान्मालवीयान्
वैदर्भास्तान् द्रविडमलयद्वारकानूप - भूपान्।
तानाज्ञाप्य प्रभुपदतलाङ्कल्पयित्वा गृहीत्वा
दण्डं चोपायनमपि नृपश्चेतसा ऽसौ ननन्द ॥१४३॥''

मानसिह के प्रताप एवं शौर्य से सभी कम्पित होने लगे। इसका तेज इतना प्रखर हो गया कि इसे सहन करने की शक्ति शत्रु में नहीं रही। सौराष्ट्र, तैलङ्ग, चोल आदि प्रदेशो के शासक इसके नाम से ही भयभीत हो रहे थे। मानसिह निरन्तर बढता रहा तथा विजय प्राप्त करता रहा। कुछ एक पद्य इस प्रकार है-

त्रस्तोऽसौ गिरिकन्दरे प्रतिदिनं भूमीपतिर्बेदर.
कम्पेनाकुलितस्तथैव मलयः पाण्ड्योऽपि दण्ड्योऽभवत्।
सामन्तः सकलो बभूव विकलो दूरातिदूरङ्गतः
सर्वेषामतिदुःसहो भुजमहः श्रीमानसिंहः प्रभोः ॥१४४॥
सौराष्ट्रास्त्यक्तराष्ट्रा जलनिधिसविधे युक्तवामास्तयाः
तैलङ्गा जातभंगा. परमभययुता द्वारकाया महीशाः।
चोलास्त्रासातिलोलाः विविशुरथ हठादन्तरीपं समीप
मानेन्यं यत् किमपि हृदि भिया वैरता दैवतानि॥ (दधति) ॥१४५॥

राजा मान के कथनानुसार सम्राट् अकबर की अधीनता स्वीकार करने पर इन सभी को पुन अपने-अपने स्थान पर आसीन कर दिया गया -

जितावनीपानपि वृत्तिभाजं कृत्वा सधर्मानपि शोकपूगान् ।
अकव्वरस्यानुमतान्प्रपन्नान् सेवापरांस्तान्नृपतींश्चकार ॥१४७॥

और सभी अकबर बादशाह को ईश्वर का अवतार समझने लगे-

'सर्वे तदाकव्वरपातिसाहं विज्ञातवन्तोंऽशजमीश्वरस्य।'
'जिष्णुर्युवाऽऽजानुकरः कृपालुरीदृग्विधस्तस्य वशे यदास्ते' ॥१५०॥

इस प्रकार सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर समुद्र के किनारे पहुंचती है, महाराजा मानसिह की सेना। समुद्र राजा मान से कहता है कि - 'राजन्, अब शांति धारण करो, जो भी मिल गया है, उसी की रक्षा करो' इत्यादि । इसे सुनकर राजा मान बादशाह अकबर के पास लौट आता है। बादशाह प्रसन्न होकर उत्तर दिशा के विजय के लिए आदेश प्रदान करता है। यहा 'मान प्रकाश' की द्वितीय किरण समाप्त होती है। लेखक ने इस ग्रन्थ के खण्डो को किरण नाम दिया है, क्योकि ग्रन्थ 'प्रकाश' है। कुछ आवश्यक पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

'रणशिरसि समस्तारातिचक्रं विजित्य
प्रभुचरणसमीपं कर्णकामो जयिष्णुः।
इति नृपतिवरोऽसौ मानसिह· स्वकीर्त्या
भुवनमिदमुदारन्द्योतयन्नाबभासे ॥'

समुद्रोक्तिः

एतस्मिन् समये समीरविचलत् कल्लोलया सद्गिरा
राजानं विनयादिदं स जलधिर्व्याचष्ट हृष्टाकृतिम्।
हे रत्नाकर ! यो भवद्भुजमहो जातो यशश्चन्द्रमाः
शश्वत्छाजितवान् विधुन्त्वमपि मां क्वाहं क्व चासौ विधु· ॥१५३॥
'त्वत्कीर्त्या भुवनत्रयीव वलयाक्रांतस्त्वयाऽकम्पते
चित्रन्नैनदिहास्ति भूतलमणे भूमीपते लक्षये।

शांतिं तावदुपैहि सम्प्रति विभो यन्मृग्यते गृह्यता-
मेवं सिन्धुवचो निशम्य नृपतिः तत्याज तल्लज्जितः' ।।१५४।।

अतिम पद्य है-

'एवं धर्मादिरक्षा - क्षणविजितबलारातिजातः प्रतस्थे
प्राप श्रीपातिसाहप्रपदतलमसौ मानसिंहः क्रमेण।
सोऽप्येनं पातिसाही सदनविरचनास्तभ्भभूतन्नु मत्वा
जेतुं जेतारमाशामतिबलवलितामुत्तरामादिदेश।।१५७।।
मुरारिदासेनेत्यादि मानप्रकाशे किरणो द्वितीयः।।'

'तृतीय किरण' बहुत ही छोटा है। २९ वें पत्र पर ही समाप्त हो जाता है। २९ वा पत्र इस ग्रन्थ मे उपलब्ध भी नहीं है। केवल २८ वे पत्र के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें राजा मान की प्रशसा एवं राजाओं द्वारा किये गए सम्मान आदि का वर्णन है। अन्त में जाकर समुद्र की मानसिक विकृति का भी वर्णन प्रस्तुत किया है। कुछ पद्य है-

प्रारम्भ-

एवं निर्जितराणाद्यो जयद्योतितविक्रमः।
वृतोऽनुरूपभूपालैः रेजे मेरुरिवाचलैः।।१।।
××× ××× ××× ××× ×××
केनचिद् वाजिनां वृन्दैः रत्नच्छदविराजिनाम्।
करिणां केनचिद् व्यूहैः शैलशोभानुसारिणाम्।।४।।
अस्त्रैश्च केनचिच्छस्त्रैर्वस्त्रैः केनचिदुत्तमैः।
केनचिन्निजकन्याभिर्धन्याभिर्गुणविभ्रमैः।।५।।
रत्नेन केनचिद्मुक्ता दाम्ना हृदयहारिणा।
हारिणा कृतहारेण कृतं राज्ञोऽनुरंजनम्।।६।।
××× ××× ××× ××× ×××
अत्रान्तरेण हि हतारिकुलाङ्गनानां
शोकादजस्रमिलदश्रु सरित्प्रवाहान्।

दिग्भ्यः समागत-ततच्युतकज्जलोघै.
श्यामान्तदीक्ष्य जलधीश्चलधीर्बभूव ।।१६।।
कस्मादियं मलिनता सरितां विचिन्त्य
नाभ्यो विशेषमवधार्य बभूव भीत· ।
श्री मानसिहनृपतेश्चरितेन तेन
भीतिर्न कस्य सुतरां पररत्नभाजः ।। (युग्मकम्) ।।१७।।

××× ××× ××× ××× ××× ×××

एवं भयानुवलितोऽपि विमृश्य किञ्चिदानन्दमेत्य निजचित्तमिदं बभाषे।
रे चित्त ! मालवभयातुरमेहि मोदं राज्ञ· प्रसादनविधौ परमन्त्युपाय ।।१९।।
पूर्व्वार्जितेन तपसा जयसाधनेन संप्रीणिता मम सुता जगतां हिताय।
भक्त्या च भूमिपतिनार्च्चितपादपद्मा पद्मा तदीयभवने हरिणा सहास्ते ।।२०।।

चतुर्थ किरण 'उत्तरदिग्विजय 'नाम से प्रसिद्ध है। पृष्ठ ३३३ पर इसका उल्लेख मिलता है-'इति श्रीरायमुरारिदासकृते मानप्रकाशे उत्तरदिग्विजयो नाम चतुर्थ किरण ।।' द्वितीय किरण मे दक्षिणदिग्विजय का वर्णन किया है। पचम किरण के प्रारम्भ मे जो उल्लेख है, उससे पता चलता है कि उसमें पश्चिम दिग्विजय वर्णित है। इसमें कुछ यवन योद्धाओं व सेनापतियों के नाम भी आये है। विशेषत. पजाब पर किये गए आक्रमण का उल्लेख है । एक स्थान पर हिजरी सन् का भी सकेत है, जिससे ऐतिहासिक घटनाओ व कवि-वंशपरिचय भी सामान्य रूप में अकित है, जिसके आधार पर हम उसके गोत्र, पिता, एव भाईयो के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करते है। इस पत्र के मिलने से बहुत कुछ उपलब्ध माना जाना चाहिए। कुछ शासको के नाम भी दिये गये है, जिन्हे ऐतिहासिक होना चाहिए । इस किरण का विवेचन इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है-

"............................म मनुते चिकीर्षवः।
.....................स्युस्तदा किमथ चित्रमत्र यत् ।।
एवं हृदाकव्वरपातिसाहो विचार्य धूर्य्यञ्च महोग्रवीर्य्यम्।
रसाष्टरंध्रे गणिते सनाख्ये राजानमाजानुभुजो दिदेश ।।
शूर योपिहि वदन्ति वक्ष्यते चित्तवृत्तमथ किं परस्य वै।

गच्छ सिन्धुतटमाशु वैरिणो गर्विणो जहि महीशमानिनः ।।
अस्त्रशस्त्रनिपुणा· महाबला· सैनिकाः स मन्व यान्तु मामकाः ।।

इस उद्धरण मे बादशाह अकबर ने राजा मान को आदेश दिया है कि सिन्धु तट पर जाओ। वहा शत्रुओ पर विजय प्राप्त करो। यही समय का भी उल्लेख है। रस =६, अष्ट=८, रन्ध्र=९, अर्थात् ९८६ । यह सन् तो ' अकाना वामतो गति ' के नियमानुसार माना गया है । यदि ऐसा न भी मानें, या रस से ९ लेकर ९८९ सन् मानें तो यह देखना है कि दोनो सन् में क्या सिन्धु देश पर आक्रमण का उल्लेख है? इतिहास क्या कहता है यहा ? यहा सन् से तात्पर्य हिजरी सन्। हिजरी सन् में ५९६ जोडने पर ईस्वी सन् निकल आता है। इस प्रकार ९८९ या ९८६ मे ५९६ जोडने पर १५८५ या १५८२ ई. सन् आता है। इसमें ५७ जोडने पर क्रमश १६४२ व १६३९ सवत् विक्रम बन जाता है । जयपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पुरोहित विद्याभूषण श्री हरिनारायण जी शर्मा ने अपने एक विस्तृत लेख मे 'फर्जन्दे दौलत मिर्जाराजा श्री मानसिह प्रथम' जो बिडला कालज पत्रिका, मे प्रकाशित हुआ था, पृष्ठ ४५ पर लिखा है-(यह प्रसग राणा पर पुन आक्रमण से सबद्ध है।)

''बादशाह ने राजा भगवन्तदासजी व कुंवर मानसिहजी के साथ शाहबाज खा, बक्शी पायदा खां मुगल, सैयद कासिम, सैयद हाशिम, सैयद राजू डलूगअसद तुर्क मान, गाजी खा बक्शी, शरीफखा अतका, मिर्जाखां खानखाना, और गजरा चौहान आदि को भेजा । यह बडी सेना राणा को बिल्कुल परास्त करने को भेजी गई जो ता.१६ शाबान हिजरी सन् ९८६ ,वि. सवत् १६३५ द्वितीय आश्विन शुक्ला पूर्णिमा, को रवाना हुई।

इसी प्रसंग में कुम्भलगढ के घेरने का भी उल्लेख है। सिन्धु नदी पर दो बार जाने का उल्लेख मिलता है। फरवरी स१५८१ विक्रम स.१६३८, में एक बडी फौज चली थी, जो पानीपत व थानेसर होकर शाहाबाद पहुची थी। अकबर सिन्ध को पार करना चाहता था। यह किस्सा काबुल विजय से सबधित है, जब शाहजादे मुराद के प्राण महाराजा मानसिह ने बचाये थे। यह प्रसग१५८१ ई. का है। सिन्ध नदी को उतरने मे कई अमीरों ने विरोध किया था और यही मानसिह जी को अकबर ने प्रसिद्ध दोहा कहा था-

'सभी भूमि गोपाल की यामें अटक कहा।
जाके मन में अटक है सोही अटक रहा।।'
'पंजाब देशे गुणपूरितासे स जागिरीं वृत्तिकारीं नरेश·।
दधन्महोद्दामयशा विशालश्रीसाहजल्लालुहि नामधेयः।।
श्रीमानसिंहो भगवन्तदासः स सैदखानो बलवान्नुदारः।
लाहौरदेशं समवाप्य ते वै पंजाबदेशान् तरसा प्रतस्थे।।
यच्छल्यराजस्य पुरं पुरस्तात् तच्छालकोटं पुरमापुरेते।
मिर्जेसफं खानमुदारवीर्य्यमस्थापयद्रोहितकुध्रदुर्गे ।।
उवाच तं चैतदुदारकीर्तिरुदग्दिशं यावदहं जयामि।
तावत्त्वमत्र स्थिरतामुपैहि विजित्य भूपान् पुनरागमिष्ये।।'

राज मान ने घोषणा की थी कि मैं बादशाह अकबर से द्वेष रखने वाले सभी शासकों को नष्ट कर दूगा । उसी समय उनकी दक्षिण भुजा मे स्पन्दन हुआ और मगल शकुन समझकर राजा मान ने प्रस्थान कर दिया-

अकबरद्वेषिगणान् समस्तान् क्षणाद्रणे द्रावयिताहमेकः ।
नगानिवेन्द्रः पतगान् फणीन्द्रानिवापरान् दोर्युर्गलप्रतापैः।।
एवं महेशं वदतस्तदानीं स्पन्दोऽभवद्दक्षिणबाहुमूले।
अवेत्य तन्मंगलमुग्रतेजाः समेत्य तैस्तत्र नृपः प्रतस्थे।।

यहां से प्रस्थान करने पर ही महाराजा मानसिंह की कविवर राय मुरारिदास से भेंट हुई थी। श्री मुरारिदास ने अपना वर्णन प्रस्तुत किया है। कुछ दूर एक पद्य है, जिससे ऐसा लगता है, ये क्षत्रिय थे और इसीलिए महाराजा मान ने इन्हें अपना मन्त्री बना लिया और जम्बूगिरि दुर्गराज (जम्बू पर्वत पर विद्यमान किसी किले या गढ के शासक) कपूर देव को जीतने के लिए प्रस्थान किया। वे पद्य हैं -

'वाग्मी विद्वान् वदान्यो द्विजजनविनतो वत्सलः स्वच्छचित्रः
चाणक्यस्येव यस्य निजगति न समः सन्धिभेदप्रबन्धे।
शुद्धाचारस्य भावः सुचरितहसितःशेषराजर्षिवृत्तो
मान्यः श्रीमान् मुरारिः हरिहरवरणाम्भोजमाध्वीकभृंगः ।।
धर्मप्रसूत्यै नृपमानसिंहः श्रीमान् मुरारिं समवाप्य तत्र ।
तं मन्त्रिणं क्षत्रकुलप्रसूतं विधाय भूमौ रमणः प्रतस्थे।।

आदौ स जम्बूगिरिदुर्गराजं कपूरदेवं जितवैरिवृन्दम्।
मल्हासवंशोद्भवमालदेवभूपान्वयं प्राप स मानसिंहः ॥'

'नाथावतो के इतिहास' के लेखक श्री हनुमान शर्मा चौमू ने 'जयपुर राज्यवश' नामक अपने लेख में म. मानसिह का वर्णन करते हुए बताया है कि उन्होंने सवत् १६३३(ई. सन् १५७६) मे मेवाड पर आक्रमण किया था। १ अगस्त १५८१ ई. को शाहमान के साथ अटक पर लडाई हुई थी, जिसमे सूरजसिह के हाथों शाहमान मारा गया था।

उपर्युक्त उद्धरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि म. मान का सिन्ध प्रदेश में गमन१५७६ ई के बाद और १५८२ ई. से पूर्व हुआ था। सिन्ध के बाद काबुल आता है । अत पूर्वोक्त ९८६ हिजरी सन् ठीक है।

मानसिह बादशाह के आदेश से उत्तर दिशा की ओर चल पडे। उनके साथ श्री भगवन्तदास, अन्य वीर राजपूत, सेदखान, मिर्जाएसफ, मुहम्मद कुलीखा, वार खान, सायरसूर, सय्यद अब्दुल्ला आदि यवन योद्धा भी थे। इनके साथ वह सिन्धुतीर की ओर बढे।

'जिष्णुमेत्य मनसा विचारतो यो जयेत् स बहुमातु-नन्दनः।
उत्तरान् दिशमितोऽथ सत्वरं मानसिंह जहि भूप सम्मतान्॥'
'आदिकुलकम्

समं स्वसैन्यैर्भगवन्तदासमन्यास्तथोग्रान् रजपूतमुख्यान्।
तथा च कर्ता कुलकैव बन्धुं स सैदखानं मिरजेसफं च॥
महम्मदीकम्बलदीप्तबाहुं हस्त्यश्वपादातबलैरुपेतम्।
गुणैरुदारं च मुबारखानं सहस्रसंग्रामविवृद्धमानम्॥
यः सायरसुरत्तानखण्डकान्वयसंभवः।
सैदखानं महामानं दिदेश तमकव्वरः॥
कृतानुरूपं परसैनिकानाम् अनन्तयोधावलिजातसंगम्।
एतान् भटान् दुर्जयवीरवीर्ज्यान् प्रस्थापयामास हि सिन्धुतीरम्॥'

अकबर के आदेश से ये सभी पजाब देश पहुचे। वहा से इनकी सेना के विभाग हुए होगें। श्री मानसिह ,भगवन्तदास, सैयदखान आदि लाहौर पहुंचकर पजाब

की ओर बढे। शालकोट पहुचे। वहा रोहित नामक दुर्ग पर मिर्जा-एसफखान को मुकर्रर किया और कहा कि जब तक मैं (मानसिह) उत्तर दिशा को जीतकर न लौटू, तब तक यही रहो -

प्रथम पद्य में जो विशेषण श्री मुरारि के लिए प्रयुक्त हुए है, उनसे तथा द्वितीय पद्य मे निर्दिष्ट स्पष्ट सकेत 'क्षत्रकुलप्रसूत' से यह निर्विवाद है कि श्री मुरारि दास जाति से क्षत्रिय थे। जम्बूगिरि से तात्पर्य जम्मू से हो सकता है । वहा मल्हासवशीय मालदेव का पुत्र कपूरदेव नामक व्यक्ति शासक रहा होगा। अब हम पुन पीछे की ओर चलते है जहा श्री मुरारि के साथ राजा मान की भेट हुई है तथा उनके वश का वर्णन है। लिखा है-

'अत्रान्तरे गच्छति मानसिंहे योग्येन योग्यं वरयन् विधाता।

संयोजयन्मानमहीश्वरेण मुरारिदासं स्वधियं प्रयत्नात्॥'

ये बडहरावश मे उत्पन्न हुए थे और परशुराम के पुत्र थे। इनके पितामह का नाम पुरारि हो सकता है। इस पद्य से यह स्पष्ट नहीं होता। कुछ पद्य इनके वश परिचय से सबद्ध हैं जिनका आशय है कि परशुराम के तीन पुत्र हुए थे-ज्येष्ठ थे मुरारिदास, मध्यम का नाम शकरदास ,तथा कनिष्ठ सुन्दरदास थे। इनमे मुरारिदास ही सर्वत प्रधान थे, जिनके बुद्धिकौशल की सहायता से श्री मानसिह सपूर्ण पृथ्वी पर शासन करते थे। ये पद्य हैं-

'बडहराकुलवारिधिचन्द्रमा परशुरामसुतोऽरितमोन्तकः।
इह हि चित्रमिदं परिदृश्यता प्यदयमस्ति पुरारि-पदानतः॥
समभूद् वसुधासुधाकरो बडहरावंशधरः पुरस्सरः।
विधिवत् स्तुतितत्त्वनिष्ठया भुवि योजने विकल्पतां गतः॥
तस्मादभूत् परशुराम इति प्रसिद्धो यो बाल एव पितुरप्यधिकप्रभावः।
नालोक्य यस्य वदनेन्दुमुपेतकालः स्वर्गस्थितोपि परिशोचति राजराजः॥
सन्तानकामस्त्रिदशानभीष्टान् द्विजान् गुरून् शुद्धहृदा समर्च्य।
लेभे सुतांस्त्रीनभिरामरूपान् धर्मार्थकामानिव स क्रमेण॥
नाम्ना मुरारिर्मुरवैरिणोंशो जयेष्ठोऽपर· शङ्करदासविज्ञः।
तस्मात्परः सुन्दरनामधेयो येषां यशोभिर्ज्जगती पवित्रा॥

विद्याविवेकौ विनयो विशुद्धिर्विदग्धता विश्वजनानुरागः।
समं समीयु त्रिदिवप्रभावांस्त्रीन् कुमारान् दिवसैः कियद्भिः॥
तथाप्यशेषगुणगौरवगुम्फितश्रीः श्रीमान् मुरारिरभवद् भुवनप्रधानः।
यद् बुद्धिकौशलवशान्नृपमानसिहः कृत्स्नां महीं पुरमिवाप्रतिमं शशास॥

यदि यहा वर्णित श्री मुरारिदास को मानप्रकाश के लेखक राय मुरारिदास से भिन्न माने तो विचार होता है कि कवि ने उपर्युक्त पद्य क्यो लिखे, जब उत्तरदिग्विजय चल रही है, जहा युद्ध आदि का वर्णन ही प्रधान है। किसी भी व्यक्ति के वश का वर्णन निरर्थक लगता है, परन्तु स्वय लेखक ने अपना प्रसग प्राप्त कर सकेत से स्वकीय वश-परिचय उपस्थित कर दिया है, ऐसा मेरा मत है। राय राजा का ही विकृत रूप है। इससे सिद्ध होता है कि राजा मुरारि उत्तर भारत में जम्मू के पास किसी स्थान पर शासक थे।

इसके पश्चात् , जब श्री मुरारि को राजा मान ने अपना मत्री बना लिया, तदनन्तर जम्बूदेशाधिपति कपूरदेव के साथ युद्ध का वर्णन है-

मही चकम्पे चकितः फणीन्द्र. कूर्मोपि धर्मात्तवपुर्बभूव।
कपूरदेवस्य भटा गरिष्ठाःश्री मानसिंहस्य चमूँ चकर्तुः॥
विलोक्य तद् भूमिपतिः स्ववीरान् दिदेश योद्धुं त्रिदशानिवेन्द्रः।
आगत्य ये तत्र मिथस्तदानीं चक्रुः कृतान्ता इव बाणवर्षे ॥

अतिम परिणाम यह रहा कि कपूरदेव पराजित हो गया और राजा मान ने उसका नगर व किला अपने अधिकार मे कर लिया । राजा मान ने उसके पुत्र लालदेव को भी जीत लिया । राजा कपूरदेव की दो पुत्रियो का विवाह कर उन्होंने वे विजित स्थान उसे लौटा दिये। उत्तर में बदरिकाश्रम तक विजय की थी, ऐसा उल्लेख है-

'कपूरदेवं च विजित्य युद्धे तथा तदीयं तनयं विजित्य।
त्रिकूटभूमीधरपारभूतं तं लालदेवं जितवान् बलेन॥४५॥
कृपालुतापन्नमना महीप· कपूरदेवस्य तनू हि पुत्र्यौ।
विवाहयित्वा विधिवद्दयालुस्तदीयदेशान् प्रददौ स तस्मै॥४६॥
अनेन. विधिना नृपो विजितवानुदीचीनृपान्।
महीधरदरीगृहान् बदरिकावधिस्थानपि ॥४७॥

इसके पश्चात् उन्होने जयचन्द्र नामक राजा को तथा उसके नगरकोट शासको को जीतकर,उसकी पौत्री के साथ विवाह किया। यह पूर्वोक्त पद्य का ही उत्तरार्ध है-

'ततो जयचन्द्रश्च तन्नगरकोटभूमिपतीन्।

तदीयसुतपुत्रिकामयसुवाह वीराग्रणीः ॥४८॥

इसके बाद चम्पा के शासक 'लड्डू' तथा ग्वालियर के शासक को जीतकर पैठान भूप को अपना अनुचर बनाया। साथ ही जसरोटा केराजा वाहेन्द्रराज को , हैताज एव वैराज के शासक को जीता-

'चम्पाभूमिपतिं महोग्रबलिनं लड्डूमहीपन्तथा
गौआलियरभूभृतम्बलकृतं जित्वा जगद्भूषणम्।
द्राढौआलमहीपतिं नववरं पैठानभूपन्तत·
श्रीमानेव जिगाय किञ्च जगतीनाथः प्रतापांशुमान्॥४८॥
शान्त्या भूपतिभूषणं च जसरोटाद्यं महीपालकं
तद्वन्मानसुकोटभूमिरमणं वाहेन्द्रावन्ततः।
हैतालावनिपालकं च गुणिनं भूपालभूपन्तथा
जैरालामनिपालकं प्रभृतिकं राजा जिगाय क्षणात्॥४९॥
अन्यान्यप्यवनीपतीन्द्रतिलकान् कृत्वा च सेवापरान्
चक्रेऽकव्वरभूभृतो नरपतिःश्रीमानसिंहः कृती।
तेषां देशगणान् कृपाभिरखिलान् तेभ्य· कृपावान् ददौ
दत्त्वा तस्य महीश्वरस्य वशगान् कृत्वा प्रतस्थे ततः ॥५०॥

गंगा नदी के किनारे लौटने पर उस राजा मान ने भगवान् शकर के दर्शन किये और उनकी भक्ति से उसमें इतना परिवर्तन हुआ कि वह उस दिन से मुकुन्द आदि का भक्त न रहकर केवल शकर का ही भक्त हो गया। उसने सभी विजित देशो को अपने अधीनस्थ बनाकर उन राजाओं को वे स्थान पुन प्रदान कर दिये और फिर काश्मीर विजय करने के लिए चल पडा। काश्मीरपति ने सोचा, यदि मै राजा मान से सन्धि नहीं करूगा तो वह इस नगरी सहित मुझे नष्ट कर देगा। इस विचार से उसने अपने एकमात्र पुत्र ईसफशान को राजा मान की सेवा में उपायन सहित भेज दिया । इस प्रकार उत्तरदिग्विजय कर राजा मान अकबर की सेवा मे लौट आये। यहां चतुर्थ किरण समाप्त

होती है-

'प्रस्थानं कृतवान्बलेन यशवान् दूतैरवेत्येति तं
चिन्तां प्रापदुरत्तरामतितरां काश्मीरभूमिपतिः ॥
साकन्तेन महीश्वरेण मिलनन्नाहं विधास्ये यदि
कुद्धो नाशयिता द्रुतं यमपुरीं नास्त्यत्र चित्रं च सत् ॥५५॥

अतिम पद्य है-

'एवं सर्वमहीभृतो बलभृतो जित्वा रणे जित्वरः ।
श्रीमान् मानमहीमहेन्द्रतिलकाः प्रावर्तयत्तत् क्षणात् ॥५६॥
धर्मान् भेदपुरःस्सरानणु तथा तीर्थानि विप्रानसौ
देवानां सदनानि भूमिरमणः संस्थाप्य दीनानपि ।
तैस्तैः संगरकारिभिर्ज्जितनृपैः साकं महीवासरः
प्रापाकव्वरभूभृतप्पदतल - व्यानैस्तुरंगान्वितैः ॥५७॥
इति श्री रायमुरारिदासकृते मानप्रकाशे उत्तरदिग्विजयो नाम चतुर्थः किरण· ॥

पचम किरण के ४ पद्य ही उपलब्ध है । इन चार पद्यो का आशय यही है कि उत्तरदिग्विजय के पश्चात् पश्चिम दिग्विजय प्रारम्भ की गई है । श्यालकोट से सिन्धु प्रदेश की ओर गमन करते हुए राजा मान ने सैनिको से कहा कि जो बादशाह के हितैषी हैं, ये नीलावपुर चले जायें। श्री भगवन्तदास और सफसेदखा आदि को , जो पजाब का आधीनस्थ लिये हुए थे, भी नीलावपुर भेज दिया। अंतिम पद्य का अतिम चरण उपलब्ध नहीं है । ये पद्य इस प्रकार हैं-

अथ पश्चिमदिग्विजयः

अथैवमाजौ जितजिष्णुजेता उदग्दिशं दोर्युगलेन जित्वरः ।
विदायमादाय हुमायुंसूनोः स पश्चिमामेव दिशं प्रतस्थे ॥
स शालकोटन्नृपमानसिंहः सिन्धुं व्रजन्नाह जयिष्णुरेतत् ।
नीलावकं यातु भटा गरिष्ठाः ये पातिसाहस्य हिते निविष्टाः ॥
भगवन्तदासे सफसैदवाद्यानित्याह भूमीरमणो नृसिंहः ।
पञ्चाबदेशस्य च वृत्तिभूमिं सहैव नीलावपुरं व्रजध्वम् ॥

श्रीपातिसाहस्य हिताय यूयं व्रजन्तु तीव्रं सुबलेन वीरा·।
इत्याह तांस्तेन स मानसिंहो मिर्जा...... .... ।।

इसके पश्चात् एक पृष्ठ उपलब्ध है, जिसकी सख्या ६६ है। इस पृष्ठ पर श्री **महासिंह** का नाम आया है। ये राजा मानसिह प्रथम के ज्येष्ठ पुत्र श्री जगत्सिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। जगत्सिह तो अनेक युद्धो मे अपने पिता के साथ भी गए थे और सवत् १६५६ मे ही उनका अकस्मात् देहान्त हो गया था, जिनकी स्मृति में आमेर में जगत्श्रवणजी का मन्दिर (जगत्शिरोमणि का मदिर) बनवाया था, जो आज भी विद्यमान है। इनके तीन पुत्र थे- १.महासिह २.जुझारसिह और ३.तातारसिंह। महासिह भी अनेक युद्धो में सम्मिलित हुए थे। इनकी वीरता से प्रभावित होकर ही बादशाह ने इन्हे बराड का अधिकारी बना दिया था। महाराजा मान की मृत्यु पर ये आमेर की गद्दी के अधिकारी थे, परन्तु बादशाह की आज्ञा के बिना ये बराड छोडकर आमेर न आ सके। तब महाराजा मानसिह के छोटे पुत्र श्री भावसिह आमेर की गद्दी पर बैठे, परन्तु इनका भी समय बहुत कम रहा- ये आषाढ शुक्ला १० सवत् १६७१ से पौष सुदि १० सवत् १६७८ तक ही शासन कर सके। इस पृष्ठ पर श्री महासिह के अतिरिक्त अन्य लोगो के भी कुछ नाम है। जैसे - हेमन्तसिह, कुशलसिह, मुरारिदास, सुन्दरदास, मानसिंह, आदि। इस पत्र मे दक्षिण का विशेष वर्णन प्रतीत होता है। इसका प्रारम्भ इस तरह है-

६६A -------------------------- न्यधूननं
''दानमानबलवद् वलार्प्पणा योग्यया भुवि सन्निवेशनान्त।
एवं विज्ञाय राजाज्ञां ते विज्ञाय यथोचितम्।
महासिंहादयः सर्व्वे विदध्युः सर्वमीहितम्।।
त्रिपुरा कामरूपादि भूपसेना सहायवान्।
उसमानः प्रतिष्ठानो यत्रास्ते भवयोजितः।।
..........गारसिंदूरोपान्ते तन्निराकर्तुमुद्यतः।
सिंहवत् सबलैर्युक्तो महासिंह· स्वयं स्थितः।।
तथा हेमन्तसिंहस्य तनयो विनयोज्ज्वलः।
श्रीमत्कुशलसिंहोऽपि राज्ञो दक्षिणतः स्थितः।।
मघाधिपः महासैन्यः सिन्धुमंडनमन्दरः।
मुरारिदाससहजसंमुखे रायसुन्दरः।।

एतेषामनुगाः सर्व्वे सैन्यसैन्याः परे यथा।
यथास्थानविशेषेण विदध्युर्युद्धकौशलम् ।।
श्रीमानसौ मानसिंहः सिंहवद्गिरिमूर्धनि।
स्थितो वन्दरदुर्गेऽस्मिन् दिदृक्षुर्युद्धकौतुकम् ।।

अतिम पद्य है-

वीरतारसवयेन मुह्यतो विक्लवं समुषितं समीयुषोः।
वर्तमानमपि भेदमाप्तयोः भेद एव न तयोर्यदप्यभूत् ।।
नाद्भुतन्तदपि यद्दिवानिशोरप्यभून्न सरजो व्रजोदयात्।
एवमेव समरेऽमरार्चिते सुयुधामानिसतोस्त............... ।।

इस प्रकार यह ग्रन्थ समाप्त होता है।

"समालोचन"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह एक ऐतिहासिक रचना है। क्योंकि इससे ऐतिहासिक व्यक्तियों - अकबर, मानसिंह, भगवन्तदास, महासिह, सैय्यदखान, मिर्जा एसफ आदि के नाम मिलते हैं। चूकि यह काव्य संपूर्ण उपलब्ध नहीं हो रहा है , अत· इसके विषय में अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता । रहा प्रश्न माहाकाव्यत्व का। साहित्य के लक्षणग्रन्थो मे जो काव्य या महाकाव्य के लक्षण प्राप्त होते हैं, उनके अनुसार जब विवेचन किया जाये तो इतना ही कहा जा सकता है कि यह एक काव्य तो है ही । चूकि इसका विषय विभाजन किरण के रूप में किया गया है, अत यह विभाग लक्षणों के अनुरूप ही है। सामान्यतया वस्तु नेता व रस ही तीन तत्त्व है , जिन पर विचार किया जाता है। वस्तु जितनी उपलब्ध हो सकती है, उपस्थित की जा चुकी है। इसे प्रख्यात-कथा-वस्तु कह सकते है। रस तो निर्णीत है ही। युद्ध का वर्णन होने से वीर रस ही मुख्य है। नेता का निर्णय ग्रन्थ के नाम से ही हो जाता है। इस तरह महाराजा मानसिंह (प्रथम) इसके नायक है।

इन मुख्य तत्त्वों के अतिरिक्त भाषा-शैली आदि के विषय में भी यदि विचार किया जाये तो स्पष्ट है कि इसकी भाषा सस्कृत है तथा वह भी अत्यन्त सरल । इसे

वैदर्भी रीति मे कहा जा सकता है । यद्यपि कई स्थानो पर त्रुटित एव प्रतिलिपिकृत होने से अक्षर दुर्वाच्य है और यही कारण है कि कही -कही भाषागत अशुद्धिया मिलती है।

अन्त मे , इस विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि यह एक उत्कृष्ट श्रेणी की रचना है। यदि इसकी पूर्ण प्रति उपलब्ध हो तो यह महत्त्वपूर्ण कार्य हमारे सामने समग्र रूप से आसकेगा, जिससे सस्कृत साहित्य के इतिहास मे एक रत्न की वृद्धि और होगी।

'शोध-पत्रिका' उदयपुर
वर्ष १८ अङ्क १ से उद्धृत

***

पुनश्च-राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, पुरातत्त्वमन्दिर, प्रधान कार्यालय, जोधपुर ने इस ग्रन्थ की महत्ता स्वीकार कर सीतामऊ (म प्र.) के महाराज श्री रघुवीर सिह जी के अनुरोध पर इस ग्रन्थ का सम्पादन कर सन् १९९१ मे प्रकाशित कर दिया है, जिसमे सम्पादक श्री किशनलाल दुबे ने हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया है तथा अन्त मे कुछ महत्त्वपूर्ण टिप्पणिया भी प्रस्तुत की है, जिनसे अनेक बिन्दुओ पर प्रकाश प्राप्त होने के साथ समस्याओ का समाधान भी होता है। जयपुर पुरातत्त्वविद् श्री गोपालनारायण जी बहुरा ने भी इस ग्रन्थ के महत्त्व पर प्रकाश डाला है तथा सम्पादक का आलेख भी मननीय व पठनीय है। पूर्ण ग्रन्थ की उपलब्धि के प्रति सभी चिन्तित है। ग्रन्थ प्रकाशन के लिए डॉ पद्मधर पाठक, निदेशक महोदय बधाई के पात्र हैं।

(डॉ प्रभाकर शास्त्री)

'महाराणा प्रताप ' एवं 'मान प्रकाश'

हिन्दू-सस्कृति के रक्षक, सिसोदिया क्षत्रिय-वश कुलभूषण, महाराणा प्रताप का नाम भारत- वर्ष के इतिहास मे 'स्वाधीनता-सग्राम के पुजारी' के रूप मे स्वर्णाक्षरो से अकित है। महाराणा उदयसिह की मृत्यु पर सन्१५७२ ई मे महाराणा प्रताप मेवाड की गद्दी पर बैठे। इनके पास न राजधानी थी और न कोष ही था, परन्तु बडे धैर्य से इन्होने राज्य सभाला और सेना इत्यादि की तैयारी करने लगे। आमेर के कुंवर, बादशाह जलालुद्दीन अकबर के कृपा-पात्र सैनिक, मिर्जा राजा मानसिह प्रथम का प्रताप द्वारा तिरस्कार करने संबन्धी कथा इतिहास व लोक मे प्रसिद्ध है । सुप्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध मे मानसिह ने स्वय अकबर की सेना का नेतृत्व किया था। उसके बाद भी मानसिह तथा अन्य कछवाहा सरदार मेवाड के विरुद्ध मुगल सेना के साथ लडते रहे थे। मेवाड की स्वतत्रता छीनने के लिए अकबर ने मेवाड में ५० थाने नियत किये थे और स्वयं वहाँ प्रबन्ध करने के लिए गया था, परन्तु मेवाड में उसका कभी पूर्ण अधिकार नही हुआ। यह भी सत्य है कि महाराणा प्रताप के पास अर्थाभाव के साथ ही सेना व पर्याप्त शस्त्रास्त्र भी नहीं थे। यह सब कुछ समझते हुए भी महाराणा प्रताप ने अपनी आन व मातृभूमि की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। उनका यह बलिदान आज भी भारतीय सस्कृति का गौरव बना हुआ है।

मुगल बादशाह जलालुद्दीन खा अकबर का तीन विशिष्ट प्रकार के राजपूतो से संपर्क हुआ था, जिनमे १. सरलता से आत्म-समर्पण करने वालो मे आमेर के शासक, २.डटकर युद्ध करने के उपरान्त विजेता से ससम्मान समझौता करने वालो मे

रणथम्भोर के शासक तथा ३ आत्म समर्पण करने से सर्वथा निषेध करने के साथ ही निरन्तर युद्ध करने वालो मे महाराणा प्रताप का नाम लिया जाता है, जो एक गौरव की बात है।[१]

आमेर (जयपुर या ढूँढाड की प्राचीन राजधानी) के शासक तथा सम्राट् अकबर के प्रथम सेनापति मिर्जाराजा मानसिह प्रथम की स्तुति मे लिखे गये एक अप्रकाशित ऐतिहासिक महाकाव्य **'मान-प्रकाश'** का पता चला है, जो खण्डित रूप मे एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी, कलकत्ते मे सुरक्षित है। इस हस्तलिखित ग्रन्थ का परिचय-'शोध-पत्रिका' (वर्ष१८ जनवरी-अप्रैल ६७)मे प्रकाशित हो चुका है। यहाँ उसके राणाप्रताप विषयक अश को प्रस्तुत किया जा रहा है । मूल ग्रथ अनेक स्थानो पर त्रुटित, अपूर्ण व अशुद्ध है। जहाँ तक सम्भव हो सका है, शुद्ध करने का प्रयास किया गया है। सम्पादन के बाद यहाँ पर सिर्फ उसका शुद्ध पाठ प्रस्तुत किया जा रहा है, साथ ही पद्यो का भावानुवाद भी प्रस्तुत किया गया है।

''प्रयाणमाकर्ण्य महीश्वरस्य

वैरिप्रिया· प्रेयसि वीतसंगा ।

बभूवुरुत्साहित-चातुरङ्गा

भेजु कुरंगा इव काननानि ।।[२] (पृष्ठ-२३ ए) ॥१॥

शूरः प्रतस्थेऽरिविदारणाय

स मानसिंहः सहितो बलोघै· ।

'भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास'- एस आर शर्मा, अनुवादक-श्री सत्यनारायण दुबे, द्वितीय सस्करण१९६१, पृप्ठ३४५ के आधार पर।

महीश्वर महाराज मान के विजय -प्रम्थान को सुनकर अपने प्रियतमो से वियुक्त होकर शत्रु-कामिनियाँ हरिणो के समान वनो का सेवन करने लगी।(यहाँ केवल राय मुरारिदास अपने नायक मिर्जा राजा मानसिह की प्रशसा मात्र कर रहा है। सस्कृत-काव्यो मे ऐसा वर्णन बहुतायत से उपलब्ध होता है।)

तदा जलौघैरिव शंकितोऽभूत्
किमर्ज्जुनः किं पृथुरेष भूप· ।। [१] ।।२ ।।
संस्थापयन्निर्जित-वैरिवृन्दान्
धर्मानपि स्वच्छतरप्रताप· ।
दीनान् द्विजानप्यथ देवतानां
सद्मानि पद्मापतिरंजितानि ।। [२] ।।३ ।।
रिपुशतान्यथ देशमशेषतो
वशमसावनयन्नयकोविद· ।
नृपतिरेव तदा जगतामभूद्
अनुमतो मुमुदे मुदिताशय ।। [३]
अथाजगामाभिमुखोक्तवह्नि-
र्जनैर्वृतो धर्मधुरीण-मुख्य ।

शूरवीर मानसिह शत्रु के विदारणार्थ सेना सहित चल पडा। उसे देखकर शत्रु-समूह (विपक्षी राजगण) शकित हो उठा। जिस प्रकार समुद्र अर्जुन व राजा पृथु को देखकर शकित हुआ था।

विशेष-ऐसी कथाये प्रसिद्ध हैं कि अर्जुन (सहस्रार्जुन) जब दिग्विजय के लिये निकला तो उसकी विशाल सेना को देखकर समुद्र शकित हो गया था। इतनी सेना उसका अस्तित्व समाप्त न कर दे, यह आशका थी। इसी प्रकार महाराज पृथु ने सर्वत्र व्याप्त इस समुद्र को हटा कर यहाँ 'पृथ्वी' बनायी थी । पृथु द्वारा निर्मित होने से ही यह पृथ्वी कहलायी है। अत उन पूर्व स्मृतियो के आधार पर कवि ने यहाँ भी कल्पना की है।

'स्वच्छतर प्रतापी राजा मान विजित शत्रु-समूह को , धर्म को तथा दीन ब्राह्मणो को पुन सस्थापित करता हुआ एव पद्मापति भगवान् विष्णु से रजित देवालयो की स्थापना करता हुआ विजय यात्रा के लिए चल पडा।' पूर्व पद्य मे समागत क्रिया 'प्रतस्थे' का अन्वय यहाँ भी करना होगा। मानसिह गोविन्द भगवान् के अनन्य उपासक थे- यह तत्कालीन सस्थापित मन्दिरो से स्पष्ट है, जयपुर के गोविन्ददेवजी का मदिर (आमेर की घाटी) आपके द्वारा निर्मित है- ऐसा सुना गया है।

'अनेक शत्रुओ, देश-विदेशो को अपने अधिकार मे करता हुआ वह नीतिवेत्ता सपूर्ण ससार का अनुमत होकर प्रसन्न हुआ।' इस पद्य मे केवल उसकी प्रशसा की गई है।

तमाह्वयामास महोग्रवीर्यं
राणानृपं मानमही-महेन्द्र ॥[१] ॥५॥
'उवाच तं वीर! बहि प्रयाहि, त्वं पातिसाहं भज सर्वभारै· ।
योद्धुं मतिश्चेद् बहिरेहि तूर्ण, योधैर्मदीयैर्कुरु युद्धमृद्धः ॥[२]
नृपोक्तवाक्यं बहुशो निशम्य राणा नृपः क्रोध-वशादुपेतः ।
हन्तुं महीपालमणिं प्रकोपाद्दण्डाहतः सर्प इवाजगाम ॥[३] ॥७॥
तदीययोधा· सहसा समन्तात् श्री मानसिहोपरि पेतुरुग्रा ।
शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधान् ववर्षुरम्भोदगणा इवाप· ॥[४] ८ ॥
'किमुभयैर्मुमुचे न चिराच्चमूर्नववधूरिव भावनयानया ।
तरुणकुंभिगति स्फुरदम्बराचरण-चुम्बितचन्द्रमुखद्युति ॥'[५] ॥९॥
तेषां प्रतापं प्रसमीक्ष्य भूपो युद्धाय चैतान् स्वयमाचकार ।
सिहो यथा वारणराजमुच्चैर्विहन्तुकाम स तथाऽऽबभाषे ॥'[६] ॥१०॥

---

१ धर्मधुरीणो मे भी प्रमुख, सामन्तादि जनो से परिवृत, अग्नि के समान तेजस्वी राजा मान (राणा प्रताप को जीतने के लिये) पहुँचा । महान् शक्तिशाली 'राणा' को महाराज मानसिह ने बुलाया।

२ म मानसिह ने राणा से कहा- वीर, बाहर आओ। तुम्हे सर्वस्व देकर बादशाह की सेवा करनी है। यदि युद्ध करने की इच्छा है तो शीघ्र मैदान मे आ जाओ तथा समृद्ध होकर मेरे योद्धाओ से युद्ध करो।

३ राजा मान की बात सुनकर राणा अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और डडे से पीटे गये सर्प के समान (क्रुद्ध भाव से) राजा मान को मारने के लिए आ पहुँचे।

४ राणा के योद्धा एकाएक मानसिह पर आक्रमण करने लगे। उन योद्धाओ ने शर (बाण) असि(तलवार) शक्ति, ऋष्टि (अस्त्र विशेष) परश्वध (परशु) आदि की वर्षा कर दी, जिस प्रकार मेघ-समूह जल की वर्षा करते हैं।
विशेष- यहाँ राणा व मानसिह की अनवन का कोई कारण उल्लिखित नही है। ऐसा प्रतीत होता है, यह उसके उपरान्त का वर्णन है , जब मानसिह सेना सहित आक्रमण करने आया था तथा हल्दीघाटी मे युद्ध हुआ था, जिसका उल्लेख -अबुलफज्ल, निजामुद्दीन, वदायूनी आदि ने विस्तार से साथ किया है।

५ युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है कि दोनो सेनाये बहुत देर तक युद्ध की भावना से नववधू के समान, जो तरुण गजपक्ति की गति से युक्त तथा चमकती हुई तलवारो की कान्ति से उद्दीप्त थी,- मैदान न छोड सकी।

६ जिस प्रकार सिह महान् हाथी को मारने की इच्छा रखता है, उसी प्रकार प्रताप-पक्षीय योद्धाओ के प्रताप को देखकर राजा मान ने स्वय युद्ध के लिए ललकारा। (वह उसी प्रकार गर्जा जैसे सिह हाथी को देखकर गरजता है।)

क्षणेन स क्षोणिपतिर्विपक्षान् विद्राव्य तान्दोर्युगलप्रतापैः ।
दैत्यानिवेन्द्रः स बभौ विजित्य प्रताप-सन्तापित-वैरिवर्ग ॥[१] ॥११॥
धनदेन करेण केवलं धनदो भूमिपतिर्बभूव ह ।
सुतरामहितापकारिणा महसाऽसौ गरुडोपमो न किम् ?॥[२] ॥१२॥
वज्राङ्कितेनैव करेण भूपः पुरन्दरस्यापमितिं जगाम ।
प्रतापदावानलदग्धवैरिकक्ष्योऽप्यलक्ष्यो द्रुतयांबभूव ॥[३] ॥१३॥
प्रतापतिग्मांशुरसित्वमेव यमोऽसि कोपेन रणाङ्गणेषु ।
एको विधात्रा विहितोऽसि तस्मादीशो दिशः पालयितुं प्रयत्नात् ॥[४] ॥१४॥
न स्तोतुमीशोऽस्ति भवन्तमुच्चैः सहस्रजिह्वोऽप्यथ को मनुष्यः ॥[५] ॥१५॥
भ्रमरहितमुदारं हृत्सरोजं नृपस्य,
स्फुरति नियतमेवं यत्र कृष्णांघ्रियुग्मम् ।
बलिदमनविधौ यद् भूतले नोन्ममौख
तव तदणुमपि स्यात् केन तन्नैव जाने ॥[६] ॥१६॥

---

१ राजा मान राणा प्रताप के विपक्षियो को क्षण भर मे छिन्न-भिन्न कर, जीतकर अपने प्रताप से वैरि-वर्ग को सन्तप्त करता हुआ इन्द्र के समान शोभित हुआ।

२ धन देने वाले हाथ से (पर्याप्त धन देने के कारण) वह राजा मान 'धनद' (कुबेर) कहलाया। अत्यधिक शत्रु पीडक होने के कारण वह गरुड के समान क्यो न माना जाय ? (अहि +ताप+कारिणा, अहित+अपकारिणा, दो प्रकार से पदच्छेद होगा।)

३ वज्र से अकित भुजा होने से वह राजा इन्द्र के समान हो गया। अपने प्रताप रूपी दावानल से शत्रु रूपी तृणो को दग्ध कर राजा मान ने शीघ्र उन्हे अलक्षित कर दिया।

४ मानो दिकृत रुणिया ही स्तुति कर रही हैं-'आप प्रताप रूपी सूर्य है, रणस्थलो मे कोप करने के कारण 'यमतुल्य' हैं। विधाता ने आपको दिशाओ के पालनार्थ इसीलिए बनाया है। आप दिशाओ के स्वामी हैं।

५ सहस्र जिह्वा वाला सर्पराज भी आपकी स्तुति करने मे समर्थ नहीं है, तो मनुष्य का तो सामर्थ्य ही कहाँ? (अह एक पक्ति ही है। इसकी पुनरावृत्ति हुई है, अग्रिम पद्य के उपरान्त सभवत यह पद्य लेखक की नही, लिपिकर्ता की त्रुटि है।)

६ राजा का हृदय भ्रमरहित एव उदार है, जहाँ कृष्ण का चरणकमल नियत रूप से स्फुरित होता रहता है। जिस चरणकमल ने बलि राजा के दमनावसर पर भूतल से आकाश तक नाप लिया था, उसका अणु भाग भी तेरे किस अग के समान हो, यह नही जाना जा सकता।

न स्तोतुमीशोऽस्ति भवन्तमुच्चैस्सहस्रजिह्वोऽप्यथ को मनुष्य.? ।
एवं स्तुतो दिक्तरुणीभिरीश हहत्समीरस्य मिषान् महीशः ।।[१] ।।१७।।
एवं रणे युध्यति मानसिंहे समागतो माधवसिंह वीरः ।
विश्रम्यतां क्षोणिपते क्षणात्त्रपश्यतां युद्धमिदं जगाद ।।[२] ।।१८।।
इतीरयित्वाऽभिमुखो रणाग्रे व्यग्रान्समग्रान् विदधेऽरियोधान् ।
तदा न युद्धाय पुरो बभूवु केचिद् भयात्तस्य परिस्खलन्त. ।।[३] ।।१९।।
तद्बाणभिन्ना बहुशो विपन्ना दीना बभूवु· कति भूमिपाला ।
केचिद् विहायाजिमही प्रतस्थु स्थिताश्चिरङ्केचन योद्धुकामा·।।[४] २०।।
निशेव तद्वासरमास युद्धं गतेऽस्तमेवन्तदरातिमित्रे ।
संकोचिते तत्तरुणीमुखाब्जे स माधवेन्दु· सहसोद्दिदीपे ।।[५] ।।२१।।
उद्दीपिते माधवसिह-चन्द्रे तमांसि तत्रासुरमी प्रतीया ।
तत्पक्षभाजाम्वदनानि रेजु कुमुद्वतीनामिव काननानि ।।[६] ।।२२।।

---

१ आपकी स्तुति करने के लिये हजार जिव्हा वाला नागराज भी समर्थ नही है, तो मनुष्य की तो सामर्थ्य कहाँ ? इस प्रकार (१४से १७ तक) तेज बहने वाली हवा के बहाने मानो राजा मान दिशा रूपी स्त्रियो से स्तुति किया गया।

२ इस प्रकार मानसिह के युद्ध करते हुए माधवसिह वीर आ गये। वे बोले- राजन्,आप क्षण भर विश्राम कीजिये, इस युद्ध को समाप्त कीजिये। विशेष- माधवसिह मानसिह के छोटे भाई थे।

३ यह कहकर वीर माधवसिह युद्धाभिमुख हुए तथा सभी विपक्षी योद्धाओ को व्यग्र बना दिया। उस समय उनके भय से कोई भी युद्ध के लिए सामने नही आया।

४ माधवसिह के बाण से अनेक योद्धा छिन्न-भिन्न हो गये, अनेक राजा दीन हो गये, कुछ युद्ध भूमि छोडकर भाग गये, कुछ युद्ध करने के लिए कुछ समय खडे रहे।

५ दिन मे रात्रि की कल्पना की गई है। अराति शत्रु का मित्र भी शत्रु ही होगा। शत्रुओ के युद्ध मे इस प्रकार अस्त हो जाने पर वह दिन रात्रि के समान हो गया। मित्र यहाँ द्व्यर्थक है। शत्रु परक एव सूर्य परक। सूर्य के अस्त होने पर रात्रि का आगमन होता हे। उन शत्रुओ की तरुणियो के मुख सकुचित हो गये। (सूर्यास्त होने पर कमलिनियाँ सकुचित हो गई) अर्थात् शत्रुओ की स्त्रियाँ म्लानमुखी हो गईं। तब माधवसिह रूपी चन्द्रमा उस रात्रि मे सहसा प्रकाशित हो उठे। (काव्यगत सौन्दर्य दर्शनीय है।)

६ माधवसिंह रूप चन्द्रमा के उद्दीपित (प्रकाशित) होने पर ये शत्रु अन्धकार बन गये तथा माधवसिह के पक्ष वाले योद्धाओ के मुख कुमुदिनियो के वन के समान खिल उठे।

राणा तदा दुर्मदवीर-वीर्यो दुर्य्योधनायास्य पुरो बभूव।
स कर्ण-कल्पोऽर्जुनकल्पवीर्य्य विजेतुकामः परुषं जगाम ।।[१] ।।२३ ।।
यत्त्वं रणे माधवसिंह, वीरान् बलेन विद्राव्य मुदम्विधत्से।
क्षणेन तत्क्ष्मापतिना समेतं मुदा विहीनं सहसा विधास्ये ।।[२] ।।२४ ।।
राणा-नृपे जीवति या जिगीषा यूनोर्वृथा सा भवतोरुपेता।
युवाम्विजानीतमिदं मदुक्तं , सत्यं शपे विष्णुपदारविन्दम् ।।[३] ।।२५।।
इतीरयन् बाणशतेन वीर आच्छादयामास स तौ प्रकोपात्।
छन्नम्पुनर्व्वासरमास युद्धे रुद्धन्तथाऽभूद्गगनं शरोघै. ।।[४] ।।२६।।
आदौ गजेनैव गजो नियुक्तस्तुरंगमेनैव तुरङ्गमोऽपि।
पदातिना पत्तिरथ व्ययुध्यन् समस्तदासीदुभयो प्रयोग ।।[५] ।।२७ ।।
एवं प्रवृत्ते गुरुसंगरेऽस्मिन् विसिस्मिरे दैवतमण्डलानि।
शस्त्रान्धकारे गहने प्रवीरा भेजुर्भयच्छन्नमन शरीरा ।।[६] ।।२८।।
यस्संमुखे यस्य पपात वीरस्तं तं जघान स्वपरो न भेदः ।।
राणाचमूर्ब्बाण-विभिन्नदेहा· भेजे विदेहा विदिशो दिशोऽपि ।।[७]।।२९।।
राणा नृपो बाणशतेन भूय. शूर स जीमूत इवान्वरुद्धः।

दुर्मदवीरवीर्य राणा प्रताप माधवसिंह से लडने के लिए (दुर+योधनाय) सामने आ गया। कर्ण के समान प्रतापी अर्जुन के समान शक्तिशाली राजा मान को जीतने की इच्छा से कठोर वचन बोला।
राणा ने कहा-माधवसिह ! वीरो को अपने बल से विद्रावित कर इस रणभूमि मे जो हर्ष का अनुभव कर रहे हो, मैं अभी क्षण भर में राजा मान सहित तुम्हे हर्षहीन बनाता हूँ।
राणा प्रताप के जीवित रहते तुम युवको की जो जीतने की इच्छा है, वह व्यर्थ ही है। मैं जो कह रहा हूँ, उसे अच्छी प्रकार जान लो। मैं भगवान् विष्णु के चरणो की शपथ खाकर कह रहा हूँ।
इस प्रकार कह कर वीर प्रताप ने उन दोनो को सैकडो बाणो से ढक दिया। आकाश बाण समूह से आच्छन्न हो गया और वह दिन दुर्दिन के समान प्रतीत होने लगा।
सर्व प्रथम हाथी से हाथी भिड गये तथा घोडो से घोडे। पैदल से पैदल लडने लगे। इस प्रकार उस समय दोनो ओर से समान प्रयोग हो रहा था।
इस भयकर सग्राम को देखकर देवताओं का समूह भी आश्चर्य चकित हो गया। शस्त्रो की अधिकता से हुए घने अन्धकार मे भय से आक्रान्त मन व शरीर वाले योद्धा इतस्तत भागने लगे।
जो जिसके सामने चला गया, उसने उसे मार डाला । अपने पराये का भेद नहीं रखा गया। राणा की सेना बाणो से छिन्नभिन्नशरीर विदेह के समान इतस्तत दौडने लगी।

तद् बाणसच्छन्नतनुः स धन्वी तं योद्धुकाम पुरतो बभूव ।।[१] ।।३०।।
तद् बाणसंभूतघनान्धकारं व्याधूय भास्वानिव मानसिंहः ।
बभौ रणक्षोणिमुखे रिपूणामप्रेक्षणीयो धरणीधुरीणः ।।[२] ।।३१।।
यतो यतो युध्यति दन्तिराजी ततस्ततो युध्यति मानसिंह· ।
सादी तथा पत्तिरथाप्ययुध्यन् युद्धस्तदासीद्द्विषतां स लक्ष्य. ।।[३] ।।३२।।
खड्गेन भिन्ना· करिणो निपेतु· शरेण लूना· परसादिनोऽपि ।
पदातयोऽमी तरसा भयेन पेतुर्महीपालमणेरमुष्य ।।[४]।।३३।।
एवं नृपे युध्यति मानसिंहे प्रताप-संतापितवैरिसंघे ।
अरातयो ही विगतप्रकोपा भेजुर्भिया वै विदिशो दिशोऽपि ।।[५] ।।३४ ।।
सयुध्यतान्तत्र महाभटानामसृङ् नदी प्रादुरभूदुदारा ।
परासुमातङ्गमहाद्रिला? केशेन शैवालवती विरेजे ।।[६] ।।३५।।
भयावहा भीरुजनावलीनामानन्ददा, सा भटमंडलीनाम् ।
चकार वीर्य्येण नदीमदीनां समानसिंहो,जित-मानसिंहः ।।[७] ।।३६।।

---

१ जिस प्रकार बादल जलधारा से भूमि को रोक देता है, उसी प्रकार उस राणा ने पुन सैकडो बाणों से शूरवीर मानसिंह को रुद्ध कर दिया। उसके बाणों से आच्छन्न धनुर्धारी युद्ध की कामना मे उसके सामने जा खडा हुआ।

२ राणा प्रताप के बाणों से उत्पन्न घने अन्धकार को दूर करके सूर्य के समान मानसिह रणभूमि मे शत्रुओ के लिए उत्प्रेक्षणीय हो गये।

३ जैसे-जैसे हाथियो की पक्ति लडती थी, वैसे ही वैसे मानसिह भी युद्ध कर रहे थे। घुडसवार और पैदल लड रहे थे। वह युद्ध शत्रुओ द्वारा लक्ष्ययुक्त था।

४ खड्ग से काटे गये हाथी और बाणो से छिन्न-भिन्न घुडसवार वहाँ गिरे हुए थे। महीपाल - मणि मान के डर से अनेक योद्धा भी (पैदल) गिर पडे थे।

५ इस प्रकार प्रताप से सतप्त कर दिया है शत्रु वर्ग को जिसने, ऐसे राजा के युद्ध करने पर शत्रु-योद्धा क्रोध रहित होकर विभिन्न दिशाओ मे भयभीत होकर भाग गये।

६ युद्ध करने वाले योद्धाओ की वहाँ खून की नदी उत्पन्न हो गयी। मरे हुए हाथी महान् पर्वत के समान लग रहे थे तथा योद्धाओ के केश शैवाल(सिवार)की शोभा दे रहे थे।

७ जिसने मानरूपी (स्वाभिमान रूपी) सिह को जीत लिया है, उस मानसिह ने अपने पराक्रम से रण-नदी को विशाल बना दिया। वह भीरुजनो के लिए भय देने वाली एव वीर योद्धाओ के लिए आनन्ददायिनी हुई।

देशे निराशो विजये तथा द्रा (क्) (रा)णानृपो विद्रुतसर्वगर्व. ।
रणं प्रयातुन्तरुणं सचेतसश्चक्रेसमुद्भ्रान्ति-गति. क्रमेण ॥[१] ॥३७॥
हृतगति-रति-वेगादास राणा नृपोऽपि,
द्विमुख इव स पश्यन् पृष्ठदेशे पुरोऽपि ।
नरपतिरति-रोषाद् धावमानोऽस्य पश्चाद्
असु-रहितमिवैनं त्रस्तमेकं मुमोच ॥[२] ॥३८॥
रणशिरसि रिपूणां मृत्युरेवास्ति कीर्त्यै
नरपतिकुलभाजां क्ष्माभुजन्स्तेन पण्डाः ।
समरभुवि जितानां वैरिभूपावलीनां
प्रणतिमितिबहूज्ञाः कीर्त्तये कीर्त्तयन्ति ॥[३] ॥३९॥
श्रीमानसिंहभुजचंडमरीचिदग्धा
केचिन्निपेतुरवनी-पतयोऽम्बरासौ ।
द्वन्द्वं च केचिदपहाय निकुञ्जमीयु·
केचित्तदीय-पदपल्लवमीयुरार्त्ता· ॥[४] ॥४०॥
संलग्ना नृपतेर्बभूवुरथ ये तीक्ष्णासिधारापथे
ते स्वर्व्वामविलोचनारतिरसोल्लासास्पदं शत्रवः ।
उद्यत्तिग्मकर प्रताप दहन ज्वालाकरालस्य ये

---

१ (अपने) देश की विजय मे निराश, विनष्ट सर्वगर्व, चचलगति राणा प्रताप ने अपने मन को पुन रण मे जाने के लिए (युद्ध करने के लिए) तरुण (ताजा) बनाया। अर्थात् वह पराजय का अनुभव करके भी पुन युद्ध के लिए फडक उठा ।

२ द्विमुख (दो मुख वाले) व्यक्ति के समान बडे वेग से आगे तथा पीछे देखता हुआ राणा प्रताप हृत-गति हो गया। इस (राणा प्रताप) के पीछे क्रोध से दौडते हुये राजा मानसिंह ने भी निष्प्राण के समान इस एक को ही छोडा। अर्थात्- राणाप्रताप तो बच गया, शेष सभी राणापक्षीय योद्धा मारे गये या अधीन हो गये।

३ युद्ध क्षेत्र मे शत्रुओ की मृत्यु ही राजाओ की कीर्ति के लिये है । वे राजा लोग निष्फल हैं। युद्ध-भूमि मे जीते गये शत्रुराजाओ के समूह को प्रणति (नमस्कार)की बहुज्ञ व्यक्ति, कीर्ति के लिए स्वीकार करते हैं।

४ मानसिह के भुजदड की किरणो से जले हुये कुछ राजा लोग अम्बर से पृथ्वी पर गिर पडे। क्रुद्ध योद्धा युद्ध छोडकर अपने घर भाग गये और कुछ पीडित होकर उनके चरणाश्रित हो गये।

खड्गस्यारसंमुखा रणमुखे ते निर्जिताः भूमिपा· ।।[१]।।४१ ।।
इत्थं देशमशषतोऽस्य तनयन्दुर्ग वशं नीतवान्
धर्मानप्यवनीपतीन्द्रतिलकस्संस्थापयन्निर्बभौ ।
भूदेवानथ देववृन्द सदयं प्रोन्मूलिते पत्तने
नैवं कर्म सुदुष्करं स कृतवान् जित्वा परान् वैरिण ।।[२] ।।४२ ।।
काचित्कुम्भलमेरुकाननदरीद्वारिद्विषन्मण्डली
पश्यन्ती नृपते प्रतापदहन-ज्वालावली दात्विष ।
हित्वा तत्परिधान-भूर्जवसना जाता कुलीनापि सा
दिग्वासा किमहो महोन्नतिहृद कोपोऽपि लोकोत्तर ।।[३] ।।४३।।

''महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ''
साहित्य-सस्थान,राजस्थान विद्यापीठ
उदयपुर, 'प्रताप जयन्ती'-१९ मई ६९
ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया स २०२६ से
साभार उद्धृत।

***

---

१ जो योद्धा राजा मान की तीक्ष्ण धारावाली तलवार के मार्ग मे आये, वे शत्रु लोग स्वय सुन्दरियो के रतिरसोल्लास के भागी हुए (स्वर्ग चले गये) । जो उगते हुए तपनाशु (सूर्य) के प्रताप दहन (अग्नि) ज्वाला के कराल (भयकर) खड्ग के सम्मुख नही आये, वे राजा लोग स्वत ही जीत लिये गये।

२ इस प्रकार सपूर्ण देश, राणा के पुत्र एव दुर्ग को अपने अधिकार मे कर लिया व उन्मीलितपुर मे ब्राह्मणो को पुन मन्दिरो मे बसाता हुआ एव धर्म की भी स्थापना करता हुआ राजा मानसिंह शोभित हुआ। उसने शत्रुओ को जीतकर इस प्रकार का कोई दुष्कर कार्य नहीं किया ।

कोई कुम्भलमेरु (दुर्ग विशेष) के जगल की गुफा के द्वार स्थित शत्रु मडली, प्रतापी राजा मानसिह के प्रताप रूपी दहन(अग्नि) ज्वालामुखी को देखती हुई कुलीन भी यह पहने हुए भूर्ज वस्त्रो को छोडकर दिग्वासा (नग्न) हो गई। कवि कहता है-तेजस्वी व्यक्तियो का कोप भी लोकोत्तर (अलौकिक) होता है।

मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम
और
उनके शिलालेख

जयपुर (आमेर) या राजस्थान (राजपूताना) ही नही, भारतवर्ष के इतिहास मे **महाराजा मानसिंह कछवाहा** का नाम बहुत प्रसिद्ध है। मुगल साम्राज्य के सुप्रसिद्ध शासक -अकबर बादशाह के शासन काल मे म. मानसिह का स्थान तत्कालीन देशी राजाओ मे ही नही, समस्त उमरावो की श्रेणी मे प्रथम गणनीय है। आपकी वीरता के सबध मे एक कहावत प्रसिद्ध है-

''जननी जणैं तो ऐसो जण जैसौ मान मरद् ।
समॅदर खांडो पखालियो काबल पाडी हद् ॥''

वीरता, नीतिपरायणता, एव धर्म की दृढता मे अद्वितीय म.मानसिंह **महाराजा भगवन्तदास** के पुत्र थे। आप आमेर राज्य के प्रथम संस्थापक महाराज सोढदेव की २५ वी पीढी मे माने जाते हैं। आमेर के प्रसिद्ध शासक म. पृथ्वीराज से आप ७ वीं पीढी मे थे। आपके पिता म. भगवन्तदास म.भारमल के ज्येष्ठ पुत्र थे। आपकी माता का नाम भगोती(भगवती) था। सवत् १६०७ पौषवदि १३ शनिवार को आपका जन्म हुआ था। ज्योतिषियो के कथनानुसार आप १२ वर्ष तक आमेर से दक्षिण मे, मोअज्जमाबाद(साभर) में रहे, जहा आपका बाल्यकाल बीता। कहा जाता है बाल्यकाल में ही म. मानसिह बलिष्ठ, निर्भीक, एव अस्त्र सचालन में सिद्ध हो गये

थे। आपके प्रत्युत्पन्नमतित्व के उदाहरण को प्रस्तुत करते है- एक बार बादशाह ने म. मानसिंह से जो रूप-रंग मे बहुत सुदर नहीं थे। पूछ लिया था कि खुदा के यहा जब रूप बट रहा था तो उस समय तुम कहा थे? मानसिह ने तुरन्त उत्तर दिया कि खुदाबन्द, यह बन्दा उस समय इबादत में था और जब वीरता और दातारी बट रही थी, उस वक्त मैने इनके साथ ही नूर के बदले ये ही माग लिये। बादशाह अकबर इस उत्तर से प्रसन्न हुआ तथा उन्हे अपने साथ ही आगरा ले गया। यह आपकी बादशाह अकबर के साथ प्रथम भेट थी। यह सवत् १६१९ वि. की घटना बताई जाती है। उस समय आपकी अवस्था १२ वर्ष की थी और बादशाह अकबर २० वर्ष के थे । धीरे-धीरे अपने शौर्य, पराक्रम, वीरता, एवं बुद्धिमत्ता से आप बादशाह के कृपापात्र होते गये और पर्याप्त सम्मानित होने लगे। कई युद्धो में म. भगवन्तदास (पिता) के साथ एव कई युद्धों मे स्वतत्र रूप से जाकर आपने विजय प्राप्त की। सर्व प्रथम सवत् १६२१ में बादशाह ने आपको **मनसब पद** प्रदान कर सम्मानित किया था।

सवत्१६२४-२५ में बादशाह अकबर के साथ **चित्तौड-विजय** मे आपका प्रमुख सहयोग था। इस युद्ध मे प्रसिद्ध वीर जयमल राठौड एव पत्ता (बदनोर) मारे गये थे। स.१६२५-२६ में **रणथंभोर दुर्ग** को विजय किया था। इस अवसर पर आपके पिता म. भगवन्तदास भी साथ थे। इसके पश्चात् कालिञ्जर एव मेडता के किलों को भी आपने बडी सरलता से जीता। सवत्१६२९ में गुजरात के शासक मुजफ्फर शाह को अपने अधीन किया तथा इसी समय शेरखा फौलादी को भी परास्त किया । इसके पश्चात् सरनाल की लडाई में जो महेन्द्री नदी के पास था, आपने वीरता को प्रदर्शित कर वहा के शासको, मिर्जाओं को शान्त कर दिया। धीरे-धीरे सूरतनगर ,डूगरपुर भी बादशाह के अधीन हो गया । सवत् १६३० में महाराणा प्रतापसिह द्वारा म. मानसिंह की वह अपमान करने की घटना घटी, जो इतिहास प्रसिद्ध है।

संवत्१६३१ में **बिहार तथा बंगाल विजय** के लिए प्रस्थान वर्णित है। इस विजय के पश्चात् सं.१६३३ में राणाजी पर चढाई की गई थी और **हल्दीघाटी** से कुछ दूर बनास नदी पर डेरा डाला गया था। यह युद्ध द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला २ सवत्१६३३, दिनाक २१ मई १५७६ ई. को प्रारम्भ हुआ था। यह युद्ध आश्विन शु.७ स१६३३ तक

चलता रहा तथा इसमें म. मानसिंह की ही विजय हुई, परन्तु राणा ने अधीनता स्वीकार नहीं की और वही पहाडों में छिप गए।

इसके पश्चात् म. मानसिह **लाहोर के सूबेदार** बनाये गये । काबुल एव पंजाब की लडाईया लडीं। म. मानसिह को पेशावर एव सिन्ध का अधिकार मिला। सवत् १६४४ मे बादशाह ने म. मानसिह को अपने द्वारा प्रचारित - 'दीने इलाही व तोहीदे इलाही धर्म' स्वीकार करने को कहा था। मु.बदायूनी(इतिहास लेखक) ने इस घटना को इस प्रकार वर्णित किया है-बादशाह सलामत ने शिष्यता की बात को मानसिंह के सामने लाकर उनकी परीक्षा की। उस पर मानसिंह ने निर्भीक होकर उत्तर दिया था-यदि मुरीदी से यह अभिप्राय है कि प्राणपण से अर्पण होना, तो मै तो जान हथेली पर ही लिये रहता हूँ, जिसके प्रमाण की आवश्यकता नही और यदि इस शब्द का अर्थ कुछ और ही है और यदि यह धर्म से सम्बन्धित है, तो मैं निश्चय ही एक हिन्दू हू। यदि आप मुझे मुसलमान होने का हुक्म देंगे तो मैं मुसलमान तो हो जाऊगा, परन्तु मैं अन्य किसी मत का अस्तित्व ही नहीं मानता। इस बात को सुन कर बादशाह चुप हो गया था और फिर कभी उन्हे धर्म परिवर्तन के विषय में नहीं कहा गया। महाराज मानसिह उस समय बगाल और बिहार के सूबेदार नियुक्त किये गये थे। महाराज मानसिह इन पूर्वीय प्रान्तों-बगाल, बिहार, उडीसा, आसाम आदि मे बहुत समय तक सूबेदार रहे। सं १६४६ तक आप अपने पिता म. भगवन्तदास की देखरेख में तथा अधिकांशत. उनके साथ ही युद्धों में भाग लेते रहे थे। स. १६४६ में पिता की मृत्यु होने के पश्चात् १६६२ तक आप स्वतत्र रूप से अपना पराक्रम प्रदर्शित करते रहे और इसी अर्से में काश्मीर का सुलतान युसूफ खा तथा उसका पुत्र याकूब मानसिह के पास कैद भी रहे थे। इन्हीं दिनों में आपने गजनीपुर, नीलोद, व बनारस पर शासन किया और काशी मे 'मान-मन्दिर' बनाया, उडीसा पर चढाई की तथा अफगानों पर प्रथम विजय प्राप्त की। कूच-बिहार के राजा लक्ष्मीनारायण को अपने अधीन किया और उसकी बहिन से विवाह किया। यह स.१६५४ का किस्सा है।

ऐतिहासिक कथानकों में से बंगाल की सरहद के एक राजा 'केदार कायस्थ' का किस्सा भी प्रसिद्ध है। राजा केदार को इस बात का बल था कि उसे कोई जीत नहीं सकता, क्योंकि उसके पास शिलादेवी(भगवती) सिद्ध थी। इसलिए उसने अन्य जमींदारो के साथ उपद्रव प्रारम्भ किया । नगरसूर के पास इसकी लडाई हुई थी। अन्त

में केदार भाग गया परन्तु शीघ्र ही पकड लिया गया, यही घटना क्रम जयपुर की वशावली में प्रकारान्तर से लिखा गया है। शिलामाता ने प्रसन्न होकर म. मानसिह को उनके पास पहुचने का वर दे दिया था। फिर स्वय ने एक कन्या का रूप धारण कर केदार के पास पहुंच कर उसकी पूजन क्रिया मे विघ्न करने लगी थी और उसके तीन बार जाने को कहने पर उसे यह कहकर कि मैं तेरे ही कहने से जा रही हू -म मानसिह के पास चली आई। केदार ने उस मूर्ति को समुद्र मे फिकवा दिया, परन्तु म. मानसिह उसे ढूंढ लाये। तभी से यह शिलादेवी आमेर मे बडे सम्मान से पूजी जाती है। यह **'जसोहर देवी'** कहलाती थी, क्योकि यशोहर नामक स्थान पर सस्थापित थी। कहा जाता है कि पहले यह केवल शिला के आकार मे थी। मूर्ति का आकार तो म. मानसिह ने दिया था।

अकबर की मृत्यु के पश्चात् भी म. मानसिह ने स.१६७१ तक उसके पुत्र जहागीर के अधीन रहकर युद्ध में विजय प्राप्त की। परन्तु अन्त मे उसके व्यवहार से वे असतुष्ट हो गये थे तथा परिणामस्वरूप सदर्भ मे इलिचपुर (सूदा बराड) में बीमार होकर मार्गशीर्ष सु.८ सं.१६७१ को स्वर्ग सिधार गये। आप १२ वर्ष की आयु से लेकर५२ वर्ष तक युद्धों मे विजय प्राप्त करते रहे तथा अपने जीवनकाल मे आपने७७ युद्ध किये, जैसाकि जयपुर की ऐतिहासिक पत्रावली में उल्लेख मिलता है।

आपने अपने समय में कुछ शिलालेख भी खुदवाये है, जो संख्या में ४ है। ये हिन्दी तथा संस्कृत दोनों मे है तथा विभिन्न स्थानो पर उपलब्ध हुए है। उनका उल्लेख यहां प्रस्तुत करते हैं-

(१) आमेर के राजा मानसिंह कछवाहा का वि. सं. १६६९ का शिलालेख

यह शिलालेख आमेर से पूर्व रही राजधानी - **'जमवायरामगढ'** नामक ग्राम के किले में मिला था, जो इस समय जयपुर के म्यूजियम में सुरक्षित है। कछवाह वश के राजा ईशदेव ने अपने भानजे तंवर जयसिंह को ग्वालियर (गोपाद्रि) का राज्य सौप दिया था और उसके उपरान्त उनके पुत्र सोढदेव ने अपने पुत्र दूलेराय के साथ ढूढाड की ओर प्रस्थान कर बाहुबल के आधार पर वहां की आदिम जातियो-बडगूजरों व मीणों को जीतकर सर्वप्रथम दौसा पर अपना अधिकार किया था। यहां से इनका आधिपत्य रामगढ की ओर होता गया। इस रामगढ में जमवाय नामक माता का मंदिर है, अत

यह जमवायरामगढ कहलाता है। यह प्रसिद्ध स्थान रहा है तथा इसी दुर्ग के आश्रय में कछवाहों ने अपनी नीव व जडे मजबूत की थी। आज भी राजघराने के कई आवश्यक कार्य यहा सम्पन्न होते हैं।

कई स्थानो पर महाराजा मानसिह को भगवानदास का पुत्र भी बता दिया गया। कुछ लोग भगवन्तदास, भगवानदास एव भगवद्दास मे कोई अतर नहीं मानते **'तुजुक जहांगीरी'** नामक इतिहास में मानसिह के पिता का नाम भगवानदास लिखा है। कुछ इतिहासकारों ने जिनमे अकबर के लेखक स्मिथ का नाम उल्लेखनीय है, म. मानसिह को भगवानदास का पुत्र बताया है, परन्तु बाद मे भगवानदास को गोद जाना लिखा है। इस प्रकार की उलझनो को सुलझाने के लिए शिलालेखो की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत शिलालेख इस उलझन को सरलता से सुलझाता है कि मानसिह के पिता का नाम भगवन्तदास था तथा चाचा का नाम भगवानदास था। वशावलियो के आधार पर भी भगवानदास 'वाकाराजा' जो लवाण के शासक थे, भगवानदास से छोटे थे। इनके अखैराम, हरराम, तथा चूडासिह नामक तीन पुत्र थे। भगवन्तदास के मानसिह, माधोसिंह, सूरसिह, भूपतसिह, आदि ९ पुत्र थे। ज्येष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण ही मानसिह को भगवानदास के पश्चात् आमेर का सिहासन व उत्तराधिकार मिला था। शिलालेख की नकल इस प्रकार है(इसमे सख्यावाचक चिन्ह पक्तियों के सूचक है)

१. स्वस्ति श्रीमन्नृपति विक्रमादित्य राज्यातीत संवत्१६६९ सालि-

२. वाहन सकातीत१५३४ फाल्गुन शुक्लपक्षे ५ रविवासरे श्रीमज्ज -

३. हांगीर साहिराज्ये वर्तमान श्री रघुवंश तिलक कछवाह-

४. कुलमंडन श्रीराजा पृथ्वीराज तत्पुत्र श्रीराजा भारहमल्ल तत्पुत्र श्री राजा

५. भगवन्तदास तत्पुत्र सकलनरेन्द्र चूडामणिप्रताप पराभूत-

६. समस्त शत्रुगण समस्त पृथ्वीविजयप्राप्त महायशोराशि विराजमान श्री महारा-

७. जाधिराज मानसिंह नरेन्द्रकारितं रामगढ प्राकाराख्यं दुर्गकूपारामोप-

८. शोभितं तत्र परमपवित्र श्री पद्माकर पुरोहित पुत्र श्री पुरोहित पीतां-

९. बरस्याधिकारे सिद्धम् ।। तत्र कार्जनिजुक्त शिल्पिन ।। एतद्दे-

१०. शीय निजामश्च ।। अन्ये च तन्मतानुसारिणः ।। इति ।।''

इसका आशय स्पष्ट है। भगवन्तदास के पुत्र म. मानसिंह ने सवत्१६६९ में रामगढ का किला, बाग एव कुआ बनवाया था, जो अपने पुरोहित पद्माकर के पुत्र पीताम्बर की देखरेख में रखा गया था। अकबर संवत्१६६२ में दिवंगत हो गया था और स. १६६९ में जहागीर का शासन था, जैसाकि शिलालेख से भी स्पष्ट है।

(२) आम्बेर के कछवाहा राजा मानसिंह की वृन्दावन में बने हुए श्री गोविन्ददेवजी के मन्दिर की प्रशस्ति एवं शिलालेख

जैसा कि जयपुर (आमेर) के इतिहास मे लिखा है- आमेर के राजा पृथ्वीराज प्रथम तो शैव थे तथा आमेर के प्रसिद्ध शिव मदिर अम्बिकेश्वर में बैठकर घण्टो योग करते थे। इनके गुरु का नाम चतुरनाथ था। इन्हीं पृथ्वीराज की पत्नी बालाबाई थीं, जो प्रसिद्ध विष्णुभक्त थी। इनके गुरु श्री कृष्णदासजी पयोहारी थे, जो हिन्दी साहित्य के एक प्रसिद्ध सन्त भी हुए है। एकबार श्री कृष्णदासजी पयोहारी एव बाबा चतुरनाथ में शास्त्रार्थ हुआ था और उसमें बाबा हार गए। तब से महाराज पृथ्वीराज स्वयं विष्णुभक्त हो गये थे। उनकी यह परम्परा निरन्तर चलती रही। आमेर के मार्ग में एक प्राचीन गोविन्ददेवजी का मदिर आज भी विद्यमान है, जो अब जीर्णशीर्ण अवस्था में है। आमेर के पश्चात् जब जयपुर नगर का निर्माण हुआ, तब भी सवाई जयसिंह ने अपने प्रसिद्ध चन्द्रमहल के पीछे भगवान् गोविन्ददेवजी का मन्दिर बनवाया, जो उनके इष्टदेव रहे हैं। आज तक भी गोविन्ददेवजी जयपुर घराने के पूज्य देव हैं।

जैसा कि निम्नलिखित प्रशस्ति एव शिलालेख से स्पष्ट है, म. मानसिंह ने वृन्दावन में जाकर गोविन्ददेवजी का मन्दिर बनवाया था। यह उनकी धर्मनिष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण है। प्रशस्ति के बगल में चौखण्डी के खभे पर हिन्दी का शिलालेख है, जो इस प्रकार है-

''सवत् ३४ श्री शुकबन्ध अकबरसाह राज्ये कूर्मकुल श्री पृथ्वीराजवशे महाराज श्री भगवन्तदास सुत श्री महाराजाधिराज श्री मानसिंहदेव श्री वृन्दावन जागे

पीठस्थान मन्दिर करायो श्री गोविन्ददेव कौ।''

मन्दिर की प्रशस्ति संस्कृत पद्यो मे है। पद्य सख्या में १० हैं। कई स्थानों पर अक्षर दुर्वाच्य हो रहे हैं तथा कुछ स्थलो पर वह शिलालेख नष्ट हो चुका है। फिर भी जितना सुवाच्य है, यहा प्रस्तुत है-

''श्री वृन्दावनविपिने शिवादि दिविसद्वृन्दावली-वंदिते
वैकुण्ठान्निरकुण्ठतारक वनश्री योगपीठे स्थितः ।।
श्री गोविन्दतया श्रुति स्मृति सती सन्दोह वृन्दाह्वय·
श्री कृष्णः स्वकृपा कृपालन.......ष्णक सदा भ्राजते ।।१ ।।
श्री मानर्कवरो यदा भुवमपात् संधीत दैवाधुना
सर्व सौख्य...........प्रजाजनगणः स्वं धर्ममुच्चैर्भजन् ।।
श्री गोविन्दपदं तदेत.......पिते वासाय सद् वैष्णवा-
लब्धं ....तस्मै सदैवाशिषः ।।२ ।।
तस्मिंस्तस्य सदान्वितक्षितिपतिः श्री मानसिंहाभिधः
पृथ्वीराज विराज..................ते स्ये(?)श्चन्द्रमाः ।।
भूभृद् भारहमल्ल जात भगवद्दासात्मजो मन्दिरं
कुर्वन् निन्दिरयावली दा(?) चलयानदं सदा विन्दताम् ।।३ ।।
.....................स्तथाविधं महाराजाधिराजोऽप्यसौ
ये तैवारिदिशंगतेन विजयीध्वस्तभ्रम· क्रीडति ।।
स श्री मानवसिंह..................................नवा
युद्धे यस्य निपत्य दिव्य -पितृपाः कीर्तिध्वजत्वं गताः ।।४ ।।
यः कच्छाधिपजातिरेष विजयी श्री मानसिंहो नृपः
......................सदा विजयतां.....दासःसुधीः ।।
श्री गोविन्दपदारविन्द.............स्तन्मन्दिरं समदात्
कुर्वन्तूत्तम पत्र-तूर्ण ....पू.................।।५ ।।
श्री गोविन्द पद ....
.... ।।
....
............................श्री मानसिंहाद्भुतम् ।।६ ।।

....

....

........भवदाविष्यदाखिल श्री वैष्णवानां सुखं
श्री कर्ता हरिणा सदा निजदया या .याविनि..॥७॥
.... .श्रीग्रसेन· कृती
तौ द्वौ श्रीयुतमानसिंह नृपतिप्रस्थापितौ नन्दताम्॥
किम्बागत द्रवनीय(?)................ ....
...............प्रतिपदं सौख्यंग्महं विन्दतु(?)॥८॥
मुनिवेदर्तुचन्द्राह्व सम्वत् मन्दिर-संभवे। (१६४७)
....॥९॥
कलि लुप्तातत ....तौ श्रीयुतवृन्दावनेशितु सेवाम्।
श्री मद्रूप सनातननामानौ तौ भजेत............ ॥१०॥

इस प्रशस्ति के नवें पद्य मे इस प्रशस्ति का समय लिखा हुआ है। मुनिवेदर्तुचन्द्राह्व का अर्थ है १६४७ सम्वत्। इस पद्य की दूसरी पक्ति उपलब्ध न होने से पद्य का अर्थ स्पष्ट नहीं है। यहा एक विचारणा उपस्थित होती है। शिलालेख मे जिसका अभी ऊपर उल्लेख दिया गया है तथा प्रशस्ति के पास (बगल)खुदा हुआ है, सवत् १६३४ दिया गया है तथा प्रशस्ति का समय स १६४७ आता है । यद्यपि दोनों संवत् म. मानसिंह के समय से मेल खाते है, परन्तु इनमे १३ वर्ष का अन्तर है। इस विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि शिलालेख ही मन्दिर के निर्माण के समय लगाया गया होगा और प्रशस्ति कालान्तर मे । इसका एक प्रमाण और भी है । वहीं वृन्दादेवी के मन्दिर मे भी म. मानसिह का ही शिलालेख मिलता है जो भी संवत् १६३४ का है । इसकी भाषा भी हिन्दी ही है, जिसका उल्लेख अब किया जा रहा है। इस प्रकार यह भ्रम निवारण किया जा सकता है।

एक बात और भी विचार करने की है। इस प्रशस्ति मे म. मानसिंह के पिता का नाम भगवत्दास दिया है। (पद्य सं.३) इससे यह स्पष्ट नही कहा जा सकता कि भगवानदास के लिए इस का प्रयोग है या भगवन्तदास के लिए । संभव है कि छन्द में भंग दोष के कारण प्रशस्ति लेखक ने ऐसा रूप प्रस्तुत किया हो।

दशम पद्य मे समागत दो नाम रूप तथा सनातन -चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य एव श्री गोविन्ददेवजी के पुजारी व परमभक्त श्री रूपगोस्वामी एव सनातन गोस्वामी के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

(३) वृन्दावन स्थित वृन्दादेवी के मन्दिर पर कछवाहा मानसिंह का हिन्दी भाषात्मक शिलालेख

जैसा कि अभी बताया गया है , यह भी संवत् ३४ (१६३४) का शिलालेख है। यह म. मानसिह द्वारा सस्थापित श्री गोविन्ददेवजी के मन्दिर के बाईं और विद्यमान श्री वृन्दादेवी के मन्दिर के बाहर परिक्रमा में लगा हुआ है। यह लेख इस प्रकार है-

"संवत् ३४ श्री शकबन्ध अकबर महाराज श्री कूर्मकुल श्री पृथ्वीराजाधिवंश महाराज श्री भगवन्तदास सुत श्री महाराजाधिराज श्री मानसिंह देव श्री वृन्दावन जोगपीठ स्थान मन्दिर करायो श्री गोविन्ददेव को । काम ऊपरी श्री कल्याणदास आज्ञाकारी माणकचन्द चोपाड शिल्पकारी श्री गोविन्ददास दीलवल (देवल?) कारि। गुफ छः गोरखदास। सुबं (?) भवतु (शुभं भवतु)"

इसे देखने से सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। इसमे म. मानसिह के पिता का नाम भगवन्तदास ही लिखा है। स.३४ से तात्पर्य १६३४ स. से ही है, क्योंकि यही समय म. मानसिह का इतिहास -सम्मत है।

(४) रोहतासगढ पर लगा म. मानसिंह का शिलालेख

यह शिलालेख सं.१६५४ का है। यह संस्कृत भाषा में लिखा गया है। यह रोहतासगढ के भीतरी द्वार पर लगा हुआ है। इसकी भाषा पर्याप्त अशुद्ध है। इसमें म. मानसिह का पूर्ण विवरण नहीं दिया गया है। केवल समय साम्य के अनुसार ही यह प्रतीत होता है कि यह शिलालेख भी उन्ही के समय का होगा।

मूललेख की प्रति इस प्रकार है-

"॥श्री गणेशाय नम (म.)
अंभोधीसुरसेन्दुभि:परिमिते पुण्याहने हायने
चैत्रे मासि वलक्ष पक्षवलिते षष्ठी तिथौ शीतगोः।

वारे सर्वगिरीन्द्रवंशतिलके श्री रोहिताश्वाचले
श्रीमन्मानमहीन्द्र सदनोद्वारं व्यगात् पूर्णताम् ॥१॥

श्री महाराजाधिराज श्री मानसिं (ह) पुरोहित श्री धराधिकारेभ(म) दबलभट्टेन कारितं समभरष (ख)।''

इस शिलालेख में जो **समरष** शब्द आया है, उसका अर्थ डा. राजेन्द्रलाल मित्र के अनुसार स्मरण करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। वास्तव मे यह स्मरण रखने का ही अपभ्रश रूप है।

उपर्युक्त चारों शिलालेख स्व. श्री विद्याभूषण हरिनारायण पुरोहित के संग्रहालय में उपलब्ध हैं, जो राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान ,जोधपुर की शाखा जयपुर में विद्यमान है। इन्हें यहां पाठकों के परिज्ञानार्थ प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त भी म. मानसिंह के कई शिलालेख व प्रशस्तियां होंगी, जो विभिन्न स्थानों पर होंगी। यहा पर उपलब्ध शिलालेखों का विवेचन किया गया है।

'शोध-प्रत्रिका'- उदयपुर वर्ष १६ अंक-३-४ जुलाई-अक्टूबर, १९६५ ई.

***

'जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन-'

श्री दलपतिराय और उनकी रचनायें

'आमेर'-या 'अम्बानगर' के शासक-महाराजाधिराज मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम का नाम कछवाहवशीय शासको के इतिहास मे प्रसिद्ध है। यह नगर राजस्थान की वर्तमान राजधानी 'जयपुर' से ६ मील उत्तर में जयपुर-दिल्ली सडक पर स्थित एक प्राचीन रमणीक एव ऐतिहासिक स्थान है। **मिर्जाराजा रामसिंह** सस्कृत भाषा के अत्यन्त प्रेमी थे और आपकी सभा मे संस्कृत भाषा के कतिपय विद्वान् सम्मानित थे। सम्मानित विद्वानों मे एक श्री दलपतिराम या श्री दलपतिराय भी थे।

श्री दलपतिराय का परिचय उपलब्ध नहीं होता। केवलमात्र यह कहा जा सकता है कि इनका मुगलकालीन शासकों से अच्छा परिचय था। उनकी रचनाओ के देखने से यह पता चलता है कि ये पहले बादशाह के पास रहे थे और तदनन्तर आमेर के शासक मिर्जाराजा रामसिंह के पास चले आये थे।

राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के हस्तलिखित पुस्तक सग्रहालयाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण जी गोस्वामी को एक गुटका प्राप्त हुआ था, जिसमे प्राचीन अनेकों ग्रन्थ लिखे हुए थे। उसमे श्री दलपतिराय के नाम से २ रचनाएँ उपलब्ध होती है। (१) चकत्ता पातशाही की परम्परा और (२) राजरीति-निरूपणम्। कवि ने

अपना वर्णन करते हुए उसमें अपने आश्रयदाता महाराज रामसिंह का यशोवर्णन एव उनके आश्रय की प्रशसा की है। प्रारम्भ में प्रास्ताविक परिचय उपस्थित करते हुए लिखा है कि लेखक ने यह विषय बादशाह अहमदशाह के उस्ताद महफूज खा नामक व्यक्ति की व्यक्तिगत पुस्तके पढकर इस **'चकत्ता पातशाही की परम्परा'** नामक रचना का प्रणयन किया है। इसमें बादशाहो के नित्यनैमित्तिक दिनकृत्य, अदब की रीति, वैभव, प्रताप, मनसब, जागीर आदि का विस्तृत विवेचन है। यह पुस्तक उर्दूमिश्रित हिन्दी भाषा में है। उक्त गुटके मे उपर्युक्त ग्रन्थो के २३ पृष्ठ है।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में कुछ सामान्य विवेचन है-'विनय विधिवाही विनेता के लायक है। जाकी चटसाल मे विनय है, भक्ति, मेव (१)अरु दीनता परमसेव। जाणी मनुष्य कौ च्यारिकों उपकार दुप्रतिकार है। १ प्रभु, २ माता-पिता, ३ गुरु, और ४ खाविंद ।। प्रथम प्रभु जानै नरदेह दई सुरदेह तें पुनीत । दूसरे मातापिता जिन सुतहित सह्यौ घाम सीत। तीसरी गुरु , जो नरतन मे नर गु (ण) न दावै। चौथो खाविंद जो अन्न बलते नित प्राण हि राखै। तीननि कौ प्रतिकार न बणै बिना स्वामि के उपकार। जो पै सब ही नित्त नैमित्तिक देह के अधीर अरु देह अन्न के अन्न स्वामि के।

ग्रन्थ लेखन की भूमिका लिखते हुए श्री दलपति लिखते हैं -'अथ। विबुधन की शिलोञ्छ वृत्ति वारौ मैं एक दिन महफूजषां (खां) नाम अहमदशाह को उस्ताद जो मोहे पै कृपा राखत हौ, ताकी बैठक के ताक में दोय यावनी किताबधरी हती। १.अदाबस्सहलतीन २.मिफ्ताहुज्जबाबित। ए दुइं पातिसाही किताब खाना तें आई हती। प्रतिबन्ध हतौ, जो इतर जन ताहिं न बांचै। तामें पातिसाहन के नित्य नैमित्तिक दिन कृत्य, अदब की रीति, वैभव, प्रताप, मनसब, जागीर मरानिब को ब्यौरा इत्यादिक अनेक प्रबन्ध हते। किताब को दल विशेष हतो।

एक दिनां खान के दिवानखाना के ताक तै किताब मैं लई बांचनि लग्यो। तै ही ओसर (अवसर) खान आयो। मोहि बांचिवै को निषेध कियो। मोहि तो तहाँ तै यादि रही और यावन गीर्वाण ग्रंथन तै जो जानिवै में आई सो या संक्षिप्त प्रबन्ध में लिखी है। जो पै स़ीहखे तिन्हें काम आवै, चतुरनि की सभा में आदर बढावैं। या प्रबन्ध को नाम व (द)दुल आदाब धरयौ- ताको

अर्थ है- 'विनय विधु' वाकै चौदह उदय- अधिकार इत्यर्थः इत्यादि'। तास नाम पारसी मैं तल अत्-अधिकार.......। इत्यादि।

उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यवनबादशाह अहमदशाह के पुस्तकालय की २ गोपनीय पुस्तकों के किंचित् अध्ययन से सामग्री प्राप्त कर लेखक ने इन ग्रन्थो का निर्माण किया है। इसके पश्चात् १३ उर्दू फारसी के पारिभाषिक शब्दों का अर्थ प्रस्तुत किया है। जैसे- १. सिजदा कौ = दण्डवत् ।२. तवाफकौ = परिजुम्म। ३. सलाम को= कुशलपृच्छा। तसलीम कौ = सौपिबो। ४. कियाम कौ-ठाडो रहिबौ। ६. कऊद कौ = बैठिबौ । ७. तहरीम कौ = शिष्टाचार-इत्यादि ।

'**चकत्ता पातशाही की परम्परा**' नामक ग्रन्थ प्रथम पृष्ठ से प्रारम्भ किया जाकर पन्द्रहवें पृष्ठ तक लिखा गया है। यह अपूर्ण है, इसकी भाषा पूर्व प्रदर्शित उद्धरण के समान है। अक्षरों की दुर्वाच्यता एवं लिपि के प्राचीन होने से उसका यथावत् प्रस्तुतीकरण कठिन है।

इसके पश्चात् सोलहवें पृष्ठ से २३ वे पृष्ठ तक '**राज-रीति निरूपणम्**' नामक ग्रन्थ है। इसमे लेखक की विद्वत्ता का आभास अत्यन्त शीघ्ररूप में हो जाता है।

सर्वप्रथम -'अहल खिदमत के नाम' शीर्षक के अन्तर्गत -संस्कृत के शब्दों का प्रचलित उर्दू मिश्रित भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के पर्यायवाची रूप में उल्लेख है। यथा-

प्रतिनिधि-	वकील ,मुतलक, नायब, मुसाहिब।
अमात्य-	वजीर, दीवान, प्रधान।
सेनापति-	बखसी ।
शालापति-	मीरसामान, खानसामा।
सुलेखक-	मुन्शी ।
महत्तर-	नाजिर।
अनलाध्यक्ष-	मीर आतश,तोपखाना का दरोगा।
वास्तुक-	मीर इमारत।
नगर गौप्तिक-	कोटवाल।
धर्माध्यक्ष-	काजी।
गणनायक-	रिसालेदार-इत्यादि ।

इसके पश्चात् कारखानों के नाम दिए गए है। इनकी सख्या ३६ बतलाई गई है। इससे पता चलता है कि उस समय ३६ कारखाने होते थे। इनका शब्दकोश की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है। कुछ कारखानों के नाम दर्शनीय हैं -

१.	**शय्यागार**	-	सुखसेज खाना।
२.	**मज्जनागार**	-	गुसल्ल खाना, हम्माम।
३.	**देवायतन**	-	तसबीह खाना।
४.	**भैषज्यागार**	-	दवाई खाना।
५.	**फलागार**	-	मेवा खाना।
६.	**महानस**	-	बाबर्ची खाना, रसौडा।
७.	**सुगंधागार**	-	खुशबोई खाना।
८.	**प्रहरणागार**	-	कोरखाना, सिलह खाना।
९.	**संस्तरागार**	-	फराश खाना।
१०.	**श्रीगृह**	-	खजाना ।
११.	**मंदुरा**	-	अस्तबल, तबेला इत्यादि।

उपर्युक्त इन सभी का सस्कृत पद्यों मे विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसी रचना का नाम **'राजरीति निरूपण'** है। उदाहरण के लिए- 'अव्वल-खिदमत ' के नामों में प्रतिनिधि का उल्लेख किया गया है। वे लिखते हैं-

'वकील-मुतलक-नायब-मुसाहिब-

'आज्ञा भवेद्यदायत्ता हस्तलेखश्च भूपतेः।
जानीहि तं प्रतिनिधिं राज्य- सर्वस्वधूर्वहम् ।।३।।'

वजीर-प्रधान-दीवान-

'आयद्वाराधिकारः स्युर्यदायत्ताः महीभुजः।
अमात्यं मन्त्रिणं विद्धि प्रधानं सचिवं हि तत् ।। ४ ।।'

मुन्शी-

'पत्राणि प्रति-पत्राणि लिखेद्यो हि नृपाज्ञया।
सुलेखकं विजानीयाद् राजमन्त्र-निकेतनम् ॥ ८ ॥'

नाजिर-

'योऽवरोधस्य कृत्यानि गुप्त्यादीनि विचेष्टते।
महत्तरं विजानीयात् तं प्रतीतं जितेन्द्रियम् ॥ ११ ॥'

काजी-

'आचार-व्यवहारेषु प्रायश्चित्तेषु योजनात्।
प्रवर्त्तये न्मान्यतमो धर्माध्यक्षः प्रकीर्तितः ॥ २५ ॥

इत्यादि।'

'अहल खिदमत' के नामों की परिभाषा देकर शाला-भेद निर्दिष्ट किए हैं। जैसे-

सुखसेज खाना -

'मञ्चाः संस्तरणाद्यं च यत्र तत्परिचारकाः।
शय्यागारं विनिर्दिष्टं राजरीतिविशारदैः ॥३५॥'

गुसल्लखाना-

'अभ्याङ्गनोद्वर्तनानि सचरोपस्करं जलम्।
यत्र तन्मज्जनगृहं राजरीतिज्ञ-भाषया ॥३६॥'

इत्यादि।

इनके वर्णन करने के पश्चात्- देश विभाग तथा उसके अधिपों की परिभाषाएँ प्रस्तुत की है। जिनमें सूबा, सिरकार, प्रगणा (परगना) मौजे, बंदर, दयार, मजमूएदार, का उल्लेख है।

सूबा-

'समुद्र-गिरिपर्यन्तं चक्रं चक्री तदीश्वरः।
महांस्तस्य विभागः स्याद् राष्ट्रं जनपदं च तत् ॥ ८१ ॥'

दयार-

'शिल्पिनः कर्मकाराश्च व्यापारे व्यवहारिण.।
चतुरंगबलो राजा यत्र तद्रंगमुच्यते ।।९०।।
चक्री चक्राधिपः सम्राट् राष्ट्रपालः प्रकीर्तितः।
मण्डलेशो महाराजः सामन्तो विषयाधिपः ।।९१।।
ग्रामाणि कतिचिद्यस्य वशेऽसौ भौमिकः स्मृत·।
ग्रामणीर्ग्राममुख्यं (चौधरी) स्याद्रीतिज्ञो देशपंडित·।।
(कानूनगो) ।।९२।।'

मजमूएदार-

'राजवेतनदानांशान् ग्रामार्त्तिं दशवार्षिकीम्।
लिखित्वा धारयेद्यस्तु लेखसंग्राहको मतः ।।९३।।'

इसके पश्चात् परगनों के अधिकारियो की परिभाषाये है, जिनमें अमीन, करोडी, कोतलकरोडी, पोतेदार, खजाची, बकायै, निगार, या खुबुफिये नवीस, तहवीलदार, कोटवाल, फोजदार आदि का वर्णन है।

'पोतेदार'-

का वर्णन करते हुए लिखा है-

**'राजद्रव्यं प्रजादत्तमाददीत परीक्ष्य यः।
धनिको निक्षिपेत् पश्चात् कथितः प्राप्तधारकः ।।९७।।'**

अन्त में उपसंहाररूप में लिखा है-

**'इत्यादयोऽधिकाराः स्युः प्रायशश्चक्रवर्तिनाम्।
सम्पतेरनुसारेण त्वन्येषां विद्धि भूभुजाम्।। १०५।।
एषा पद्धतिराख्याता राजरीति-बुभुत्सया।
गभीराद्राज-सेवाब्धेः द्रोणपाकाच्च सिक्थवत् ।। १०६।।'**

इति यवन-पाठ्यनुकृत्या राजरीति-निरूपणं नाम शतकं विरचितं

दलपतिरायेण ।। समाप्त ।। शुभ भवतु ।।

ग्रन्थ के प्रारम्भ करते समय लेखक ने स्पष्ट रूप में बतलाया है कि इस ग्रन्थ का निर्माण रूढि, कोश, स्वानुभव, आदि के आधार पर किया गया है। यह एक प्रकार से यवन-कालीन प्रमुख पारिभाषिक शब्दो का सस्कृत कोश है। इसके द्वारा हम तत्कालीन शब्दों एव आवश्यक व्यवहारों का ज्ञान कर सकते है। यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है तथा प्रकाशन योग्य है।

'अनेकान्त' (द्वैमासिक शोध पत्रिका)
अगस्त-१९६४ (पृ.१३५-१३८)
समन्तभद्राश्रम (वीर सेवामन्दिर) का मुखपत्र २७, दरियागज-९ वर्ष १७ किरण ३ से।

***

‘जयपुर’ की संस्कृत-साहित्य को देन-
‘श्री पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण’

फर्जन्दे दौलत-मिर्जाराजा मानसिह (प्रथम) का नाम न केवल‘आमेर’ या ‘जयपुर’ के इतिहास मे ही प्रसिद्ध है, अपितु भारतवर्ष के अथवा ससार के इतिहास में बडे गौरव के साथ लिया जाता है। आप यवन सम्राट् श्री जलालुद्दीन खान ‘अकबर’ के प्रधान सेनापति एव दक्षिण-हस्त थे। वास्तव मे यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाए तो अकबर की विस्तृत ख्याति के मूल आधार आप ही थे। आपकी वीरता की धाक भारत की सभी दिशाओं में व्याप्त थी।

मिर्जाराजा मानसिह के एक भाई और भी थे, जिनका नाम ‘माधवसिह’ था। ये वीरयोद्धा भी थे, परन्तु, मानसिह के इतस्तत युद्धों मे व्यस्त रहने के कारण ये प्राय अपनी राजधानी ‘आमेर’ (वर्तमान राजस्थान की राजधानी जयपुर ’ से ६ मील उत्तर मे स्थित एक लघु नगर) में ही रहते थे तथा वहाॅ की रक्षा के अतिरिक्त अन्यान्य शासकीय कार्य सम्पन्न किया करते थे। आपका नाम इतिहास में बहुत प्रसिद्ध नहीं है और आपकी वास्तविक ख्याति श्रीमानसिह सरीखे ‘सूर्य’ की ज्योति में ‘अमावस्या’ के चन्द्र के समान साथ रहने पर उसी में अन्त प्रविष्ट हो गई है। यो श्री मानसिंह का दरबार न केवल योद्धाओं का ही आश्रय स्थान था, वहा सभी विषयो के कलाकार रहा करते थे और इसका पूर्ण श्रेय कलाप्रेमी विद्वान् श्री माधवसिह (प्रथम) को है। इनकी रसिकता एव इनके विद्या प्रेम ने भारत के प्रसिद्ध एव प्रकाण्ड विद्वानों को सम्मान प्रदान किया था। इन सम्मानित एव सुप्रतिष्ठित विद्वानों मे **श्री पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण** का नाम चिरस्मरणीय है। यहाॅ इनके विषय मे कुछ सूचनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

संगीताचार्य श्री पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण कर्णाटक ब्राह्मण थे। आप 'खान-देश' प्रान्त मे 'सतनुर्व' नामक ग्राम के निवासी थे। इनका गोत्र 'जामदग्न्य' था। सर्वप्रथम ये दक्षिण भारत मे विद्यमान -'पारुकिवश' जिसे इतिहास'फरत वंश' बतलाता है, के बादशा॰ (राजा) 'अहमदखान' के वशज 'बुरहानखान' के राज्याश्रय मे रहे थे। 'दी हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर' के लेखक श्री एम. कृष्णमाचारीयर 'सगीत शास्त्र का इतिहास प्रस्तुत करते हुए (१०२८ क्रमाक, पृष्ठ ८६५) पुण्डरीक विट्ठल के विषय मे सक्षिप्त उल्लेख करते हैं। इसके 'फुटनोट' मे लिखते है कि-'फरत वश' की सत्ता खानदेश के 'आनन्दवल्ली' नामक ग्राम मे १३७०-१६०० ई. के मध्य मानी जाती है। (This dynasty ruled at Anandwalli in Khandesh in 1370-1600 A D)

स्व. प. श्री नन्दकिशोर शर्मा नामावल, जयपुर निवासी ने 'नृसिह प्रसाद' नामक धर्मशास्त्रीय रचना के प्रायश्चित्तसार' भाग के प्रकाशन के साथ लिखे विद्वत्ता पूर्ण लेख मे उपर्युक्त अहमदशाह के वश का कुछ उल्लेख प्रस्तुत किया है। उन्होंने बतलाया है कि निजामशाही राजवश का प्रतिष्ठापक, बहमनी नामक यवन राज्यवश के मन्त्री बेहरी निजाम उल्मुक का ज्येष्ठ पुत्र और विजयनगर स्थित 'बहमनी' राजवश में उत्पन्न अहमदशाह निजामशाह हुआ था। 'निजामशाह' इनका गोत्र माना गया है और इसीलिए इस शब्द का प्रयोग सभी राजाओ के साथ होता रहा है। 'निजामशाह' इस निजामशाही राज-परम्परा मे - (१) निजाम उल्मुक (बहमनी राजवश मन्त्री)। (२) अहमदशाह निजामशाह(निजामशाही राज्य का प्रतिष्ठापक १४९०-१५०८) (३) बुरहान निजाम (१५०८-१५५३) (४) हुशेन निजाम (१५५३-१५६५) (५) सलावत खा (१५६५-१५८९) (६) बुरहान निजाम द्वितीय (१५८९-१५९४) इन ६ राजाओं के नाम प्रसिद्ध हैं। इनमें अन्तिम राजा मुगल वंश के अधीन हो गया था। उस समय हिन्दुस्तान का बादशाह 'अकबर' था। जैसा कि हम अभी बता चुके है, मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम अकबर के प्रधान सेनापति थे और उन्हीं के समय हमारे चरितनायक श्री पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण निजाम वशीय अन्तिम स्वाधीन राजा बुरहान खान द्वितीय के सभासद एवं सम्मानित सगीतज्ञ थे। इस विषय में एक प्रमाण प्रस्तुत करते है। श्री पुण्डरीक विट्ठल अपनी 'राग-चन्द्रोदय' नामक रचना के प्रारम्भ में आश्रयदाता का वर्णन करते हैं -

'वंशः पारुकिभूपतेः सुसरलो भूभारधारक्षमः,
श्रीमत् सद्गुणि-दानि-शूर-विमल-क्ष्मापालशाखाभिभृत्।

विख्यातो भुवि यत्र काव्यरसिकाः सत्कीर्तिवल्ली-श्रिता,
चित्रं संचरतीति विश्वमखिलं के वर्णयन्तीह तत् ॥'

तदनन्तर'अहमदखान' शासक का वर्णन करते हुए अपने आश्रयदाता का वर्णन कर रहे हैं-

'श्रीमद् दक्षिणदिङ्मुखस्य तिलके श्री खानदेशे शुभे,
नित्यं भोगवतीव भोगिवसती रम्या सुपर्वादिभिः।
अस्ति स्वस्तिकरी नरेन्द्रनगरी त्वानन्दवल्लीति या,
तत्र श्री बुरहानखान-नृपतिर्वासं करोति ध्रुवम् ॥'
तत्र श्री करणप्रयोग-चतुरैः सल्लक्ष्मलक्ष्यान्वितैः,
देशीमार्गविवेकगायकवरैः साहित्य-संकोविदैः ॥
नानावाद्यविधाननर्तनविधिप्राज्ञैः रसज्ञैः समं,
रंगे श्री बुरहानखान-नृपतिः संगीतमाकर्णयत् ॥' इत्यादि

यह **'रागचन्द्रोदय'** नामक रचना अनूप सस्कृत पुस्तकालय, लालगढ पैलेस, बीकानेर मे सगीत विषयक पुस्तकों में ३४२४ क्रमाक पर उपलब्ध है। यह २८ पत्रात्मक रचना है। प्रारम्भिक पद्यों मे अपने आश्रयदाता का उल्लेख करने के पश्चात् ग्रन्थ समाप्ति पर वे स्वय का परिचय प्रस्तुत करते हैं-

'कर्णाटेशोवतांगाभिधनगनिकटे सा तनूवद् वियो यो,
ग्रामस्तत्राग्रजन्मप्रवरनिकरराट् जामदग्न्योऽस्ति वंशः।
तत्र श्री विट्ठलार्यो भवदमितयशा सद्गुणाख्यायुतस्य,
तत्सूनो 'रामचन्द्रोदय' इति मतिमत्वैरवाणां मुदेसु ॥'

'इति श्री कर्णाटजातीय पुण्डरीकविट्ठल-विरचिते रागचन्द्रोदय आलप्तिप्रसादस्तृतीयः।' इससे स्पष्टतः कहा जा सकता है कि इनके पिता का नाम 'विट्ठल' था और इनका नाम 'पुण्डरीक' । ये कुछ समय तक बुरहान खान के अधीन रह कर, उसके राज्य के अकबर के अधीन होने पर कुछ समय के लिए बादशाह अकबर की सभा में चले गये थे। वहाँ इन्होने **'रागनारायण'** नामक ग्रन्थ की रचना की थी। श्री एम. कृष्णमाचारियर लिखते हैं -

"After Khandesh was annexed by Akabar about 1599 A D He went to his Court at Delhı & there wrote Raganarayan at the instance of chief Madhavasinha" (Page 865 Hıstory)

यहाँ से ये 'आमेर' ही गये थे। मिर्जाराजा मानसिह ने इनकी सगीतकला मे प्रवीणता देखकर बादशाह से इन्हे अपने दरबार के लिए माग लिया था और इस प्रकार ये माधवसिह के आधीन भी रहे। यहाँ इन्होने **'रागमाला'** नामक पुस्तक की रचना की जिसकी प्रति तजोर पुस्तकालय १६-७२४२,७२४५ तथा अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में क्रमाक ५७५ (सगीत) पर उपलब्ध है। यह बम्बई से प्रकाशित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त **'राग-मंजरी'** नामक रचना की पाण्डुलिपि देखने से यह विषय स्पष्ट हो जाता है। यह भी माधवसिह (प्रथम) के आश्रय मे लिखी गई रचना है। इसके प्रारम्भ में लेखक अपने आश्रयदाता का उल्लेख करता है-

'श्रीमत्कच्छपवंशदीपकमहाराजाधिराजेश्वरः,
तेजः पुञ्जमहाप्रतापनिकरो भानुः क्षितौ राजते।
तस्यासीद् भगवन्तदासतनयो वीराधिवीरेश्वरः,
क्षोणीमंडलमंडनो विजयते भूमंडलाखण्डलः ॥'

इसके पश्चात् कुछ पद्यों में इस वश का वर्णन कर अपने आश्रयदाता का उल्लेख करते हैं-

'तस्य द्वौ तनयौ सुशीलविनयौ शूरौ महाधार्मिकौ,
जातौ पंक्तिरथात्मजौ त्वकबरक्षोणीपतेः द्वौ भुजौ।
सिंहौ माधवमानपूर्वपदकौ संग्रामदक्षावुभौ,
तेनत्यागसह-सहस्रकलितौ श्रीसर्वभूमीश्वरौ ॥'
'अकबरनृपधर्मा राज्यतश्चातिधर्मा,
धरणिगगनमध्ये जंगमो मध्यमेकः।
सकलनृपतिताराश्चन्द्रसूर्याविमौ द्वौ,
जगति जयनशीलौ माधवामानसिंहौ ॥३॥
तत्र माधवसिंहोऽयं राजा परम - वैष्णवः।
सर्वदा विष्णुभक्त्यर्थमाद्यारम्भं करोति हि ॥४॥'

इस प्रकार वंश परिचय प्रस्तुत करते हुए पुण्डरीक कवि ने 'रागमञ्जरी' का उपक्रम वर्णित किया है। उसने लिखा है कि एक दिन महाराज माधवसिंह सभा में बैठे थे। राजा ने अपनी सभा की प्रशंसा की। सभा में बतलाया कि यहाँ सभी विषयों के विद्वान् विद्यमान हैं, परन्तु सगीत शास्त्री नहीं है। इस पर पुण्डरीक ने 'रागमञ्जरी' का निर्माण किया। देखिए-

'सभा-

ब्रह्माविष्णुमहेश्वरः परिचिता संपूर्णविद्या सभा,
श्रीमन्माधवसिंहराजरुचिरा शृंगारहारा सभा।।
अगणितगणकविचिकित्सक-वेदान्त-न्याय-शब्दशास्त्रज्ञाः।
दृश्यन्ते बहवः संगीती नात्र दृश्येतेप्येकः।।
इत्युक्ते माधवसिंहे विट्ठलेन (?) द्विजन्मना।
नत्वा गणेश्वरं देवं रच्यते रागमंजरी ।।'

यहाँ एक सन्देह उपस्थित होता है- 'रागमंजरी' का लेखक पुण्डरीक है या विट्ठल? क्योंकि पुण्डरीक का ही माधवसिंह की सभा में होना माना गया है। परन्तु उपर्युक्त पद्यो में लेखक का नाम 'विट्ठल' मिलता है। इसकी पुष्टि ग्रन्थान्त की पुष्पिका द्वारा भी होती है। दूसरा पद्य है-

'देमकजननी निजसुत 'विट्ठलकृत रागमञ्जरी केयम्।
सुन्दरशक्तिविचित्र-वाग्देवी श्रवणमंडना भवतु।।२।।
संगीतार्णवमन्दिरप्रतिदिनं साहित्यपद्माकर-
प्रोद्भूतप्रबलप्रबोधजनको भासां निधिःसाम्प्रतम्।
विद्यावाद - विनोद - नामतितरामग्रेसरः - कोविदो
सोयं माधवसिंह-राजतिलको जीयाच्चिरं भूतले ।।३।।'

इससे स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह रचना पुत्र पुण्डरीक की नहीं है, अपितु पिता 'विट्ठल' की है, परन्तु समाप्ति पर उल्लिखित पक्ति पुन संदेहान्वित करती है-

'इति श्री कर्णाटकजातीय पुण्डरीक विट्ठलकृत 'राग-मञ्जरी' समाप्तेति शुभ भवतु।'

विचार-विनिमय के उपरान्त यही कहा जा सकता है कि यह रचना 'विट्ठल' की है। यह संभव है कि पुत्र के साथ पिता भी राज्य सम्मानित रहे हो। ग्रन्थान्त की पंक्ति को लिपिकार को भ्रान्ति भी मान सकते हैं, परन्तु ग्रंथ में उल्लिखित दोनो स्थानो के उपर्युक्त संकेतों को अशुद्ध नहीं मान सकते । इस विषय में अन्यान्य प्रमाण भी शोध्य हैं।

श्री पुण्डरीक विट्ठल की अन्यान्य संगीतशास्त्री रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं,

परन्तु उसके आदि या अन्त मे किसी भी प्रकार की पुष्पिका उपलब्ध नहीं होती है। अत उनका समय एव आश्रयदाता का उल्लेख प्रामाणिक रूप में संभव नहीं। वे रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

१. **'नर्तन-निर्णय'**- अनूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, क्रमाक ३४०७ पत्र - ४३ (पूर्ण)

२. **'दूती प्रकाश'**- (कामशास्त्र) अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, क्रमांक ३८०२ (पूर्ण)।

श्री एम. कृष्णमाचारियर ने इनकी रचनाओं का उल्लेख करते हुए लिखा है- ये उत्तरभारतीय सगीत के विद्वान् थे। १. रागमाला, २. नर्तन-निर्णय, ३.रागमञ्जरी, एव ४. सद्रागचन्द्रोदय के लेखक थे। इनकी ५ वीं रचना 'रागनारायण' दिल्ली में तैयार हुई है। दक्षिणी एव उत्तरी सगीत का साधिकार समालोचनात्मक भेद इनकी रचनाओ का विषय है। उनकी दृष्टि में 'सगीतवृत्तरत्नाकर' के लेखक विट्ठल एव पुण्डरीक एक ही व्यक्ति हैं। इसके विवेचन में उन्हे सदेह है- और वे इसका पूर्ण निर्णय नही कर सके है।

इससे पूर्ण शका का समाधान हो जाता है कि 'विट्ठल' भी सगीत शास्त्री थे और ऐसा लगता है कि इनका पूरा वंश ही इस कला मे निष्णात रहा होगा। वशानुक्रम से यह विद्या 'पुण्डरीक ' को भी प्राप्त हुई होगी। अत 'राग-मञ्जरी' का लेखक भी 'विट्ठल' को ही मान लिया जाय तो किसी प्रकार का सदेह नहीं रहेगा। यह सभव है कि 'विट्ठल' को इस ग्रथ के निर्माण में 'पुण्डरीक' का भी योग रहा हो।

इस प्रकार हम महाराज माधवसिह प्रथम के सगीत शास्त्रीय प्रेम का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं।

(**'अनेकान्त'** द्वैमासिक शोध पत्र जून-१९९५, वर्ष १८ किरण-२ वीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागज, दिल्ली-६ पृ.-८७-९० तक)

***

जयपुर के ऐतिहासिक संस्कृत महाकाव्यों की दृष्टि में

'महाराज भगवन्तदास एवं भगवान दास'

(आमेर के राजा भारमल्ल के पुत्र भगवन्तदास और भगवानदास शोधविद्वानो के मध्य विवाद का विषय बने हुए हैं। राजा मानसिह किसके पुत्र थे? इस सम्बन्ध मे हाल ही मे प्रकाशित डॉ. आर एन. प्रसाद कृत पुस्तक (ठरक्षर चर्रा डळसिह षि आलशी) मे फारसी और राजस्थानी स्रोतो के आधार पर विस्तृत विवेचना की गई है। इसी विषय पर सस्कृत ग्रथो के आधार पर डॉ प्रभाकर शास्त्री का यह विवेचनात्मक निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। - सम्पादक)

कछवाहो का शासन राजस्थान मे १०६७ ई [१] से माना जाता है । सर्वप्रथम राजा वज्रदामन् के सातवें वशज ईशासिह के पुत्र महाराज सोढदेव ने ढूढार मे प्रवेश किया था तथा दौसा, खोह, माची आदि स्थानो को जीतकर शासन प्रारम्भ किया था। इनके पौत्र 'काकिल' ने आमेर को राजधानी बनाया, जो सवाई जयसिंह द्वितीय (१६९९-१७४३ ई.) तक अपरिवर्तित थी। स जयसिंह ने जयपुर की स्थापना की, जो आज वर्तमान राजस्थान की राजधानी है।

महाराज सोढदेव के २१ वे वंशज थे 'भारमल्ल'। इनके पिता का नाम

१ जयपुर राज्य के पुराभिलेखागार मे प्राप्त वशावली के आधार पर डॉ राजीवनयन प्रसाद ने राजा सोढदेव का २७ दिसम्बर,९६६ ई मे सिहासनारूढ होना तथा १५ दिसम्बर,१००६ को दिवगत होना बताया है (Raja Man Singh of Amber,P १) **संपादक**

पृथ्वीराज था। इनके ९ रानियां तथा १९ पुत्र थे। लिखा है-

"पृथ्वीराजोऽथ राजा सन्नुदुह्य वनिता नव।
एकोनविंशति पुत्रान् दुराप श्रीरवाप्तवान्॥"

(कच्छवंश६/१५)"

पृथ्वीराज के पश्चात् आमेर की गद्दी पर विवाद हुआ और कहा जाता है कि पूर्णमल्ल को भीम ने मार डाला, जो उसका सहोदर था। भीम को उसके पुत्र रत्नसिंह ने तथा रत्नसिह को उसके पुत्र आशाकरण ने मार दिया । आशाकरण १५ दिन राज्य कर सका कि पृथ्वीराज के पुत्र भारमल्ल ने उससे राज्य छीन लिया । लिखा है-

"स्थित्वाशाकरणनृप. पदे जुगोप क्ष्मां पक्षावधि बत रत्नेशस्तनूजः।
निष्कास्य द्रुतमथ यं प्रसह्य पृथ्वीराजस्य क्षितिपतिरास भारमल्लः॥"

(कच्छ.६/७३)

श्री भारमल्ल ने आषाढ कृष्णा वि स १६०४ई सन्१५४६ मे शासन प्रारम्भ किया। इनके दो पुत्र थे १ भगवन्तदास और २ भगवानदास । इन दोनो के नामो मे समानता होने से इतिहास मे कई उलझने हो गयी है। कुछ इतिहासकार इन्हे अभिन्न मानते है।[1] कुछ इतिहासकार भगवानदास को भारमल्ल का ज्येष्ठ पुत्र मानते हैं तथा

'मआसिरुल् उमरा' (मुगल दरबार के हिन्दू सरदार) जो अब्दुलरज्जाक द्वारा लिखा गया है, तथा जिनकी पदवी नवाब शाहनवाज खा समसामुद्दौला थी। इसके कुछ भाग का प्रकाशन अनुवाद व टिप्पणी सहित हिन्दी के अनन्य उपासक कवि व्रजरत्नदास ने स १९८६ मे किया था। जयपुर राजवश के भारमल्ल, भगवन्तदास, मानसिह, महासिह, जयसिह प्रथम, रामसिह, जयसिह द्वितीय आदि ९ राजाओ की जीवनी दी गई है। राजा भगवन्तदास शीर्षक से लिखे जीवन वृत्त की टिप्पणी मे व्रजरत्नदास ने लिखा है इनका दूसरा प्रसिद्ध नाम राजा भगवानदास है। महाकवि भूषण ने एक कवित्त मे राजा भगवन्तदास ही लिखा है-' अक्बर पायो भगवन्त के तनय सो मान।' पृ २५३

मानसिह को भगवन्तदास का पुत्र व भगवानदास का उत्तराधिकारी।[१] वशावलियो मे प्राय भगवन्तदास या भगवानदास ही लिखा है।[२] कु प्रतापनारायण ने अपने लेख मे भारमल्ल का उत्तराधिकारी भगवानदास को बतलाया है।[३] ठाकुर वीरसिह तवर ने कछवाहो का सक्षिप्त इतिहास(प्रकाशित सन् १९३१ ई) मे पृथ्वीराज के पुत्र भारमल्ल के पश्चात् उसके औरस पुत्र भगवन्तदास को गद्दी पर बैठने का उल्लेख क्रिया है। 'मिति माह सुदी ५ विक्रम संवत् १६३० मे अपने पिता भारमल्ल के पीछे राजा भगवन्तदास गद्दी पर बैठे। छोटे भाई भगवानदास को लवाण की जागीर मिली। जिनके वशधर लवाण के राजा है, जो बाकावत कछवाहा कहलाते है। तुजुके जहांगिरी मे अखेराज (अखेराम) को राजा मानसिह के चाचा भगवानदास का पुत्र बतलाया है। जिससे सिद्ध होता है कि भगवानदास राजा मानसिह के चाचा थे अर्थात् भगवन्तदास बडे थे और भगवानदास छोटे। भगवानदास यदि गद्दीनशीन भी होते, तो भी उन्हे मानसिह को गोद लेने की आवश्यकता नही होनी चाहिए, जबकि उनके अखेराम नामक औरस पुत्र है। यो एक पुत्र अखेराम का तो उल्लेख 'तुजुके जहागिरी' मे मिलता ही है, वास्तव मे दो पुत्र और तीन पौत्र थे। जयपुर के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ

---

[१] रायबहादुर महामहोपाध्याय प. गौरीशकर हीराचन्द्र ओझा का लेख 'कछवाहो के इतिहास मे उलझन' माधुरी पत्रिका, आषाढ मास, तुलसी सवत् ३०२ मे प्रकाशित लेख का उद्धरण इस प्रकार है - आमेर के राजा के नाम क्रमश बिहारीमल्ल (भारमल्ल) भगवानदास तथा मानसिह लिखे हैं और मानसिह को भगवानदास का भतीजा बतलाया है। इससे स्पष्ट है कि मानसिंह भगवानदास के पुत्र नहीं, किन्तु गोद लिया हुआ किसी भाई का पुत्र था।'

[२] Geneological table of Kachawahas-Harnath sing ,Dundlod house jaipur- List of rulers, तथा कछवाहों की वशावली, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर मे विद्यमान ।

[३] 'जयपुराधीश की वश-परम्परा और सर्वाधिकार प्राप्ति', मई १९३२, माधुरी मे पृ ५३५-५४३ तक प्रकाशित, कु प्रतापनारायण कविरत्न का लेख । इसका खडन श्री वीरसिह तवर द्वारा 'कुशवाहा राजवश' शीर्षक लेख से किया गया। माधुरी वर्ष १० ख. १, स ३ आश्विन ३१८ (तुलसी सवत्)

पं हरिनारायण विद्याभूषण ने भारमल्ल के भगवन्तदास व भगवानदास नामक दो पुत्र स्वीकार किये हैं तथा 'फर्जन्दे दौलत महाराजा श्री मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम' शीर्षक लेख मे (जो बिडला कालेज पत्रिका पिलानी में सन् १९३४ मे पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित है।) इस कथन को 'जयपुर के सस्कृत ऐतिहासिक महाकाव्यो मे भगवानदास का नाम ही नहीं मिलता, सप्रमाण सिद्ध किया है। फारसी तवारीखो में प्राय भगवानदास व मानसिह का ही उल्लेख मिलता है। क्योंकि वे केवल राज्याधिकारी शासको का ही वर्णन करते है।[१] परन्तु कुछ इतिहास की दृष्टि से लिखने वाले महाकाव्यो मे इनका पूरा विवरण प्राप्त होता है, जिससे समस्या के साथ ही इतिहास व वशावलियों का भी सही रूप उपस्थित होता है।[२]

संस्कृत ऐतिहासिक महाकाव्यो की दृष्टि मे दो रूप सामने आते हैं। राज्याधिकारियो का वर्णन करने से केवल भारमल्ल, भगवन्तदास, मानसिंह का क्रम प्रस्तुत किया जाना। अत वे महाकाव्य अपने चित्रण मे पूर्ण सत्य हैं। दूसरे महाकाव्य राज्याधिकारियो का वर्णन तो उसी रूप में करते है, जिसका समर्थन वशावलियो , ख्यातो तथा अन्य प्रामाणिक इतिहास करते हैं। साथ ही वे भगवानदास का भी वर्णन करते हैं, जिसका इतिवृत्त 'तुजुके-जहागीरी' आदि समकालीन प्रामाणिक ग्रथो से पूर्ण समर्थित है।

---

१ (अ)'मानप्रकाश महाकाव्य' अप्रकाशित, खण्डित प्रति,एशियाटिक सोसायटी लाईब्रेरी कलकत्ता लेखक-राय मुरारिदास (राजा मानसिह प्रथम के समकालीन)

(ब)ईश्वर विलास महाकाव्य-प्रकाशित प्रति,राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से प्राप्तव्य -लेखक कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट(राजा जयसिह जयपुर सस्थापक (१६९९ ई के समकालीन)

(स)'जयवशमहाकाव्यम्'- प्रकाशित प्रति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से प्राप्तव्य ले श्रीसीताराम भट्ट पर्वणीकर(स जयसिह तृतीय १८१८-१८३५ ई. के समकालीन)

२ (अ) कच्छवश महाकाव्यम्-अप्रकाशित पूर्णप्रति, वैद्य श्री देवेन्द्रजी भट्ट द्वारकाधीश का मदिर -चौडा रास्ता जयपुर, से प्राप्तव्य, ले० राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट (स रामसिंह द्वितीय१८३५-१८८०ई के समकालीन)।

(ब) 'मानवश महाकाव्यम्'- सस्कृत रत्नाकर के विभिन्न अङ्को मे प्रकाशित अपूर्ण महाकाव्य ले श्री सूर्यनारायण शास्त्री व्याकरणाचार्य।

प्रस्तुत प्रश्नावली का सक्षिप्त एव मान्य सत्य उत्तर यही है कि आमेर के राजाओ की शासक परम्परा **'पृथ्वीराज' -(इनके अन्य पुत्र पौत्रादि) पूर्णमल्ल-भीम-रत्नसिंह-आशाकरण-भारमल्ल-भगवन्तदास-मानसिंह प्रथम** के रूप मे रही है।भगवन्तदास व भगवानदास दोनो सहोदर थे। भगवन्तदास ज्येष्ठ तथा भगवानदास कनिष्ठ थे। दोनो के सताने थी। उत्तराधिकारी के रूप मे भारमल्ल के पश्चात् भगवन्तदास का ही नाम आना उचित है और तत्पश्चात् मानसिह का । भगवानदास को आमेर का शासक स्वीकार करने मे भूल हुई है। ततश्चमानसिह को गोद लेने का प्रश्न भ्रमात्मक रहा है। यह प्रश्न श्री ओझाजी द्वारा किया गया है। उन्होने एक पाश्चात्य विद्वान् की लेखनी से प्रादुर्भूत ग्रथ को सत्य मानकर ही यह समस्या सुलझाने का प्रयत्न किया है।[१]

'फर्जन्दे दौलत महाराज श्री मिर्जाराजा मानसिह जी प्रथम' नाम से (शीर्षक)बिडला कालेज पत्रिका मे प्रकाशित शोध निबन्ध मे विद्याभूषण पुरोहित श्री हरिनारायण जी ने इन समस्याओ को निरस्त कर अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया है कि भारमल्ल के ज्येष्ठ पुत्र भगवन्तदास थे, जो उनके पश्चात् आमेर के शासक बने। कनिष्ठ पुत्र भगवानदास को लवाण की जागीर मिली थी, जो बांकाराजा के खिताब से सम्मानित थे। दोनो वीर योद्धा थे तथा अकबर के आदेश का पालन बडी तत्परता से किया करते थे। दोनो के युद्धों मे विजय का उल्लेख मिलता है।[२] उलझन को सुलझाने

---

१ 'अकबर'लेखक स्मिथ पृ २१३। इसमे लिखा है कि मानसिह भगवन्तदास के गोद हो गये थे। सर्वप्रथम भगवानदास व भगवन्तदासको अभिन्न मानना,भगवानदास को ज्येष्ठ व भगवन्तदास को कनिष्ठ समझना, भगवन्तदास को ज्येष्ठ मानकर भी भगवानदास को परम्परागत राज्य का शासक मानना, भगवानदास का भातृज मानसिह को गोद लिया जाना तथा भगवानदास के पुत्र मानसिह का भगवन्तदास के गोद जाना, ये सभी भ्रमात्मक रूप है।

२ वशावलियो मे प्राय भगवन्तदास या भगवानदास ही लिखा है । 'तुजुके जहागीरी' वगैरह मे भगवानदास है। भगवानदास बाकाराजा लवाण के शासक थे। दोनो सगे भाई थे। दोनो के सन्ताने थी- रामगढ के शिलालेख मुशी देवीप्रसाद लिखित शहन्शाह महाराजा मानसिह कछवाहा वालिए आमेर की सवानह उम्री(सवत् १९४६ मे छपी) से बारैठ रामनाथ रत्नू रचित इतिहास राजस्थान(सवत् १९४९ मे छपे) से तथा लवाण के ठिकानो की तहरीरो से तथा अन्य प्रमाणो से यही प्रतीत होता है कि मानसिह के पिता भगवन्तदास थे और भगवानदास तो चाचा थे। लवाण भगवानदास को जागीर मिली जो बाकेराजा कहलाये और वे लवाण के अधिपति रहे। जबकि दोनो भाईयो के सताने थी तो गोद लिए जाने की बात, पर कुछ और भी कारण ज्ञात करने की आवश्यकता रह जाती है। वशावलियो में लिखा है कि भगवानदास (छोटे भाई) के अखैराम, हरराम, चूडासिह, पुत्र हुए थे और भगवन्त दास के १३ रानिया,९ बेटे और २बेटिया थीं और खवास के दो बेटे थे और भगवानदास उनके छोटे भाई थे।(पृ ३ व ४ से उद्धृत)

के लिए उन्होने सवत्१६६९ का रामगढ से प्राप्त शिलालेख की नकल भी उद्धृत की है।[१] अत तत्कालीन प्रमाणो से परिपुष्ट होने के कारण मानसिह का भगवन्तदास का औरस पुत्र होना व परम्परा प्राप्त शासन (आमेर) का उत्तराधिकारी होना निर्विवाद है।

इसके अतिरिक्त बाकीदास सगृहीत **'ऐतिहासिक वार्ता'** संख्या १२९ भी मानसिह को भगवन्तदास का पुत्र तथा करमचन्द का दौहित्र सिद्ध करती है।[२]

अब यहा सस्कृत महाकाव्यो का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं, जिनका उल्लेख कर चुके है। सर्वप्रथम उस ऐतिहासिक महाकाव्य का नाम आता है, जो सर्वत प्राचीन है तथा भारमल्ल के पिता पृथ्वीराज के नाम पर लिखा गया है-**पृथ्वीराज-विजय**[३]।

---

१ जमुवा रामगढ के किले मे जो शिलालेख मिला है , वह सभवत इस समय जयपुर-म्यूजियम मे रक्खा है। नकल इस प्रकार है-

'स्वस्ति श्रीमन्नृपति विक्रमादित्य राज्यातीत सवत् १६६९ शालिवाहन शकातीत १५३४फाल्गुन शुक्लपक्षे रविवासरे श्रीमज्जहागीर साहिराज्ये वर्तमाने श्री रघुवशतिलककछवाह कुलमण्डन श्री राजा पृथ्वीराज तत्पुत्र श्री **राजा भगवन्तदास** तत्पुत्र सकलनरेन्द्र चूडामणि प्रतापपराभूत समस्त शत्रुगण समस्त पृथ्वीविजय प्राप्त महायशोराशि विराजमान **श्री महाराजाधिराज मानसिह** नरेन्द्रकारित रामगढ प्राकाराख्य दुर्ग्ग-कूपारामोपशोभित तत्र परम पवित्र श्री पद्माकर पुरोहित पुत्र श्री पुरोहितपीताम्बरस्याधिकार सिद्धम्। तत्र कार्जे निजुक्त शिल्पिय एतद्देशीय निजामश्च। अन्ये च तन्मतानुसारिण ।

साराश यह है कि राजा भगवन्तदास जी के पुत्र महाराज मानसिह ने सवत्१६६९ मे रामगढ का किला,बाग व कुआ बनवाया, था, जो स्वय के पुरोहित पीताम्बर (पुत्र श्री पद्माकर) के अधिकार मे रहा।

२ **'मानसिह भगवन्तसिहोत** परमार पसावण करमचन्द रो दोहितो'(१) श्री विद्याभूषण जी ने लिखा है कि मानसिह की माता का नाम भगोती था, जो पवार राजा पचायण की पुत्री और राधो की पोती थी (२) डूडलोद ठाकुर सा श्री हरनाथ सिह ने भी Geneological table of Kachawahas H$s Sheet No 3 मे जहा Amber & Jaipur Maharaja, Maharanies & their children का उल्लेख किया है, भगवन्तदास के प्रथम महारानी का नाम भगवती बतलाया है, जो मालपुरा के पिछायन पवार की पुत्री थी (भगवती डॉटर ऑफ पिछायन पवार ऑफ मालपुरा)

३ Prithviraj -Vijay,Ms No 10434 Asiatic socity library, Park street Calcutta। केवल १२ पत्र उपलब्ध हैं, जिसमे६२४ से ७७९ सख्या तक पद्य है।

यह अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है, जिसकी प्रति एशियाटिक सोसायटी लाईब्रेरी कलकत्ते मे सुरक्षित है। खेद है कि इसमे पृथ्वीराज के पुत्र भीम तक ही वर्णन प्राप्त होता है। यह समकालीन लगता है, परन्तु खंडित होने से उद्धृत नही किया जा सकता।

दूसरा महाकाव्य है- **'मानप्रकाश'**[१] जिसके लेखक हैं-राय मुरारिदास । यह भी खंडित व त्रुटित रूप से प्राप्त हुआ है । इसकी प्रति भी एशियाटिक सोसायटी लाईब्रेरी कलकत्ते मे उपलब्ध है। इसका जितना सा अश प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार पृथ्वीराज भारमल्ल-भगवन्तदास-मानसिह का क्रमिक उल्लेख है। भगवानदास का कहीं भी उल्लेख नहीं है। सभवत लेखक को उसका उल्लेख उचित नही लगा होगा। इसके पद्य इस प्रकार उद्धृत किये जा सकते है -

'यत्राभवद् भूपकुलावतंसः पृथ्वी नृपो नाम गुणप्रदीप. ।
तस्मादभूद् भारहमल्ल भूपसद्धर्म कर्म्मार्जितपुण्यपुञ्जः ।।
जज्ञे तस्माद् भगवन्तदासः प्रचण्डदोर्दण्डजितारिसंघ· ।
मानेन सिंहो भवितेति नूनमवेक्ष्य सक्षोणिपति कृतज्ञ· ।।
तस्मात् स जिष्णुः (विष्णु·)[२] कृत वाक्य-जातो जातो जयायास्य महीतलस्य ।
नाम्ना रिपुव्रातभयंकरेण श्री मानसिंहं तनयश्चकार ।।''

ये तो है प्रारभिक पद्य है, जहा लेखक अपने नायक को पाठको के सम्मुख प्रकट करता है। इसके आगे भी युद्ध वर्णनो में भगवन्तदास का ही उल्लेख मिलता है। यद्यपि इतिहास इस बात का साक्षी है कि भगवानदास भी अनेक युद्धो में गये थे और इसलिए उन्होने भगवानदास को मानसिह का चाचा बतलाया है। पूर्ण प्रति उपलब्ध होने पर इसका निर्णय वास्तविक रूप मे हो सकेगा। युद्ध वर्णन के पद्य देखिए -

---

१ Man-prakash,Ms No 8259 Asiatic society library, Calcutta खडित विवरण के लिए देखिए-लेखक के अन्यलेख।१ जयपुर के ऐतिहासिक काव्य-राजस्थान भारती,बीकानेर के भाग१०, अक १ मे प्रकाशित २ मान-प्रकाश एक अप्रकाशित ऐतिहासिक महाकाव्य-शोध पत्रिका, उदयपुर वर्ष १८ अक-१, अप्रैल-जून,१९६७ इत्यादि।

२ मूल पुस्तक मे इसी प्रकार का अशुद्ध पाठ है । अनेक स्थलो पर छन्दोभग है। कतिपय अक्षर दुर्वाच्य हैं। जैसा प्रतिलिपीकृत है, यहा प्रस्तुत है।

१. ‘‘समं स्वसैन्यै र्भगवन्तदासमन्यांस्तथोग्रान् रजपूत-मुख्यान्।
तथा च कर्त्ता कुलकैव बन्धुः ससैदखानं मिरिजेसफं च।।
२. श्री मानसिहो भगवन्तदासः ससैदखानो बलवानुदारः।
लाहौरदेशं समवाप्य ते वै पंजाब-देशान्तरसा प्रतस्थे।।’’

इसके पश्चात् जयपुर संस्थापक सवाईजयसिह द्वितीय की आज्ञा से लिखा गया सवाई ईश्वरीसिंह का प्रशस्ति काव्य है-‘ईश्वरविलास’[१] महाकाव्य। लेखक कवि कला-निधि श्री कृष्ण भट्ट का उद्देश्य स जयसिह व ईश्वरीसिह का विस्तृत वर्णन करना है, क्योकि ये दोनो ही आश्रयदाता रहे है। इनके पूर्वजो का वर्णन तो परम्परा की दृष्टि से किया गया है। देखिए-

१. पृथ्वीराज -

‘‘भास्वद्वंशवतंसतां दधति ये धर्मात्मनां धीमतां
धौरेया धरणीतले सुविदिता मान्धातृमुख्या नृपाः।
तस्मिन्नेव कुलेऽमले विधुरिव क्षीराम्बुधौ पार्थिवः
पृथ्वीराज इति प्रसिद्ध उदभूद्यो विष्णु-भक्ताग्रणीः

(ईश्वर१/१६)

२. भारमल्लः-

‘‘तस्याभूत्तनयस्त्रिविक्रम इवाविर्भूत सद् विक्रम·
पृथ्वीभारसमूहधारणविधौ शेषावतार स्वयम्।
अध्यम्बावति यश्च राज्यमकरोल्लब्धं निजं पैतृकं
विख्यातो भुवि भारमल्ल इति स क्षोणीभृतां शेखरः।।१/१८

३. भगवन्तदासः-

‘तस्य श्री भगवन्तदास उदितः पुत्र पवित्रक्रियः
शूर· क्षत्रियवंशविस्तरशिरोऽलंकारहीराङ्कुर.।।

---

[१] यह ग्रन्थ राजस्थान पुरातन ग्रथमाला, ग्रथाक २९ के अन्तर्गत मुनि जिनविजय के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हो चुका है।(प्रकाशन सन्१९५८ ई०)

इन्द्रप्रस्थपुराधिराज पुरुष-प्रोत्थापन-स्थापन-
स्वच्छन्दप्रसरत् प्रतापमहिमा योऽभूत् प्रभूत स्वयम् ।।१/१९

४. मानसिंहः-

'तस्याभूद् भूरि भूमीपति-विनतशिरो मञ्जु-माणिक्यमाला-
स्थाने संस्थापिताऽऽज्ञामयमधुरवचा मेदिनी-मंडलस्य।
साक्षादाखण्डलो यः प्रतिधरणिभृतां मानसं छेदनार्थ
हस्तन्यस्तासिवज्र· समरभुवि जयी मानसिंहो महीन्द्र ।।१/२०'

चूंकि मानसिह विख्यात वीर थे, अत कवि उनका वर्णन ९ पद्यो मे प्रस्तुत करता है। इस ग्रन्थ मे भी भगवानदास का कही उल्लेख नही है।

इसी परम्परा मे ईश्वरविलास के पश्चात् **'जयवंश-महाकाव्य'** उल्लेखनीय है। इसके लेखक श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर, स जयसिह तृतीय (१८१८-१८३५ ई.) के आश्रित थे। इन्होने 'ईश्वर विलास' महाकाव्य के समान ही वशावली प्रस्तुत की है।

१. पृथ्वीराज-

'सुतमधिपति - जायाऽसूत शीतांशुतुल्यं
सकलगुणविशिष्टं शिष्टमान्यं गुणज्ञम्।
त्रिभुवनमपि मर्वं चान्द्रसेनिं विनीतं
निवसितगुणि पृथ्वीराज नामानमाह ।। ५/१९ ।।'

२. भारमल्ल-

उपगतवति पुण्यैरर्जितां कर्मभिर्द्या-
ममरसदृशि पृथ्वीराज नाम्नि क्षितीशे।
अथ भुवमवतिस्म प्राप्त राज्याधिकार-
स्तदुदिततनुजन्मा भारमल्लाभिधान. ।।

३. भगवद्दास-

अथ धरणिमरक्षद्भारमल्लस्य सूनु-
र्भगवदिति पदप्राग्वर्तिदासाभिधानः।

भगवति परभक्त्या यो व्यधान्नामयुक्तं
निजमजनिकरे स्वां भक्तिमातन्वतान्तु ।।५।३२

४. मानसिंह.-

'स मानसिंहेत्यथ नामधेयं पिता चकार स्वसुतस्य तस्य।
मानेन य· सिंह इवातिरेजे यतोऽमुतो नाम न रूढमासीत्।।५।४०'

इस प्रकार अब तक सभी महाकाव्य ऐसी श्रेणि के हैं, जिनमे भगवानदास का उल्लेख नही आया है। 'भगवद्दास' को 'भगवानदास' का साम्यरूप कहा जा सकता है, परन्तु भगवन्तदास के लिए भवद्दास भी प्रयुक्त होता रहा है, अत इसे भगवन्तदास का पर्याय मानना उचित है।

'कच्छवंश' और **'मानवंश'** दोनो ऐसे महाकाव्य है, जिनमे पृथ्वीराज-भारमल्ल-भगवन्तदास-मानसिह आदि का विस्तृत वर्णन है। इनमे श्री कच्छवंश महाकाव्य को जयपुर के इतिहास का सस्कृत रूपान्तर ही कह दे, तो अत्युक्ति नहीं। केवल इसी मे भगवानदास का भी स्पष्ट उल्लेख है। समस्या का समाधान इसी के सहारे परिपुष्ट किया जा सकता है। लेखक राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट लिखते है कि भारमल्ल के दस रानियां थीं, जिनमे राठौड पुत्री वदन देवी से दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। 'भगवन्तदास' और 'भगवानदास' तथा एक पुत्री थी 'रत्नकवरा '।

'भारमल्लस्य भूभर्तुर्भार्या दश बभूविरे।
जेष्ठा वदनदा तत्र राष्ट्रोढ-दुहिताऽभवत्।।
पुरो दासो भगवतो भगवान· सुतावुभौ।
कन्यैका रत्नकंवरा त्रीण्यपत्यानसूत सा ।।७/१०-११।।'

इनमे भी भगवद्दास तो भारमल्ल के उत्तराधिकारी है, अत उनका वर्णन भारमल्ल की मृत्यु पर किया गया है। यहा भगवानदास का वर्णन करते हैं-

'अत्र यो भगवानाद्यो दासः सोऽस्याल्लवानके ।
ततो बांकावता रांका सुधांशु-यशसोऽभवन्।।'७/१२

इससे सिद्ध है कि भगवानदास व भगवन्तदास दोनो भिन्न व्यक्ति हैं । भगवानदास कनिष्ठ थे। अत इन्हे लवाण ग्राम की जागीर मिली थी और इनके वशज बाकावत कहलाते है जो आज भी मिलते हैं। भगवद्दास या भगवन्तदास को आमेर का उत्तराधिकार मिला था -

---

'भारमल्ले दिवं याते भगवद्दास भूपतिः।
अम्बावतीमधिष्ठाय व्यनैषीत् सुप्रजा प्रजा ॥'७/३०

भगवद्दास की १३ पत्नियो मे से परमारवशजा भागोती (भगवती) से मानसिह प्रथम का जन्म हुआ था।

'पातिव्रत्य-पवित्राणि कलत्राणि त्रयोदश।'७/३१
'अथ नामानि भागोती परमारपिचाणजा'७/३२
'भागोत्यां भगवद्दासादास्मन् पंच सुताः क्रमात् ।
कन्यैका द्विजसौन्दर्या मनोभावतिकाभिधा॥'७/४४
भूपतेः पंच ये पुत्रास्तेषां नामानि कीर्त्तये।
मानसिंहोऽजनि ज्येष्ठः सिहोपमपराक्रम.॥७/४८
यत्कीर्त्या कौमुदी कान्त्या भासितं भुवनोदरम्॥७/४८
यस्मिन् रेजे महाराजा शब्दो दिल्लीश्वराज्ञया ॥'७ /४९

महाराण प्रताप के पास भी भगवद्दास को ही बतलाया गया है, जो गुजरात पर विजय प्राप्त कर लौटे थे-

'प्रीत्या प्रतापसीवर्मा सीसादकुलशेखर·।
न्यमन्त्रयत् सामन्तं भगवद्दास - भूभुजम्॥
भगवद्दास वर्मापि स्वीचकार निमंत्रणम् ।
महान्त एव महतां भान्ति प्राघुणिका.परम्' ॥७।९०-९१

राणा प्रताप के द्वारा अपमान किये जाने पर भी भगवद्दास ने हस कर राणा से कहा कि कल कुमार मानसिंह आयेगे, उनके सामने आप इस प्रकार की बात मत कीजियेगा-

'निपीय तर्कजं क्षोभं क्षोणीन्द्रो धैर्यसागरः।
हसन्नुवाच दन्तांशुकौमुदीर्विकिरन् पुर.॥
एष्यति श्वःकुमारो मे मानसिंहो महामहाः।
तदग्रे जातु मा ब्रूयाःयन्मां प्रत्युक्तवानसि ॥'७/९७-९८

यहा मानसिंह को कुमार शब्द से कहा गया है, भातृज नहीं बतलाया गया।

अत भगवद्दास का भगवन्तदास से अभिन्नत्व सिद्ध होता है। इसी प्रकार कोई समस्या नही रह जाती ।

सर्वान्तिम महाकाव्य 'मानवंश' मे श्री सूर्यनारायण शर्मा व्याकरणाचार्य ने केवल राज्याधिकारियो का ही वर्णन किया है, इस प्रकार इसमे भी भगवन्तदास-मानसिह आदि प्रमुख शासकों का ही उल्लेख है।

'मत्वा त्वनस्वस्य राज्यस्य शत्रुं तस्मिश्चंक्रे भारमल्ल प्रयाणम्।
हत्वा मीनान् नाहनस्यापि देशं स्वीये राज्ये योजयामास धीरः ।।९/२१
'अस्यासीद् भगवन्तदास सुमतिः पुत्रः प्रतापान्वित
सोऽप्युत्साह-गुणेन गौरवमगात् सम्राट् सभासून्नतम्।
तस्यापि प्रथितः सुतः समभवच्छ्री मानसिंहाभिधो
यं लोको मनुते हि वीरमुकुटालंकारभूतं भुवि ।। ९। २३'

चित्तौड के युद्ध मे मानसिह के साथ भगवन्तदास आदि का भी उल्लेख मिलता है, जो बादशाह अकबर के साथ ही था -

'भगवन्तदासो मानश्च नाथाजी रायफत्तरः।
टोडरमल्लोऽशर्फश्च युद्धेऽस्मिन् सुदृढा स्थिताः' ।।११/३१

इस प्रकार इस महाकाव्य मे भी भगवानदास का उल्लेख नहीं है। अत स्पष्ट है कि भगवानदास उन शासको की परम्परा मे नहीं आते, जो आमेर मे गद्दीनशीन हुए थे। साथ ही भगवन्तदास का ज्येष्ठत्व मानसिह का औरस पुत्रत्व तथा उत्तराधिकारी होना भी सिद्ध हो जाता है।

'शोधपत्रिका' उदयपुर वर्ष-१९
अक ४ अक्टूबर-दिसम्बर-१९६८

***

'आमेर के कछवाहा-शासकों की परम्परा में व्युत्क्रम'

भगवान् श्री राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश के वश मे उत्पन्न क्षत्रिय 'कुशवाहा' या कछवाहा कहलाते हैं। इन्ही के वशज नरवर, ग्वालियर, और आमेर के शासक रहे है। महाराज सुमित्र तक जो सूर्यवशी थे, उनका उल्लेख पुराणो व सस्कृत के प्राचीन ग्रन्थो मे मिलता है। **महाराज वज्रदामन्** या वज्रधामन् ही ऐसे प्रथम शासक हैं, जिनका विक्रम सवत् १०३४ का एक शिलालेख उपलब्ध होता है।[१] यही से कछवाहो की वशावली का ऐतिहासिक रूप प्रारम्भ माना जाता है।

श्री वज्रधामन् के ७ वें वशधर थे ईशासिंह के पुत्र **सोढदेव** । आमेर-जयपुर के कछवाहा शासकों की परम्परा के मूल पुरुष महाराज सोढदेव ही माने जाते है, जिनके पुत्र **दूलहराय** ने दौसा पर विजय प्राप्त कर उसे अपने पिता सोढदेव को सौप दिया था। इनके पश्चात् दूलहराय अपने राज्य का विस्तार करते रहे और खोह, मांची, जमुवा-रामगढ, झोटवाडा, आदि स्थानों पर अधिकार कर अपने पुत्र 'काकिल' को उत्तराधिकार सौंप कर दिवंगत हो गये। **श्री काकिल** ने आमेर को जीत कर इसे अपनी राजधानी बनाया। इस प्रकार आमेर के कछवाहा शासकों के मूल पुरुष महाराज

१ **ठाकुर श्री वीरसिंह तंवर ने 'कछवाहों का संक्षिप्त इतिहास' शीर्षक से लिखी पुस्तक के पृष्ठ सं. १० पर उल्लेख किया है कि यह शिलालेख ग्वालियर के किले में 'सास-बहू' के मन्दिर में मिला है।**

सोढदेव१०६७ ई.[1] मे दूढार मे आये थे तथा महाराज काकिल माघ शुक्ला ७ सं. ११९४ ई. सन् ११२७में शासन करने लगे थे।

'राज्य-तत्र' के नियमानुसार राजा ज्येष्ठ औरस पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी होता था, चाहे वह नाबालिग ही हो। पुत्र के युवराज रूप मे दिवंगत हो जाने पर उसका पुत्र अयोग्य या विकलाग होने पर मन्त्रि-परिषद् या सामन्तों की सलाह से राजा उसके पुत्रों में से किसी को उत्तराधिकारी निश्चित करता था। इस प्रकार सुव्यवस्थित इस नियम परम्परा के तनिक भी व्युत्क्रम से शासन की स्थिति डावाडोल हो जाया करती थी तथा पितृघाती व भ्रातृघाती शासको का आविर्भाव होने लगता था।

आमेर के कछवाहा -वशीय शासको की परम्परा मे ४ बार व्युत्क्रम आया है, जिसके निम्नलिखित कारण हैं

१. राजा द्वारा किसी रानी से शर्त पर विवाह कर औरस ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार समाप्त करना।

२. राजा के जीवितावस्था मे ही ज्येष्ठ पुत्रो को अधिकार न दिया जाना(युवराज निश्चित न करना) अथवा राजा के पश्चात् कनिष्ठ पुत्र द्वारा राज्य स्वायत्त करने पर मन्त्रि-परिषद् या सामन्तों द्वारा विरोध न करना।[2]

३. राजा के सम्मुख ही ज्येष्ठ औरस पुत्र का दिवगत हो जाना तथा राजा द्वारा ज्येष्ठ के पुत्रों में से ज्येष्ठ को अधिकार न दिया जाकर कनिष्ठ पुत्र को अधिकार देना।

ज्येष्ठ औरस पुत्र के नि सतान दिवगत हो जाने पर कनिष्ठ पुत्र (भाई) का उत्तराधिकारी होना परम्परा के व्युत्क्रम मे नहीं आता, यदि ज्येष्ठ पुत्र ने अपना

---

१ **'कछवाहों की वंशावलियों में स्पष्ट उल्लेख है कि १०२३ मि. सं. आनन्द शुद्ध शास्त्रीय विक्रम संवत् १११४ ई. सन् १०६७ में श्री सोढदेव गद्दी पर बैठे थे। इन्होंने ४० वर्ष ३ मास ११ दिन राज्य किया था।**

२ **ऐसी स्थिति में 'मात्स्य न्याय' लागू हो जाता है। जो भी शासक बलवान् होता है, शासक को अपदस्थ कर या मारकर शासन करने लगता है।**

उत्तराधिकारी नामजद न किया हो या गोद न लिया हो। इस प्रकार इस शासन परम्परा मे उपर्युक्त तीन कारणो से चार बार व्युत्क्रम उपस्थित हुआ है, जिसका ऐतिहासिक विवरण निम्नाकित है-

१. महाराज सोढदेव के १३ वे वशधर थे महाराज उदयकरण जी। ये जोनशीदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनके आठ पुत्र थे तथा तीन रानिया थी। इनके संबंध मे एक जनश्रुति है, जिसका उल्लेख ठाकुर श्री वीरसिह तवर ने[१] तथा कूर्म वश, यशप्रकाश की भूमिका [२] में किया गया है। श्री तवर महोदय इतिहास में लिखते हैं कि-

'उदयकर्ण जी की तीसरी राणी निर्वाण जी राव बीसल जी खण्डेला का की बेटी, इन्हीं से आठवे पुत्र नृसिंह जी हुये थे, जो आमेर के राजा बने। इसका किस्सा यूं है कि जब निर्वाण राजा वीसलजी के आदमी उक्त राणी का टीका कुवर वरसिंह जी के लिये लेकर आये तो हंसी में राजा उदयकर्णजी ने कहा कि इस सगाई पर मेरे पूज्य पिता का मन है, अब मेरी तो यह माता है। मैं विवाह नहीं करूंगा । जिस पर खण्डेला के आदमियों ने प्रस्ताव किया कि यदि हमारी बाई के गर्भ से जो कुमार होगा, उसे ही गद्दी मिले तो हम विवाह कर करते हैं। जिस पर वरसिंह जी ने सदैव के लिये अपना हक छोड दिया और खण्डेला राजा की बाई का विवाह राजा उदयकर्ण जी से हुआ, सो प्रथम शर्त के अनुसार नृसिंह जी तो आमेर के राजा हुये और वीरसिंह जी को ९४ ग्रामों सहित मौजमाबाद की जागीर मिली। वरसिंह जी के पोते नरू जी से ही नरूका कुशवाहे गण है। नरूका क्षत्रियों का अलवर राज्य का उणियारा, लांवाजावली, गढी,गढ, खोहरा,विजवाड, पलवा थाणा, आदि कई ठिकाने हैं।'

---

१ (१.) 'कछवाहों का संक्षिप्त इतिहास' -लेखक ठाकुर वीरसिंह तंवर, कुरसीनशीन व दरबारी ताजीमी सरदार भूतपूर्व मुसाहिब स्व. श्री महाराज काश्मीर व हाकिम इतिहास व रिसर्च तथा प्राचीन शोध व फोर्ट ट्रेजरीज, राज. अलवर, वि.सं.१९८८ सन् १९३१ ई. पृष्ठ-१५। उद्धरण।
(२.)इन्हीं का लेख -'कुशवाहा-राजवंश'वर्ष १० खण्ड १ संख्या ३ आश्विन, तुलसी संवत्३०८ वि. सं.१९८८, पृष्ठ ३५६।

२ 'कूर्मवंशयश. प्रकाश' (लावारासा)नामक ग्रन्थ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर से प्रकाशित है। इसकी भूमिका पृष्ठ २९ पर इस घटना का उल्लेख है।

कुवर प्रतापनारायण जी कविरत्न के लेख[1] की भ्रान्तियों का निराकरण करने के लिये कुशवाहा -राज वश' में लिखा है- 'वरसिंहजी जेठे थे, इसके कई प्रमाण हैं। राजा उदयकर्ण जी वि.स.१४२६ में जगन्नाथपुरी की यात्रा को गये थे। उस समय की पण्डों की बही में नीचे लिखे अनुसार लेख है-

" राजा उदयकर्ण जी कछवाहा दूढाड का राजा खटले (रणवास) सहित आये। साथ मे बडे कुमार वरसिह जी आये। "इत्यादि[2] ।

'कूर्मवश· यश प्रकाश ' की भूमिका में लिखा है-

१ सवत् १४२३ वि. मे आमेर के सिहासन पर उदयकर्ण का उदय हुआ । इनके ज्येष्ठ पुत्र वरसिंह थे, जिनके विवाह के लिये खण्डेला के निर्वाण वंशी राजा राव श्री वीसलदेव ने अपनी पुत्री के विवाहार्थ टीका भेजा। इस अवसर पर वृद्ध राजा उदयकर्ण ने हास्य मे कहा कि यदि हमारी अवस्था भी कुवर साहब की सी होती तो हमारे लिये भी व्याह का टीका आता। यह सुन तत्काल कुवर वरसिंह उठ गये और उस कन्या को हृदय से माता अनुमान कर पिता से विवाह का आग्रह करने लगे। खंडेला के अतिथियो से कह दिया कि यह माग पूरी हो चुकी है, यह संबंध अन्यत्र नहीं होगा। जब बीसलदेव को यह ज्ञात हुआ तो उसने वरसिंह से प्रतिज्ञा पत्र लिखवा लिया- 'मै राज्याधिकार प्राप्त नहीं करूगा। नई माता के पुत्र को ही स्वामी मानूंगा। राजा उदयकर्ण को वृद्धावस्था में तीसरा विवाह करना पडा। इस कन्या से उसके २ पुत्र हुये। ज्येष्ठ का नाम था नृसिह तथा कनिष्ठ का बालोजी।"

श्री हरनाथ सिंह (डूंडलोद) ने प्राचीन रिकार्ड के आधार पर जो Geneological Table of Kachawahas तैयार की है, इसमें महाराज उदयकर्ण के ३ रानिया बतलाई हैं।

---

१ **मई सन् १९३१ की माधुरी में पृ.५३५-५४३पर्यन्त कुमार प्रताप नारायण जी कविरत्न का 'जयपुराधीश की वंश परम्परा और सर्वाधिकार प्राप्ति' नामक एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें उन्होंने वरसिंह आमेर पति राजा उदयकर्ण जी का छोटा भाई होना लिखा है' यह बिल्कुल गलत है। राजा उदयकर्ण जी के आठ पुत्र थे, जिनमे सबसे जेठा वरसिंह था।**

२ **'उक्त मूल लेख को जो, तालपत्र पर लिखा हुआ है, मैं सन् १९२८ में जाकर ले आया था। वह अब श्रीमान् अलवरेन्द्र के यहां सुरक्षित है।' (कुशवाहा-राजवंश से उद्धृत)**

१. Uttam Devi,daughter of Gaur of Maroth
२ Pachrung Devi,daughter of Sagar ji Tanwar
३. Sahodra Devi,daughter of Raja Bishaldeo,Nirban of Khandela

पुत्रों की सख्या ८ बतलाई है परन्तु **नरसिंह** को प्रथम स्थान दिया है, व्युत्क्रम न होने केलिये। इन्हे सहोद्रा देवी का पुत्र स्वीकार किया है- Nar Singh was born by sahodra Devi Nirban (Sheet No 3)

कुवर वरसिह को राज्याधिकार नही मिला । स.१४४५ मे उदयकर्ण के स्वर्गत होने पर नृसिह को उत्तराधिकार मिला। कमजोरी देखकर कलाधर झाला ने आमेर हडपने की योजना बनायी, परन्तु ईशरदा के निकट वरसिंह ने युक्ति से उसे मार दिया। उस समय आमेर की २७ लाख रुपये वार्षिक आय थी। इसके तीन भाग किये गये थे, जिसमें से ९ लाख में भैराणा की ८४ गावों की जागीर वरसिह को ९ लाख की अमरसर की जागीर बाला जी को तथा शेष आमेर की गद्दी सहित अधिकार श्री नृसिंह को प्राप्त हुये।

कुछ ऐतिहासिक समालोचक इसे व्युत्क्रम नही मानते और अपने मत की पुष्टि मे कहते हैं कि यह सब जो कुछ भी हुआ है, युवराज वरसिह की इच्छा से हुआ है। मेरी दृष्टि में यह परम्परा मे व्युत्क्रम तो अवश्य है। यह बात अलग है कि यह व्युत्क्रम वैधानिक है, अवैधानिक नहीं। कछवाहा शासको की यह परम्परा रही है कि जो भी औरस सतान ज्येष्ठ होगी, जन्मना ही युवराज और कालान्तर मे पिता के पश्चात् राजा बन जायेगी। इस दृष्टि से व्युत्क्रम स्पष्ट है । व्युत्क्रम का कोई न कोई हेतु अवश्य होता है।

इसी प्रकार - जयपुर सस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय ने भी महाराणा अमरसिंह द्वितीय की पुत्री श्रीमती चन्द्र कवर से इसी शर्त पर विवाह किया था कि इसकी संतान उत्तराधिकारी होगी। इनके श्री धीरजसिंह खींची की पुत्री सुखकंवर से कुमार ईश्वरीसिंह विद्यमान थे। तदुपरांत संबध विवाह करना ज्येष्ठ पुत्र के अधिकारों का हनन, परम्परा में व्युत्क्रम उपस्थित करने के साथ ही जनता में भी अशान्ति का कारण है। यद्यपि यहा व्युत्क्रम नहीं हुआ, क्योंकि म.स. जयसिंह द्वितीय के पश्चात् ईश्वरीसिंह उत्तराधिकारी बने और इनका पुत्र कल्कि प्रसाद बाल्यावस्था में ही दिवगत

हो चुका था। अत पुत्र के अभाव मे उत्तराधिकार भाई को मिलता। केवल परस्पर का वैमनस्य प्रजा की सुख शान्ति मे बाधक बना था, - यह निस्सदेह कहा जा सकता है।

दूसरा व्युत्क्रम है - महाराज पृथ्वीराज के पश्चात्। इनके ९ रानियों में से ५ से कुल १९ पुत्र थे। इनकी पत्नी भक्त बाला बाई से १२ पुत्र थे, जिनमे भीम ज्येष्ठ थे अत राज्याधिकार इन्हे प्राप्त होना चाहिए थापरम्परानुसार। परन्तु पदार्थ देवी तवर के पुत्र श्री पूर्णमल्ल ने आमेर का अधिकार प्राप्त कर लिया, जो सभवत सबसे छोटे थे। वशावलियो में इन्हे छोटा बतलाया गया है, परन्तु राजा पृथ्वीराज का उत्तराधिकारी होना लिखा है। इस व्युत्क्रम का कारण अज्ञात है । न तो कोई अनुबन्ध की ही घटना है और न राजा की घोषणा ही। कहा जाता है कि श्री पूर्णमल्ल को वास्तविक उत्तराधिकारी भीम ने कालान्तर मे मार दिया था और स्वय शासक बन गया था। कुछ लोगो की सम्मति है कि पूर्णमल्ल की शिकार गृह नामक स्थान पर शेखावतो के पक्ष में यवनो से युद्ध करते हुये मृत्यु हो गई थी।[१] जयपुर के इतिहास (नाथावतो का इतिहास) मे प श्री हनुमान शर्मा चौमू ने लिखा है-

'पूरणमल जी को प्रयोजन वश पृथ्वीराज जी ने राजा बना दिया था। इस कारण पुत्रो की नामावली मे सबने उनका नाम पहले दिया है। इससे भ्रम हो सकता है कि ये सबसे बडे होगे । परन्तु थे सबसे छोटे १८ वे।'

'इतिहास राजस्थान' (श्री रामनाथ रत्नू) 'आमेर के राजा' (मुन्शीदेवी प्रसाद) 'कछवाहो की वशावली (सवत्१८७०-८६-९० मे लिखी गयी,) बालाबक्श बारैठ, विद्याभूषण श्री हरिनारायण जी पुरोहित, आदि श्री पूर्णमल्ल को १८ वा पुत्र मानते है, जबकि जयपुर की राजवशावली (१८४४सवत् में लिखी) शार्टहिस्ट्री (पु.श्री रामनिवास जी एम.ए) जयपुर हिस्ट्री (ठाकुर फतहसिह राठौड मुसाहिब जयपुर) वीर-विनोद (कविराजा श्यामलदास जी) तथा प्राचीन वशवृक्ष में श्री पूर्णमल्ल को प्रथम पुत्र स्वीकारा है।[२]

---

१ Geneological table of Kachhawahas-by shri Harnath singh ji Shot No 3 " Amber 4 Jaipur Majarajas, Majaranies 4 Their children "

२ **''नाथावतों का इतिहास''-पृ.४३ व ४४**

यदि श्री पूर्णमल्ल ज्येष्ठ थे, तो इन्हे पितृघाती नहीं कहा जा सकता क्योंकि परम्परागत नियमानुसार इनको उत्तराधिकार प्राप्त होता। महाराज पृथ्वीराज ने स्वय इन्हे उत्तराधिकारी मनोनीत किया था, तो इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिये। उनने परम्परा में व्युत्क्रम क्यो किया? श्री पूर्णमल्ल की मृत्यु भी सदिग्ध है। कुछ ऐतिहासिक युद्ध में मरण मानते हैं तो कुछ इसके विपरीत महाराज भीम को मृत्यु का कारण मानते हैं। यदि परम्परा में कोई व्युत्क्रम नहीं था तो फिर श्री पूर्णमल्ल के पश्चात् उसका पुत्र सूजा (राठौड रानी से उत्पन्न) या श्री सूरजमल्ल को उत्तराधिकार मिलना चाहिए था। परन्तु उस बालक की रक्षा के लिये उसकी माता उसे पीहर ले जाती है। 'वीर-विनोद' के इस कथन से सिद्ध होता है कि पूर्णमल्ल नियमानुकूल शासन प्राप्ति के अधिकारी नहीं थे। कुछ इतिहासकार भीम को पितृहन्ता (पृथ्वीराज का मारने वाले) बतलाते हैं तथा कुछ इतिहास इसे निर्मूल बतलाते हैं। यदि भीम ने पिता की हत्या की थी तो फिर पूर्णमल्ल शासक क्यों बने ? यह प्रश्न आता है। 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य भी इस विषय में मौन है। वह केवल पृथ्वीराज के पश्चात् पूर्णमल्ल तथा भीम का शासक रूप में उल्लेख करता है। भीम को पूर्णमल्ल का भाई अवश्य बतलाया है -

'पृथ्वीराजसमाह्वये नरपतौ याते परं नाकिनां
कीनाशाति-भयंकरे भगवतो व्युत्थापनार्हे तिथौ।
अन्येद्युस्तनयोऽस्य भास्वरवपुः श्री पूर्णमल्लाभिधो
राज्यं प्राज्यगुणं गुणैरगणितैराप प्रजाः रञ्जयन्।।७७७।।
षड्वर्षाणि षडाननोन्नतरुचिं नीचीकृतान्यद्युति-
द्वौं मासौ दिवसानपि श्रुतवतां वर्षस्त्रयोविंशतिम्।
भुक्त्वा भौमसमो सुखं सुरसखो राजा बुभूषुर्दिवं
पुण्योघैरनधोर्जितां जितरिपुः श्री पूर्णमल्लो ययौ।।७७८।।
याते तूवरिका सुते सुरपुरं बालासुतो विक्रमी
संचक्राम च वैक्रमे बलनिधि-व्योमाङ्क-बाणेन्दुभिः।
वर्षे संकलिते सहस्यधिकथी शुक्ले मृडानी तिथौ
राज्यं भ्रातुरलंचकार-चतुरो भीमाभिध·स्वैर्बलैः ।। ७७९।।

महाराज भीम २ वर्ष ६ मास १० दिन ही राज्य कर सके थे कि इनके पुत्र रत्नसिह ने इन्हे मार दिया था। क्यो ? यह प्रश्न पूर्णत विचारणीय है। महाराज भीम के पश्चात् यदि परम्परानुसार राज्य प्राप्त होता तो रत्नसिह ही उसके उत्तराधिकारी होते। रत्नसिंह को इनके पुत्र आशाकरण ने मार दिया था, ऐसा इतिहासों में लिखा है। यह प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता । आशाकरण को गद्दी से हटाकर पुन. श्री पृथ्वीराज के पाचवें पुत्र भारमल्ल ने शासन को सभाला था। भारमल्ल को यह वध परम्परा अच्छी

नही लगी, अत उसने आशाकरण को व उसके पुत्र राजसिह को मारा नहीं। यो आशाकरण राज्य चलाने मे भी शिथिल ही था।

महाराज पूर्णमल्ल के पश्चात् म. भीम को भ्रातृघाती एव तदनन्तर रत्नसिह आशाकरण आदि को पितृघात्री भी मान लें तो भी परम्परा का दो बार व्युत्क्रम हुआ है (१) भीम के स्थान पर पूर्णमल्ल का आसीन होना या कि पूर्णमल्ल के ज्येष्ठ होने पर उसकेपुत्र सूरजमल्ल को अधिकार प्राप्त न होना। फिर आशाकरण को हटाया जाकर म भारमल्ल का शासन सूत्र सभालना। इस व्युत्क्रम से बचने के लिये ही इतिहासकारों ने पृथ्वीराज के पश्चात् भारमल्ल को शासक सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु पूर्णमल्ल से लेकर आशाकरण तक जो राज्य का समय बीता है, उसकी सगति लगाना कठिन है। म. पृथ्वीराज कार्तिक सुदि ११ विक्रम संवत् १५८४ मे दिवगत हुए थे तथा भारमल्ल आषाढ बदी ८ भी वि. स १६०४ मे गद्दीनशीन हुए थे। इन बीस वर्षो के व्यतिक्रम का तो उल्लेख विचारणीय होगा।

तीसरा व्युत्क्रम है - मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम के पश्चात्। म. मानसिंह प्रथम के पश्चात् परम्परानुसार उनके ज्येष्ठ औरस पुत्र जगत्सिंह को आमेर की गद्दी मिलनी चाहिए थी, परन्तु इनका देहावसान पिता के सम्मुख ही हो गया था। इसके पश्चात् उत्तराधिकारी जगत्सिंह के पुत्र महासिह होने चाहिए, परन्तु म.मानसिंह ने अपने कनिष्ठ पुत्र भावसिह[१] को आमेर की गद्दी दी। बादशाह ने महासिंह को दक्षिण मे भेज दिया। बादशाह ने दोनो महासिह व भावसिह का समान सम्मान किया था।

टाड कृत राजस्थान में (अग्रेजी भाग २पृ.१२०६) में लिखा है कि महासिह

---

१ **अदुर्रजाक तथा इनके पुत्र अब्दलहई खां की रचना' महालिरूल् उमरा' (हिन्दी अनुवद सं १९८६ ब्रजरत्नदास) के पृष्ठ२३२ पर इनका नाम बहादुर सिंह दिया है। इसकी जीवनी में लिखा है-'जव राजा मानसिंह की मृत्यु का समाचार मिला ,तव यद्यपि राजपूत प्रथा के अनुसार जगत्सिंह (जो पूर्वोक्त राजा का सबसे बडा पुत्र था) के पुत्र महासिंह को उत्तराधिकार पहुंचता था, पर बादशाह ने अनुग्रह से (जो बहादुर सिंह पर था) इसको दरबार में बुलाकर मिरजा राजा की पदवी और मन्सब बढाकर चार हजारी ३००० सवार देकर उस जाति की सरदारी सौपीं।१६ वें वर्ष सन् १०३० हि. सं १६७७ ई. सन् १६२० में इसकी मृत्यु हुई। यद्यपि इसके बडे भाई जगतसिंह और भतीजा महासिंह दोनों मदिरा पान से मर चुके थे, पर उनसे उपदेश न लेकर इसने भी मीठे प्राण को कडुए पानी के बदले बेच डाला। श्री ब्रजरत्नदास ने टिप्पणी में लिखा है कि टाड कृत राजस्थान में, इसी ग्रन्थ के अन्य निबन्ध(५०) राजा मानसिंह व (२३) मिरजा राजा जयसिंह कछवाहा में इनका नाम भाऊसिह दिया गया है। बहादुर सिंह इनका उपनाम या बादशाह की उपाधि थी।**

की मृत्यु पर जहागीर की राठौड रानी जोधाबाई के प्रस्ताव पर आमेर का राज्य राजा मानसिंह के भाई जगत्सिह के पौत्र जयसिह को मिला । मआसिरुल उमरा मे महासिह राजा मानसिह के बडे पुत्र कुवर जगत्सिह के लडके बतलाये गये है - 'राजा महासिह के पिता मानसिंह कछवाहा के पुत्र राजा जगत्सिह थे।' (पृ. २८०) वास्तव मे मआसिरुल उमरा का आलेख ही सही है, क्योकि सभी प्रामाणिक इतिहासों में तथा सस्कृत केऐतिहासिक महाकाव्यों मे इसी का समर्थन है। महासिह की मृत्यु १६१७ ई. में हो गयी थी।[१]

मिर्जाराजा जयसिंह प्रथम महासिह के पुत्र थे। महाराज भावसिंह के किसी जीवित सतान[२] (पुत्र) होने का उल्लेख नही मिलता । अत पुन. मिर्जाराजा मानसिंह के प्रपौत्र कु जगत्सिह के पौत्र एव राजा महासिह के पुत्र मिर्जाराजा जयसिह आमेर की गद्दी पर बैठे । भावसिह का गद्दीनशीन न होना व्युत्क्रम का कारण था।

मिर्जाराजा जयसिंह के पुत्र थे मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम। इनके १ पुत्र था म. कुमार किशनसिंह । ये अपने पिता के सामने ही दिवगत हो गये थे और इनके पुत्र थे मिर्जाराजा विशनसिह (विष्णुसिह)। मि रा. रामसिह प्रथम के पश्चात् नियमानुसार इनके पौत्र को गद्दी मिली, यहा व्युत्क्रम नही है। विशनसिंह के पुत्र सवाई जयसिह द्वितीय थे, जिनके कनिष्ठ पुत्र थे स. माधवसिह प्रथम। इनके ५ पुत्र थे, जिनमे तीन बाल्यावस्था में दिवगत हो गये थे। यद्यपि पृथ्वीराज (ज्येष्ठ औरस पुत्र माधवसिह प्रथम) के पश्चात् उनके पुत्र मोहनसिंह को गद्दी प्राप्त होनी चाहिए थी, परन्तु चाचा

---

१ 'मआसिरुल उमरा में३८वें निबन्ध मिरजा राजा बहादुर सिंह में इनकी मृत्यु तिथि १०३० हिजरी संवत १६७७ ई. सन् १६६० दी है तथा इनसे पूर्व महासिंह की मृत्यु होने का उल्लेख किया है जबकि इसी पुस्तक के निबन्ध ५० में 'राजा महासिंह' में उनका मृत्यु समय १०२६ हिजरी सन् १६१७ दिया है। वंशावलियों के अनुसार भावसिंह की मृत्यु फाल्गुन शुक्ला स.१६७८ ई., सन् १६२१ सत्य प्रतीत होती है। महासिंह की तिथि का उल्लेख नहीं मिलता ।

२ माधव के पुत्र वदरीसिंह का देहान्त उनके सम्मुख ही हो गया था। इसीलिये उनकी मृत्यु के समय किसी भी जीवित संतान का उल्लेख नहीं है।

प्रतापसिह ने अधिकार लिया था। वशावलियो के अनुसार म. पृथ्वीसिह के देहान्त के समय सभवत· मोहनसिंह २-३ वर्ष का ही होगा। यह भी एक व्युत्क्रम है)। कुछ लोग म. सवाई पृथ्वीराज की मृत्यु म.स. प्रतापसिह के द्वारा मानते हैं।

इनके पश्चात् स. जगत्सिह का शासन रहा। इनकी मृत्यु के पांच माह बाद स. जयसिंह तृतीय का जन्म् हुआ । इनके पश्चात् स. रामसिंह द्वितीय ने शासन किया और उनके पश्चात् स. रामसिह द्वितीय ने शासन किया और उनके पश्चात् दत्तक पुत्र माधवसिह व इनके दत्तक पुत्र स मानसिह द्वितीय रहे , जो अभी तक (लेख प्रकाशन के समय तक) विद्यमान थे।

'विश्वम्भरा'-
त्रैमासिक शोध पत्रिका
बीकानेर, वर्ष ५ अक २

***

जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन-

'मानसिंह कीर्ति मुक्तावली' एक विवेचन

मुगल बादशाह जलालुद्दीन खान अकबर के नाम से सभी परिचित है और इन्हीं के साथ आमेर के कछवाहा शासक महाराज मानसिह प्रथम का नाम भी इतिहास में प्रसिद्ध है। इनकी वीरता के लिए इतिहास के पृष्ठ तथा स्मृति रूप मे प्राचीन खण्डहर, कीर्ति-स्तम्भ आदि आज भी गुणानुवाद प्रस्तुत कर रहे है। वीर होने के साथ ही ये विद्वान् भी थे और विद्वानों का सम्मान भी किया करते थे। अनेक भाषाओं के जानकार राजा मान के जीवन परिचय को प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही है। यहा केवल **'मानसिंह-कीर्ति-मुक्तावली'** व उसके लेखक के सबंध में प्रकाश डाला जायेगा।

(१) श्री के.एल. जैन जयपुर द्वारा प्रकाशित 'जयपुर एल्बम' के १३ वे अध्याय में महामहोपाध्याय स्वर्गीय प. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी एव प. श्री (स्व.) नन्दकिशोर शर्मा नामावल ने सम्मिलित रूप में एक लेख प्रकाशित किया था, जिसमें जयपुर-आमेर के शासको का सस्कृत भाषा के प्रति किया गया सरक्षण वर्णित है। उन्होंने महाराजा मानसिंह प्रथम के सबध मे लिखा है-

"An elaborate account of the victories of Maharaja Mansingh ji is found in a poetical work entitled- " Man - prakash" by Rai Murandas It is mentioned in the copy which is in the Library of the said Society (Asiatic society of Bengal) that Maharaja Mansingh ji

conquered the forts of chittore, Ranathabhore and kumbhalmer & defeated all the prominent Rajput states of the period Another work in which the same theme is pursued is " Mansingh Kirti Muktawali " by Jagannath which is with Gulab Rai of Fyazabad (see oudh catalogue 5/2)

"Literary activities & principal scholar of jaipur" page one chapter13. Jaipur Album

इस अवतरण से स्पष्ट है कि जगन्नाथ कवि द्वारा निर्मित 'मानसिंह कीर्ति मुक्तावली' जो फैजाबाद निवासी श्री गुलाबराय के पास विद्यमान है, जिसका उल्लेख 'औध सूचीपत्र के पाचवे भाग मे किया गया है, आमेर के शासक महाराज मानसिंह की युद्ध कुशलता का परिचय देती है।

(२) श्री उमेश चतुर्वेदी, साहित्य भूषण, कविरत्न ने -'**जयपुर नरेश और साहित्य समाज**' शीर्षक लेख लिखा था, जो '**हितैषी**' नामक मासिक पत्रिका के विशेषांक '**जयपुर अंक**' (वर्ष१/२ अक १२/१३ दिसम्बर-जनवरी १९४१ -४२) मे प्रकाशित हुआ था। उसमे महाराज मानसिह के विषय में श्री चतुर्वेदी ने लिखा है-

'महाराज मानसिंह प्रथम ने जो-जो युद्ध किये और उन्हे जितनी विजय प्राप्त हुई, उनका राय मुरारिदास जी ने '**मान-प्रकाश**' नामक एक ग्रन्थ बनाया और उन्हीं की यश कीर्ति को जगन्नाथ गुलाबराय ने '**मानसिंह कीर्ति मुक्तावली**' (पृष्ठ१५२) के नाम से प्रकाशित किया ।'

श्री चतुर्वेदी जी ने जगन्नाथ के साथ गुलाबराय का भी नाम जोड दिया है । वास्तव में गुलाबराय तो उस ग्रन्थ के मालिक है, जिनका उल्लेख 'औध सूचीपत्र' में (५/१) है।

(३) इसके अतिरिक्त विद्याभूषण पुरोहित श्री हरिनारायण जी शर्मा ने , जो जयपुर के इतिहास के मार्मिक विद्वान् हुए है, इसी हितैषी अक मे '**जयपुर के कविकोविद**' नाम से एक विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित करवाया है, जिसमें भी इस मुक्तावली के सबध में यह लिखा है -

'२४- राय मुरारिदान कवि ने '**मान-प्रकाश**' ग्रन्थ महाराज के इतिहास और प्रशसा में बनाया था। २५ और '**मान भारत**' और २६ '**मान-विनोद**' ग्रन्थ भी

बने थे, परन्तु देखने में नहीं आये। २७'मानसिह कीर्ति मुक्तावली' (पृ.१४४) का ग्रन्थ जगन्नाथ कवि ने बनाया था''।

उपरिलिखित तीनों अवतरण एक ही तत्त्व की पुष्टि करते है कि महाराज मानसिंह के समय जगन्नाथ नामक कवि ने उनकी प्रशसा मे **'मानसिंह-कीर्ति मुक्तावली'** नामक ग्रथ लिखा था।

एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल कलकत्ता के पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जो हस्तलिखित न होकर प्रकाशित है। दोनो पुस्तके एक समान ही है। ग्रथ का पूरा नाम **'कीर्ति मुक्तावली'** है। चूकि मानसिह नामक इस ग्रथ के नायक है, इसलिए इसका नाम 'मानसिंह कीर्ति मुक्तावली 'प्रसिद्ध हो गया है। यह प्रकाशित पुस्तको की सूची **IIIA192** क्रमाक पर उपलब्ध हैं । यह रचना कब प्रकाशित हुई है, इसके प्रकाशक कौन है , इसका प्राप्ति स्थान क्या है-आदि प्रश्न उत्तरित नहीं हो सकते, क्योकि ग्रन्थ के प्रारम्भ या अन्त मे कहीं भी उल्लेख नहीं है। दोनो ग्रन्थ एक समान हैं।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसके नायक **फर्जन्दे दौलत मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम नहीं है,** जिन्होने आमेर पर शासन किया था और जो सम्राट् अकबर के प्रधान सेनापति थे। ये मानसिह नामक कोई अन्य ही शासक हैं। केवल भ्रातिवश मूल ग्रंथ को देखे बिना ही उपर्युक्त तीनो उद्धरण प्रस्तोताओं का किया गया निर्णय हैं। केवल ग्रन्थ के नाम से अनुमान कर इसका प्रचार किया गया है, जो सर्वथा गतानुगतिक है। अपने मत की पुष्टि में मैं प्राप्त उक्त ग्रन्थ के उद्धरण उपस्थित कर देता हूं, ताकि यह सदेह या भ्रान्ति न रहे।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में निम्नलिखित पद्य है-

'श्रीमान् दर्शनसिंह - भूपतिरभूदीशानुरक्तप्रजः
शाकद्वीपिपुरन्दरस्य तनयः प्रख्यातकीर्तिव्रजः ॥
अश्रान्तं तपति प्रतापतपते यस्यारिपाटच्चरा·
सूत्थाताः सुतरामपीह नितरामासन्न लब्धान्तरा. ॥१॥'

इसके अतिरिक्त तृतीय पद्य है-

''राजा बहादुर इति प्रथितोपनामा
द्विण्मोदनीयपरिवृढेषु महोग्रधामा।
सामन्तराडजनि दर्शनसिंह भूपः
तस्याधुनाध्यवनि कश्चन नानुरूपः ॥३॥'

इनका साराश यह है कि शाकद्वीपी वशीय 'राजाबहादुर' नामक किसी राजा के दर्शनसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसने 'सूर्यकुण्ड' नामक स्थान का निर्माण करवाया था, इसके अतिरिक्त अयोध्या को जिसने सुन्दर रूप प्रदान किया था, कई कूएँ खुदवाये थे, अनेक तालाब बनवाये थे-

''येनेदृशं विरचितं पृथु सूर्यकुण्डं
संदृश्य मत्सरवतां न विभाति तुण्डम्।
मत्कूटखे यवनदुर्गमपास्त गंज
प्रासादहर्म्यरुचिरं खलु साहगंजम् ॥९॥
यस्याधिकारिभिरकारि नरैर्नवीना
ऽयोध्या नवैः सुरगृहैर्नवता विहीना।
कूपाः कृताः पृथुतराः शतशस्तडागाः
स्वाढ्यास्तथा बहुतरै· वसुभिर्वराकाः ॥ १० ॥''

वह हरिपाल आदि प्रमुख सैनिकों के साथ सम्राट् के आदेश से विपरीत युद्ध मे मारे जाते हुए शिवदीनसिह की नगरी की ओर चल पडा।

'सैन्यैर्निजैस्स हरिपालमुखैः पुरीतं
सम्राड्निदेश - वसतः समिति - प्रतीपम्।
ध्वान्तं हि यः परिभवाच्छिव - दीनसिंह
भीरी नृपं स्फुटभयाद् वरियारसिंहम् ॥११॥'

इसने नेपाल देश पर भी चढाई की थी।

'नेपालदेशमधिगम्य हताः कियन्तः
सम्राट् गुरुण्ड विषयात् कतिचित् कियन्तः।
येन प्रसह्य विधृताः क्षितिपाल लोके
नैतत् प्रतापलवमप्यवनौ विलोके ॥ १८ ॥'

एक पद्य में लक्ष्मणपुरी का भी उल्लेख है-

''तेनादृते रिपुसमूहमधिस्वदेशं
नेपालराट् किल विदंकृतवान्निदेशम्।
यास्यामि लक्ष्मणपुरीमिति केप्यधीशं
सम्भाव्य सागसममुं विदधुर्महीशम् ॥२०॥''

इनके बडे भाई का नाम **'बखतावर सिंह'** था, जो सदा यवनाधिप के साथ ही रहे। यह यवन बादशाह कौन था, इसका नामोल्लेखन नही है-

''यस्याग्रजः स बकतावरसिंह नामा
राजापि वैरितिमिरे परमुष्णधामा।
तस्थौ सदैव यवनाधिपसन्निधाने
माने निजेधिकमनुक्षणमेधमाने ॥ ३७॥''

राजा दर्शनसिह के पुत्र का नाम आराधीनसिंह था। इनके दो पुत्र हुए थे, जिनमे ज्येष्ठ का नाम रघुवरदयालसिह व कनिष्ठ मानसिह नामक थे।

''यस्माद् आराधीनसिंहः प्रजज्ञे नित्यं भूपैर्यस्य नाज्ञावजज्ञे।
विद्वद्गोष्ठ्यां सर्वदेवाऽविनीतः क्षोणीशाद् यौ विष्टपेयः प्रतीतः॥
अथ नृपतिः सुषुवेन्यत्पुत्रद्वन्द्वं यशोभिरनुरूपम्।
'रघुवरदयालसिंहं निखिलगुणं मानसिंहमपि भूपम् ॥३९॥'

इनका वर्णन करते हुए लेखक जगन्नाथ ने मानसिंह की स्तुति प्रारम्भ की है। मानसिंह के विषय मे एक पद्य है-

'साकेताद्व्रजति हरेः पुरं नरेशे भूरेषां प्रभृतिरागते स्वदेशे।
अक्रुध्यत् किमपि मानसिंह भूपः प्रत्यर्थिक्षितिपगणेषु कालरूपः ॥४७॥'

''इस प्रथम खण्ड के अन्त में एक पद्य इस बात की सूचना देता है कि किसी राजा के पत्र से वस्तुस्थिति जानकर अन्य कार्यो से अपनी निवृत्ति कर मानसिंह शत्रु की राजधानी की ओर सेना सहित चल पडा।

''अवेत्यावनीपस्य पत्रात् प्रवृत्तिं
विधायान्यकार्य्यात् स्वकीयां निवृत्तिम्।

ययौ मानसिहः स्वसेनास्तदानीं
समादाय सम्राट् अरे राजधानीम् ।।५६ ।।''

इस प्रकार प्रथम भाग मे महाराज मानसिह के जीवन से सबद्ध कोई भी आख्यान नहीं है। आमेर के राजा मानसिंह की वशावली इन मानसिंह से सर्वथा भिन्न है। इनकी वशावली है- **राजा - बहादुर - दर्शनसिंह - आराधीनसिंह - रघुवरदयालसिंह और मानसिंह** । जबकि आमेरपति मानसिह की वशावली इस प्रकार है-

रत्नसिंह-आशकरण-भारमल-भगवन्तदास-मानसिंह प्रथम।

इसके अलावा भी आमेराधिपति मानसिह प्रथम कछवाहा कहलाते थे जबकि ये मानसिह शाकद्वीपी वंश के हैं।

इन कारणो से कहा जा सकता है कि इस '**कीर्तिमुक्तावली**' के नायक शाकद्वीपीय मानसिंह है, न कि आमेराधिपति मानसिह कछवाहा । इतना साम्य अवश्य है कि दोनों ही मानसिंह मुगल सम्राट् के अधीन कार्य करते थे। एक तो अकबर के सेनापति थे और दूसरे के साथ सम्राट् या बादशाह का नाम नहीं दिया गया है।

द्वितीय भाग में यह सन्देह सर्वथा निर्मूल हो जाता है, जहां आमेराधिपति मानसिंह के साथ इन मानसिह की समानता बताई जाती है। पद्य है-

'आमेरीण - मानसिंह तुल्यं
द्विर्क्षोणीभृच्छोणितैः क्लृप्तकुल्यम्।
म्लेच्छःसम्राणमानयन् मानसिंहं
क्ष्मां संरक्ष्यां सेधयत्वेन सिंहम् ।।६५ ।।''

एक पद्य में माधवसिह का नाम भी आया है। यों श्री माधवसिंह मिर्जाराजा मानसिंह के सहोदर कनिष्ठ भ्राता थे। पद्य है-

'अष्टदिनानि बलैर्बहुलैः सहसा युयुधे
माधवसिंह महीपतिरित्थमथो बुबुधे।
मन्तुमवेत्य ममैव नृपेण पुरी झझधे
तं शरणं करवैत्कनकेन तथा शुशुभे ।। ७० ।।

श्री जगन्नाथ कवि ने लिखा है कि काव्य रसिक **श्री भवानीदत्तसिंह** ने कवि की अन्य कृतियो के सुनने की इच्छा व्यक्त की और उन्हे सुनते हुए उस कवि की बहुत प्रशंसा की थी-

भवानीदत्तसिंहः काव्यदक्षः प्रकाण्डं मत्कृतिं शृण्वन् विलखः।
अवोचत् सत्कविं राजाधिराजं सुधीरर्हत्यसावस्मत्समाजम् ॥८७॥

इसके अतिरिक्त कुछ नाम और भी है, जिनका उल्लेख मानसिह कछवाहा के साथ सगत नही-

'यः पुरा न निरयाद् हरिपालः
तं निनाय किल लोटनलालः।
आवृतं नृपभटैः प्रतिहारं
सज्जितं निजचमू परिवारम्॥९४॥"
श्रीमज्जगाम डियरमति निम्नखेयां
वीराभिमालवदधीश्वरवर्य्य हेयाम्।
भूमीकृतां सदसि शौर्यवतां गणेयां
नैस्त्रिंशिकैः प्रविदितैः प्रथितामजेयाम् ॥९८॥'

सपूर्ण ग्रथ में से कुछ उद्धरण यहां प्रस्तुत कर रहे है, जिनमे अनेक ऐसे नाम हैं जिनका कछवाहा मानसिह के इतिहास में कहीं उल्लेख नही मिलता। यद्यपि मानसिंह का नामोल्लेखन कई स्थानों पर हुआ, परन्तु वे मानसिंह इस मुक्तावली के नायक हैं-

(कोष्ठकों मे पद्य सख्या दी गई है-)

(१) **यः कश्चिदेति सहसा डियरामधीशः।(१००)**

(२) **तत्र यः कृतरणार्णवगाहः स न्यवेशि नृप रोसनसाहः।(१०२)**

(३) **निवेशान्मानसिंहाद् गन्तुकामापि त्रस्यन् स पृथ्वीपाल नामा।(१०६)**

(४) **बलममितमियाय राजकीयं भदरगढं निरोप्य वीक्षणीयम्।(१०८)**

(५) **कृष्णदत्त नृपतिर्मितगायां दृप्तवान् क्वचिदनदूरनगामाम्।(१२२)**

(६) सति धरणिमहेन्द्रे नानपारां यियासो-

गिरितटमधितस्थौ कल्लनस्तद् भियासौ ।(१२५)

(७) चिरायापराधाद् जगन्नाथसिंहःत्रणिन्ये यथैव रजानन्दसिहः ।।

पराभूय सम्राट् द्वयस्यापि सेना· प्रभूतःप्रगल्भाः प्रगल्भोतमेनाः।(१२६)

(८) जगन्नाथसिंह रजावन्दसिंहः क्षम· कः प्रहर्तुं विना मानसिंहम् ।(१२८)

(९) चरैर्मानसिंहेन निर्द्धारिते रजावन्दसिंहं खेलमारिते ।

शिरः प्रापितः म्लेच्छराज·पुरं तदीयं तदाशिश्रियद् गोपुरम् ।(१३३)

(१०) जगन्नाथसिहः सुजीवन् गृहीतः प्रयत्नात्पुरं म्लेच्छराजस्य नीत· ।

यदापे दुरापस्स तेनाविपन्नस्तदा मानसिंहे भृशं स प्रसन्नः ।(१३४)

तृतीय प्रभाग मे केवल २० पद्य है। इसमें मानसिह की स्तुति प्रस्तुत की गई है। आमेराधिपतीश्वर मानसिंह के साथ उनकी समानता बतलाई गई है। कुछ पद्य है-

'आमेरीशन्मानसिहादहीनस्मद्धामात्तुल्यनामा नवीनः।
प्रीणातिस्म म्लेच्छसभ्राजमाज्ञां कुर्वंच्छश्वत् पश्यतामेव राज्ञाम् ।(१३६)
श्री मानसिंहः समिदप्रमीलः संमानसिंहेन समानशीलः।
स्वास्थ्यं प्रणिन्ये यवनाधिराजे प्रणीय तत्तद्विषतां समाजे।।(१३७)
अधिनृपहितमुम्झिमप्रसादः स जयति मन्त्रिषु लक्ष्मणप्रसादः।
सकललिपिकरेषु वैजनाथः सपदि चकास्ति महीभुजा सनाथः।।(१४०)

श्री मानसिह ने स्वय एक पंचदशी का सस्कृत मे निर्माण किया था। प. जगन्नाथ ने लिखा है-

'अथ मंजु संस्कृतमण्डिता कवितानुरंजित पण्डिताः।
अविमुक्तपंचपदशीकृता कवि मानसिंह-महीभृता ।।१४२।।'

इन्होने 'यन्त्रराज' का निर्माण भी करवाया था और सभी ज्योतिषियो को दानादि से सन्तुष्ट किया था। सगीत के भी आप अत्यन्त प्रेमी थे और उनका भी

अत्यन्त सम्मान किया करते थे-

"श्रीमान् व्यधान्निजधिया खलु यन्त्रराजं
सन्तोषयन् सकलदैवविदां समाजम् ।।
तन्त्रीषु वादनविधावपि च प्रभेदां-
स्मद्वादकाद्वहुतरानधिगम्य भेदान्' ।।१४४।।

ग्रथ के अन्त में पद्य के पश्चात् जो गद्यमयी पुष्पिका है, उससे यह स्पष्ट है कि यह 'कीर्ति मुक्तावली' शाकद्वीपिवशावतस मानसिंह के कीर्ति विस्तरण में लिखी गई है -

'प्रभोर्मानसिंहस्य बोद्धुर्मया जगन्नाथ नाम्ना निबद्धाशया।
गुणैर्गुम्फिता कीर्तिमुक्तावली कवेः कण्ठभूषा यथैकावली ।।१५३।।'

'इति श्रीमदावसथिक गुरुप्रसादात्मज जगन्नाथेन विरचिता श्री श्री श्रीमहाराजाधिराजस्य शाकद्वीपिवंशावतंसस्य मानसिंहस्य कीर्तिमुक्तावली शुभं भूयात्। लिखितमिदं पुस्तकं मथुराप्रसादमिश्रेण । श्री संवत् १९१९ ज्येष्ठ शुक्लाष्टम्यां गुरुवारः रचितायाम्। श्री कृष्ण है।"

इन सभी प्रमाणो के अतिरिक्त एक प्रमाण और भी महत्त्वपूर्ण है जो इन दोनो के भेद को उपस्थित करता है। वह है एक पद्य , जिसके द्वारा मानसिह का मृत्यु काल प्रकट होता है- "वैक्रमीये-स. १९२७।"

'सप्तद्व्यङ्कशशाङ्कवत्सरवरे याम्यायने याम्यभे
ऽथौर्जे मासिऽपराण्हसमये भौमे द्वितीयान्विते ।।
कीर्तिम्भूमितले निधाय महतीमर्धासनस्पर्द्धया
प्रग्राम्णः स जगाम धामविजयी श्री मानसिंहो नृपः ।।"

इसका अर्थ है-सप्त=७, द्वि=२, अक=९, शशाक=१ अंकानां वामतो गति = १९२७ सवत्सर, दक्षिणायन ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्ष अपराह्ण समय, मंगलवार, द्वितीया तिथि को श्री मानसिह नृपति अपनी कीर्ति को इस पृथ्वी तल पर स्थापित कर इन्द्रासनार्द्ध की प्राप्ति कामना से परम धाम चले गये।

बादशाह अकबर के सेनापति कछवाहा नरेश म.मानसिह प्रथम ने देवलोक

प्रस्थान-' मिति मार्गशीर्ष सुदि ८ सवत् वि.१६७१ तारीख जुलाई सन् १६१४ को किया था। विद्याभूषण श्री हरिनारायण जी ने इसके जीवन पर जो लेख लिखा था, जो बिडला कालेज पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, मे उपर्युक्त घटनाओ मे से एक भी घटना नहीं मिलती। फिर सिद्ध है कि ये मानसिंह तो १९वी शताब्दी मे हुये थे और इनका अन्तर भी २५६ वर्ष का है। अत पूर्वोक्त तीनों विद्वानों का लेख प्रामाणिक नहीं है। यह भ्राति पर लिख दिया गया है।

'विश्वम्भरा' त्रैमासिक
शोध पत्रिका, बीकानेर
वर्ष ३ अंक ४ में
प्रकाशित (वर्ष १९६६ ई)

***

जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन-

मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम एवं तत्कालीन विद्वान्

मिर्जाराजा महाराज जयसिह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम आमेर (जयपुर) के सिहासन पर बैठे। इन्होने अपने पिता के समय से वर्तमान सस्कृत भाषा के विकास मे वृद्धि की । सस्कृत भाषात्मक रचनाओ की दृष्टि से यह समय आमेर के इतिहास मे स्वर्णकाल माना जा सकता है। इनके सस्कृत भाषात्मक प्रेम एव तिरस्कृत विद्वानो के सम्मानित करने के कारण ही यह धारा अविरल गति से विकसित हुई। इनके समय में (१६६७-१६८८ ई.)विद्यमान संस्कृत के विद्वानों के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर यहाँ प्रकाश डाल रहे है।

१. श्रीगणेश दैवज्ञ-

आप ज्योतिषशास्त्र में मुहूर्त्त विषय के प्रकाण्ड विद्वान् थे और इनका रचनात्मक कार्य ज्योतिषशास्त्र के फलित एवं मुहूर्त्त विभाग पर उपलब्ध है। आप श्री रामसिह प्रथम के समय आमेर आये थे तथा 'मुहूर्त्ततत्त्व' नामक ग्रन्थ की टीका का प्रणयन इन्हीं के आश्रय में रह कर किया था, जिसकी मूल पाण्डुलिपि-'पोथीखाना' जयपुर मे सुरक्षित है। इसमें विवाह, यात्रा, आदि विषयों के मुहूर्तो पर विचार है।

२. श्रीदलपतिराय-

कहा जाता है कि श्रीदलपतिराय नामक विद्वान् ने मिर्जाराजा रामसिह प्रथम के आश्रय में रहकर 'राजनीति-निरूपण' नामक एक पारिभाषिक शब्दकोष का निर्माण

किया था, जिसमे ३६ कारखानों के अतिरिक्त प्रचलित पारिभाषिक शब्दो का संस्कृत मे लक्षण प्रस्तुत किया है। 'नृसिहप्रसाद' नाम से प्रकाशित कुछ धर्मशास्त्र-विषयक ग्रन्थो के एक भाग-'प्रायश्चित्तसार' की भूमिका में बतलाया गया है कि 'अहमदखान' नामक खान देश का अधिपति था, जो बुरहान खान नामक राजा के वश मे हुआ था। यह खानदेश नामक राजा के वश मे हुआ था। यह खानदेश दक्षिण भारत में विद्यमान 'पारुकिवंश' जिसे फहरत वश कहते है, जिसकी सत्ता 'आनन्दवल्ली- ग्राम' में मानी गई है, प्रसिद्ध था। इन्ही अहमदशाह के उस्ताद 'महफूज खा' के समीप विद्यमान (१)अदावस्सहलतीन और (२) पिफ्ताहुजवाकित' नामक दो राजकीय पुस्तकालय की पुस्तकों को पढ कर यह ग्रन्थ 'राजनीतिनिरूपणम्' बनाया था। श्री एम. कृष्णमाचारियर ने अपने 'ए हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर' मे लिखा है कि यह वश अहमद शाह के समय ही सम्राट् औरगजेब के आधीन हो गया था, अत· जब अपने आश्रयदाता का स्वतन्त्र व्यक्तित्व नही देखा तो श्री दलपतिराय यहाॅ से दिल्ली पहुॅचे और वहीं से सम्मान 'आमेर' पहुॅच गये होगे। इन्ही के साथ एक विद्वान् सगीताचार्य 'श्री पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण ' भी वहाॅ पहुॅचे थे। अत ये विषय सामग्री अहमदशाह के उस्ताद के पास से ग्रहण कर उसका सस्कृत रूप महाराज मानसिह प्रथम के आश्रय मे प्रस्तुत कर सके थे। कहा गया है कि यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि यह 'शतक' कहलाता है तथापि इसमें शताधिक पद्य है। कुल पद्यो की सख्या २०६ मानी गई है। अन्तिम पद्य है -

'एषा पद्धतिराख्याता राजरीतिबुभुत्सया।
गभीराद्राजसेवाब्धेर्द्रोणपाकाच्च सिक्थवत्॥'

इति यवनपाठानुकृत्या राजनीतिनिरूपण नाम शतक विरचितम् दलपतिरामेण॥'

३. राजोपयोगिनी पद्धति-

महाराजाधिराज श्री रामसिंह प्रथम की स्वयं लिखित रचना 'राजोपयोगिनी पद्धति' एक महत्त्वपूर्ण रचना मानी गई है। इसका उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। श्री जे.एम.घोष, रिटायर्ड प्रोफेसर-इतिहास महाराजा कॉलेज, जयपुर ने 'पोथीखाना' शीर्षक लेख में जयपुर के राज्कीय पुस्तकालय का अन्वेषण कर उल्लेख करते हुए इस

पुस्तक पर भी अपना मन्तव्य प्रकट किया है। वे इसे 'राजधर्म' से सबधित रचना बतलाते हैं । इसमें सामान्यत· राजाओं के कर्तव्यो का उल्लेख एव उनके विशेषाधिकारों का विवेचन है। यह रचना अभी तक अप्रकाशित है।

('पोथीखाना' के सर्वेक्षण के उपरान्त प्रकाशित सूचीपत्र 'लिटरेरी हेरीटेज ऑफ दी रूलरस् ऑफ आम्बेर एण्ड जयपुर' मे प. गोपालनारायण बहुरा ने अपनी भूमिका के पृष्ठ ४५ पर इस 'राजोपयोगिनी पद्धति' पर लिखा है- One more work Rajopayogini Paddhati dealing with the daily ritual to the performed by a king is ascribed to him It begin-

'विनायकं विभुं रामं गुरुं नत्वा समासत.।
नित्यानुष्ठानसरणिं स्वोपयोगितयाऽऽरभे ।। १ ।।'

अन्तिम पद्य है-

'दृष्ट्वा भाष्यं निबन्धांश्च मन्वादींश्च स्मृतिरपि।
पद्धति रचिता सेयं नाम्ना राजोपयोगिनी ।।'

इति श्रीमहाराजाधिराज श्री जयसिंहदेवात्मज श्री रामसिहदेव विरचिता 'राजोपयोगिनीपद्धति' समाप्तिमगात्। संवत् १७४१, ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठ्या लिखितमिदं पुस्तक श्रीरामसिंहदेवाज्ञया श्रीरामनाथेन।' विस्तृत विवेचन के लिए पोथीखाने से सम्पर्क किया जाना चाहिए - सम्पादक)

४. शंकर भट्ट-

गौडवशोत्पन्न , विद्वान् एव शास्त्रवेत्ता श्री अनन्तभट्ट के पुत्र श्री शकर भट्ट ने **'वैद्य विनोदसंहिता'** नामक एक आयुर्वेद का ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ में जो, **क्षेमराज श्रीकृष्णदास** द्वारा बंबई से सवत् १९७० में प्रकाशित किया जा चुका है, चरक एव सुश्रुत-सरीखे प्रकाण्ड आयुर्वेदज्ञाताओं के उद्धरण उपलब्ध होते हैं। यह ग्रन्थ आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थो की सहायता से निर्मित्त है। इस ग्रन्थ के टिप्पणीकार श्रीगदाधर त्रिपाठी ने इनका परिचय एक ही पद्य द्वारा प्रस्तुत किया है।

'श्रीगौडवंशोद्भव- शास्त्रवेत्ता,
ह्यनन्तभट्टो मुखजाग्रगण्यः।
तस्यात्मजेनाथ सुशंकरेण,
ग्रन्थः कृतो वैद्यविनोदनामा।।'

टिप्पणी का समय सवत् १९५५ दिया गया है। जैसा कि उल्लेख मिलता है-

'शरेषुनन्देन्दुमिते हि वैक्रमे (वर्षे),
शुचौ शुक्लशरे भृगोर्दिने।
टीका कृतेयं हि गदाधरेण,
वाचा नृणां वैद्यविनोदग्रन्थे ॥'

इसका आशय स्पष्ट है कि शर (५) इषु (५) नन्द (९) इन्दु (१) मित अर्थात् अंकानां वामतो गति ' के अनुसार १९५५ विक्रम सवत ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्ष ५ तिथि तथा भृगुवार के दिन यह टीका बनाई गयी थी। ग्रन्थारम्भ मे मगलाचरण के पश्चात् स्वय ग्रन्थकार ने अपना परिचय प्रस्तुत किया है-

'अनन्तनामा हि दिगन्तकीर्तिः श्रीगौडवंशप्रथितप्रभावः।
तदात्मजः शंकरनामधेयः शास्त्रेषु काव्येषु पर· प्रवीणः ॥२॥
राजाधिराजो जयसिंह वीरः ख्यातः पृथिव्यां महनीयकीर्तिः।
प्रतीपभूपालनिवारणेन प्रतापपुञ्जीज्वलदग्निकल्पः ॥३॥
तदात्मजो रामसमानसारो नामा चिरायुर्नृपरामसिंहः।
रूपेण दानेन पराक्रमेण तिरस्कृतानङ्गसुरद्रुमेन्द्रः ॥४॥
दानं यदीयं परिकल्पितं द्रुमाः दृष्ट्वैव सेन्द्राः सुरपादपद्माः।
मानं परित्यज्य विमृश्य बुद्ध्या स्थितिः शुभा नेति दिवं प्रयाताः ॥५॥
क्षेमस्य योगस्य च मे-विधातुस्तस्याज्ञया ग्रन्थकृतादरेण।
ये ये प्रयोगा बहुशोऽनुभूतास्ते ते मया संलिखिता विमृश्य ॥६॥
हारीतपाराशरसुश्रुतानां संगृह्य सारं विधिवत् समासात्।
सौख्याय रोगार्दितमानवानां विधीयते वैद्यविनोद एषः ॥७॥'

इन पद्यों की भाषा अत्यन्त सरल है। अतः आशय स्पष्ट है कि राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के आश्रय में यह ग्रन्थ लिखा गया है। यहाँ एक सदेह उपस्थित होता है। जयपुर में दो जयसिंह हुए है, जिन दोनो के पुत्रो का नाम भी रामसिंह ही था। प्रथम तो मिर्जाराजा रामसिह (१६२१-१६६७ ई.) के पुत्र मिर्जाराजा रामसिह प्रथम (१६६७-१६८९ ई.) और द्वितीय सवाई जयसिंह तृतीय (१८१८-१८३५ ई.) के पुत्र सवाई रामसिह द्वितीय (१८३५-१८८० ई.) । यह ग्रन्थ किस जयसिह के पुत्र रामसिंह के आश्रय मे बना था- यह निर्णयार्ह है। इसका निर्णय यही है कि यह प्रथम जयसिंह के

पुत्र प्रथम रामसिंहकालीन रचना है। इसका कारण है -'लघनपथ्यनिर्णय' नामक एक आयुर्वेद का ग्रन्थ, जिसका प्रणयन स. जयसिंह द्वितीय (१६९९ से १७४३ ई.) के आश्रय में हुआ था। इस ग्रन्थ में 'वैद्यविनोद' का नाम कई स्थानो पर मिलता है। अत इनका समय मिर्जाराजा रामसिह के साथ निश्चित किया जा सकता है।

वैद्य विनोद संहिता-

इस ग्रन्थ में १६ उल्लास तथा १७४१ पद्य है। इसमें ज्वर-लक्षण, निदान, भेदोपभेद, वातरोग, शूलनिदान, मूत्रकृच्छ्रनिदान, मेदोनिदान गलगडरोग, मानसरोग-निदान, कुष्ठरोग-निदान, अजगल्लिकादि-निदान, कर्णरोग-निदान आदि अनेक महत्त्वपूर्ण रोगों के निदान वर्णित है। ग्रन्थान्त मे निम्नलिखित पुष्पिका मिलती है -

'भट्टानन्तात्मजस्येयं शंकरस्य कृतिः सताम्।
आनन्दयतु चित्तानि चिकित्सासिद्धिदायिनी॥ १९२॥
श्रीमद्-भूपतिरामसिंहवचानाद् ग्रन्थो मया निर्मितः।
यस्मिन् रोगविनिश्चयःप्रकथितः प्रोक्ता चिकित्सा क्रमात्॥
योगो वृष्यतमो रसायनकरो संशोधनादिर्विधिः
वेत्तिर्नावनधूमपानकवला व्योषादिसंज्ञास्तथा॥१९३॥
शशि (१)वेदा(४)द्रि (७)भू (१)संख्यैर्युतेयं (१७४१) संहिता शुभा।
श्लोकैर्वैद्यविनोदाख्या षोडशोल्लासनिर्मिता ॥ १९४॥

इनका आशय स्पष्ट है।

५. श्री हरिजीवन मिश्र-

श्री एम. कृष्णमाचारियर ने अपने इतिहास (दी हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर) में इनका परिचय निम्नलिखित रूप मे प्रस्तुत किया है-'हरिजीवन मिश्र वाज दी सन ऑफ लालमिश्र एण्ड वाज पैट्रोनाइज्ड बाइ ए किंग नेमूड रामसिह, ही लिवूड इन दी सेवन्टीन्थ सेन्च्यूरी ए.डी. ऑफ हिज विजयपराजित नाटक इज डेटेड सवत् १७३०, ही रोट प्रहसन प्रसंगिका , सहृदयानन्द, विबुधमोहन एण्ड अद्‌भुत तरग।(पृ.७०)' इसका आशय स्पष्ट है कि लालमिश्र के पुत्र श्रीहरिजीवन मिश्र ने श्री रामसिंह नामक किसी राजा के आश्रय में रहकर १७वीं शताब्दी में उपर्युक्त ५ नाटक व

प्रहसन लिखे है। इसी इतिहास के सूचीक्रम (इन्डेक्स)मे एक नाटिका-'प्रभावली' का उल्लेख भी मिलता है, जिसकी रचना युवराज रामसिंह के पास सन् १६२५ में हुई थी।

अनूप सस्कृत पुस्तकालय, लालगढ पैलेस, बीकानेर में श्री हरिजीवन मिश्र की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं-

क्र.	क्रमाङ्क	रचना	समय	विवेष विवरण
१	३१२२	अद्भुत तरग	रिटन अन्डर दी आर्डर्स ऑफ महाराजाधिराज श्रीराम-सिंह पुत्र श्री जयसिंह ऑफ मानसिंह वश,	हरिजीवनमिश्र पुत्र लालमिश्र पुत्र वैद्यनाथ मिश्र स. १९७६ ई.१९१३ रिटन एट नागौर
२	३१५१	घृतकुल्यावलि	—	७ पेज (१-९) फॉइल ५-६ मिसिंग
३	३१६३	पलाण्डुमण्डन प्रहसन	—	१२ पेज
४	३१७१	प्रासंगिक प्रहसन	—	७ पेज
५	३२००	विबुधमोहन	—	८ पेज
६	३२०२	सहृदयानन्द प्रहसन	—	१२ पेज

इन रचनाओ के अतिरिक्त **'प्रभावली नाटिका'** राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर में १२२४८ क्रमांक (हस्तलिखित ग्रन्थ सग्रह) पर उपलब्ध है। केवल 'विजय पारिजात नाटक' उपलब्ध नहीं हो सका। (इसकी प्रति अब पोथीखाने में उपलब्ध हो गई है- ग्रन्थाङ्क ९९ पृ. २८५ सूचीपत्र लिटरेरी हेरीटेज ऑफ दी रूलर ऑफ आम्बेर एण्ड जयपुर- जी.एन. बहुरा - सम्पादक)

इन रचनाओं में से (१) अद्भुत तरग (२) सहृदयानन्द प्रहसन एव प्रभावली नाटिका मानसिह वश के मिर्जाराजा जयसिह प्रथम के पुत्र महाराज रामसिह प्रथम के समय (आश्रय में) लिखी गई है, क्योकि इनमे उनका सकेत है। उपलब्ध सभी रचनओं का सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करते है-

१. अद्भुत तरंग-

प्रस्तुत रचना ३५ पृष्ठों का एक प्रहसन है। इसे नाटक की सज्ञा दी गई है। श्री धनञ्जय ने दशरूपक में रूपक के १० भेद किये हैं, जिनमें प्रहसन भी एक भेद है। 'रूपक' के लिए प्राय·लोग नाटक शब्द का ही प्रयोग करते हैं। प्रस्तावना मे सूत्रधार कह रहा है-

'सू.- अलमतिविविधोपभासैः प्रायोऽद्यानेकजन्मार्जितपुण्यपरम्परा-जनित-भाग्योदयादिकमभ्युदयाद्यमस्मदादेः (?) यतो महाराजाधिराज श्री रामसिंह तट्या हरि-जीवनमिश्रविरचितेनाद्भुततरंगनाम्ना प्रहसनेन नर्तितव्यमिति सहृदयैरादिष्टोऽस्मि।'

यह हास्यरस-प्रधान नाटक है, जैसाकि प्रथम अक की समाप्ति पर उल्लेख मिलता है। **'इति श्री हरिजीवनमिश्रविरचिते अद्भुततरंगनाम्नि प्रहसने मन्दहास्योद्गमः प्रथमोङ्कः।'**

इसमें तीन अक हैं। ग्रन्थान्त मे पुष्पिका है-

'इति श्री सार्वभौम महाराजाधिराज श्री मानसिंह-वंश श्री महाराजा जयसिंह पुत्र सकलविद्यारसिक-श्रीमहाराजाधिराज श्रीरामसिंहाज्ञया हिरण्यगर्भगौडसकलविद्या-विशारद-श्रीवैद्यनाथमिश्र-तत्पुत्र-पंडितमंडन-श्रीलालमिश्रात्मज श्रीहरिजीवनमिश्रेण विर-चितेऽद्भुततरंगनाम्नि प्रहसने मन्दहासस्तृतीयोऽङ्कः समाप्तः। संवत् १९७३ लिखितम्...

उपर्युक्त अवतरण से ग्रन्थकार एव आश्रयदाता का पूर्ण परिचय उपलब्ध हो जाता है।

२.सहृदयानन्द प्रहसन-

यह भी हास्यरस-प्रधान एक लघुकाय प्रहसन है। इसमें अभिधा, लक्षणा एव

व्यञ्जना आदि वृत्तियो को पात्र बना कर परस्पर वाद-विवाद उपस्थित किया है। ग्रन्थ में 'प्राकृत' का भी पर्याप्त प्रयोग है। ग्रन्थारम्भ में भगवान् काम का स्मरण है-

'जयति कुसुमबाणप्राणसन्मानकेतु-
र्मसृणनयनमीनप्रोल्लसद् विभ्रमाद्यैः।
विविधरससमीरैः कम्पिताभाग्यभाजां
सुमतिततिरतिर्या सैव सर्वत्र लोके ॥१॥'

सूत्रधार कहता है कि आलकारिको ने इस परिषद को वचित कर रखा है। यह नायिका विलक्षणा का स्मरण करना चाहता है कि भरतपुत्र 'कमलपाणि' उपस्थित होता है। यह कुछ कहना चाहता है, उसी समय विदूषक अभिधा, लक्षणा, व्यजना, एव स्वीयादि नायिकाओं सहित उपस्थित होता है। 'कमलपाणि' चला जाता है। ये सभी पात्र प्राकृत बोलते हैं। अन्त मे प्रतिहारी को सकेत करते हुए 'नेपथ्यध्वनि' होती है, जिसमे म. रामसिह की आखेटक्रीडा का उल्लेख है। **'रे रे प्रतीहारा , श्री महाराजाधिराज -रामसिंह इदानीं आखेटकक्रीडां कृत्वा मन्दिरे समायातीति विधीयतां डाकिनीसमाजः...........'** और नृत्यादि का विधान है। इस प्रकार उपसहार कर भरतवाक्य का उच्चारण करते हुए सभी पात्र चले जाते हैं। इसमे अभिधा, लक्षणा, एव व्यञ्जना का परस्पर् शास्त्रार्थ भी सक्षेप मे बतलाया गया है।

३. प्रभावली नाटिका-

यह एक शृगार-प्रधान नाटिका है। यह सवत् १७५२ में लिखी गई प्रति है। ६१ पत्रात्मक यह रचना म.रामसिह की आज्ञा से लिखी गई है। मगलाचरण के पश्चात् सूत्रधार कहता है -

'अथाहं तर्कयामि यदेतो दिक्कालस्य सिद्धसमृद्धादराः सदस्यनृपाः हरिजीवनमिश्रेण श्री महाराजरामसिंहस्य स्वान्तप्रोत्साहनार्थं शृंगाररसपरिपूर्णा महाप्रेम्णा प्रकाशिता प्रभावली नाटिका, तस्या अभिनयाय समाज्ञापयिष्यन्तीति।....'

नायक राजा प्रभावली नामक नायिका मे अनुरक्त है एव उसे प्राप्त कराने के लिए सतत प्रयत्नशील है। उसके वियोग मे वह कृशकाय हो रहा है। प्रस्तावना के

पश्चात् 'सर्वतोभद्र' नामक एक पात्र आता है और वह 'विष्कभक' द्वारा उसकी दशा का वर्णन करता है। इसमे ४ अक है। नाटकीय सधियॉ,विष्कभक, प्रवेशक, चूलिका, प्रस्तावना आदि का यथोचित प्रयोग है।'चित्रमाला' नामक एक सेविका राजा की परिचारिका है। विदूषक भी समय-समय पर राजा के साथ उपस्थित होता है। राजा का कथन सरल एव भावपूर्ण है-

'विरहव्यथयातिविह्वलाङ्गः,
कथमस्मि समये स्थितो भवेयम्।
बत तत्र विलम्बितो वयस्यो,
विधिरेष प्रतिकूल एव सत्यम्।।'

स्त्रीपात्रो मे अश्विनी, रेवती, कन्येश्वरी, चित्रमाला, चिन्तामणि तथा प्रभावली मुख्य है। अन्त मे राजा का प्रभावली के साथ परिणय हो जाता है। ग्रन्थान्त मे भरतवाक्यानन्तर पुष्पिका भी है-

'इति श्री पाश्चात्यगौडान्वयभूषण श्री वेदवेदान्तसारहारविराजमान-हृदयश्रीवैद्यनाथमिश्र-तत्पुत्र सकलशास्त्रार्थविवेचक-श्रीलालमिश्रात्मज-हरिजीवनमिश्रेण विरचिता प्रभावली नाटिका संपूर्णा । सं. १७५२ श्रावणमासे कृष्णपक्षे द्वितीयायां बुधवासरे लिखितम्।।'

इसके अतिरिक्त जो रचनाएँ है, उनमें श्रीरामसिह के आश्रय का उल्लेखन न होने से यहॉ विवेचन नहीं किया जा रहा है। सभवत. वे इनके आश्रय से पूर्व की रचनायें हों।

३. परमसुख दैवज्ञ-

ये ज्योतिशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होने लोक-हितार्थ पाराशरी ग्रथ का हिन्दी में अनुवाद किया था। इस रचना की एक हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर मे क्रमाक ३२९५ पर उपलब्ध है। इस ग्रथ की अन्तिम पुष्पिका में लिखा है-

'पाराशरी जातकस्य व्याख्यानं भाषया कृतम्।
श्री विष्णुदासस्य गृहे परमानन्दसुखेन च।।

वसुरसरसचन्द्रे (१६६८) चित्रमार्कस्य वर्षे
शिवतिथिसितपक्षे चाश्विने कृष्णपक्षे ॥
लिखितमिदं हितार्थं विष्णुदासस्य पूर्वं
तदनु जयपुराख्ये पत्तने ब्राह्मणानाम् ॥'

इति श्री परमसुखदैवज्ञकृतं - पाराशरी जातकस्य उपदेशभाषनोपाख्यान समाप्तम् ॥

७. विश्वनाथ महादेव रानाडे-

स्वर्गीय डॉ. पी.वी. गोडे, क्यूरेटर भडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना ने एक लेख- 'महाराजा रामसिंह प्रथम. जयपुर के दरबारी कवि- श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे- चित्पावन परिवार (समय-१६५०-१७००ई.) लिखा था, जो स्टेडीज इन इन्डियन लिटरेरी हिस्ट्री भाग-२ सिन्धी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन , बम्बई मे पृष्ठ ३५९-३७१ पर प्रकाशित हो चुका है। इनका गोत्र भारद्वाज था और चित्पावन महाराष्ट्र रानाडे उपनाम था। ये सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे । बम्बई प्रान्त मे रत्नागिरि डिस्ट्रिक्ट के अन्तर्गत विद्यमान 'देवगढ' नामक स्थान पर चित्पावनवशीय ब्राह्मण रहा करते थे। ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनकी एक शाखा कोकण से पूना आई थी। एक चित्पावन ब्राह्मण, जो 'शिवयोगी' के नाम से प्रसिद्ध थे, कोंकण से बंगाल प्रान्तान्तर्गत राढा' नामक नगरी में विद्यमान किसी सिद्ध के पास गये थे, वहॉ से सिद्धि प्राप्त कर श्री शिवयोगी गगापुर पहुँचे । बम्बई प्रात मे रत्नगिरि क्षेत्र में अपने निवास के लिए इन्होनें एक मठ की स्थापना की थी। इसी प्रकार एक अन्य चित्पावन परिवार के श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे बनारस गये थे और वहॉ जाकर श्री कमलाकर एव दुण्ढिराज नामक दो विद्वानों के शिष्य रहे थे। तदनन्तर पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर इन्होंने 'शृंगारवापिका' नामक एक नाटिका की रचना सन् १६६७-१६७५ ई. में सम्पन्न की थी। इन्हीं के परिवार में कई महापुरुष हुए थे, जिनमे से माधव गोविन्द रानाडे का नाम एक जनप्रिय न्यायाधीश के रूप मे प्रसिद्ध है।

श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे की रचनओं के विषय में आफ्रेच्ट का केटेलोगस् निम्नलिखित सूचनाएँ प्रस्तुत करता है-

(१) सी.सी. १-५८४ शृगारवापिका नाटिका, कम्पोज्ड बाई विश्वनाथ भट्ट

(२) सी.सी. १-६६१ शृगारवापिका नाटिका बाई विश्वनाथ १०,२७४

(३) सी.सी. २-१३८ विश्वनाथ भट्ट पुत्र महादेव ,पुत्र विष्णु, पुत्र हरिभट्ट शृङ्गारवापिका नाटिका।

(ही रोट दिस प्ले बाई डिजायर ऑफ किग रामसिह सन ऑफ जयसिंह)

(४) सी.सी.३-१३२ शम्भुविलासकाव्य, बाई विश्वनाथ १०,११४८, ३८५०

(५) सी.सी ३-१२३ विश्वनाथ विथ दी सरनेम रानाडे ऑफ दी चित्पावन फेमेली- शम्भु विलासकाव्य ।

इस सूचना के अनुसार श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे का वशवृक्ष निम्नलिखित रूप में बनता है-

श्री हरिभट्ट रानाडे -> श्री विष्णुभट्ट रानाड -> श्री महादेव रानाडे -> श्रीविश्वनाथ म.रानाडे

श्री एम.कृष्णमाचारियर ने अपने इतिहास मे इनका परिचय प्रस्तुत करते हुए बतलाया है कि श्री दुण्ढिराज के शिष्य विश्वनाथ ने **'शृंगारवापिका'** नाटिका का प्रणयन किया है। इसमे अवन्तीनरेश चन्द्रकेलि और चम्पावती की कन्या कान्तिमती के प्रेम का वर्णन है।

इनकी दूसरी रचना **'शम्भुविलास'** काव्य के सम्बन्ध मे डॉ. इगलिग ने लिखा है कि यह एक भक्ति प्रधान काव्य है और भगवान् शिव को लक्ष्य करके लिखा गया है। इसके तीन सर्ग है। स्वय लेखक ने काव्य के प्रारम्भ मे दो पद्यो द्वारा अपना परिचय प्रस्तुत किया है-

'श्रीषट्केन समन्वितं प्रथमतो नत्वा गुरुं बुद्धिदम्
विघ्नध्वंसपरायणं च हृदये ध्यात्वा गणाधीश्वरम्।।
नानालंकृति जातिरीतिमहितं श्रीविश्वनाथः कविः
काव्यं शम्भुविलासनाम कुरुते संख्यावतां प्रीतये।।१।।
ध्यात्वा मानसपूजनं च विधिवत् कृत्वा कविर्ब्राह्मण·,
श्लोकान् विश्वगुरोः पुरो पठदिमान् श्रीविश्वनाथोनिजाम् ।।

इत्यादि

इस काव्य के प्रथमसर्ग मे ४०, द्वितीय सर्ग मे ८० तथा अन्तिम सर्ग मे १४ पद्य है। अन्तिम पद्य मे उनका वास्तविक परिचय मिलता है -

'मुक्त्वा वैषयिकं सुखं कविरसौ संजातबोधस्ततो,
दृश्यं स्थावरजंगमात्मकमिदं ज्ञात्वा प्रपञ्चं मृषा।
सर्वानन्दगृहं परात्परतरं श्री राजराजेश्वरी-
रूपं ब्रह्म हृदि स्मरन् शिववने काश्यां स्थितिं निर्ममे' ।।१४।।

'अद्वैतसुधा' नामक रचना के लेखक श्री लक्ष्मण पण्डित (१६६२ ई.) इनके समकालीन थे और बनारस में रहते थे। इन्होने अपने दो उपदेशक व्यक्तियो के नाम दिये है। (१) रामाश्रम और (२) उत्तमश्लोक। श्री विश्वनाथ भट्ट के भी दो गुरु थे- (१) कमलाकर और (२) ढुण्ढिराज।

शृंगार-वाटिका-

इसका नाम 'शृगार-वापिका' भी मिलता है। इसके चार अक है। सस्कृत नाट्यसाहित्य की यह एक अनुपम कृति है। इनके प्रपितामह श्री हरिभट्ट, पितामह प विष्णुभट्ट कोविद, पिता महादेव भट्ट सूरि थे,जो चित्पावन परिवार के थे। इसकी कथावस्तु अवन्ती के युवक राजा चन्द्रकेतु का पारस्परिक प्रेम-सबध का वर्णन करती है। निम्नलिखित प्रस्तावना के अश से यह विषय स्पष्ट हो जाता है-

'अद्याहं परममहिम-परमात्मपाद-पद्मालसद्वन्द्वं-निर्द्वन्द्व-भक्तिकरन्दा -स्वादनसदामोदमान-महोदार-मनोमिलिन्देन........ श्री महाराजाधिराज श्री रामसिंह महीपालेनाज्ञप्तोऽस्मीति। भो ! भो ! कमलाकरान्तेवासिन्! श्री विश्वनाथकविविरचिता चन्द्रकेतु-महीपालचरित्रविराजिता शृङ्गारवापिका नाम नाटिकास्तीत्यस्माभिः बहुदिनं श्रूयते।......... अस्मि च तेन चित्पावनजातीयेन निखिलमहाराजसंमानित-हरिभट्ट पंडितप्रपौत्रेण, प्रतिदिनं वेदवेदान्तादिसकल-शास्त्राध्ययनकृतकाल-क्षेपणस्य विष्णु-भट्टकोविदस्य पौत्रेण, निरन्तरं श्रौतस्मार्तानुष्ठानपरायणमिति श्रीमहादेव भट्टसूरिसुतेन श्रीविश्वनाथभट्ट कविना सास्माकमनुग्रहबुद्ध्या पाठिता समर्पिता च।'

श्रीकमलाकर- 'निर्णयसिन्धु' नामक धर्मशास्त्र ग्रन्थ के प्रणेता हैं। इन्हीं के शिष्य श्री विश्वनाथ रानाडे हैं। यह रचना श्री रामसिंह के आदेश से बनी है। इसमे इनके पुत्र कुमार विष्णुसिंह का भी उल्लेख है-

'आर्ये, विष्णुसिंहकुमारं पुरस्कृत्य शृङ्गारवापिका-

भिनयप्रदर्शनार्थं श्री रामसिंह महीपालेनाज्ञप्तोऽस्मीति।'

सूत्रधार ने ६पद्यो में श्री रामसिह प्रथम (आश्रयदाता श्री रानाडे) की वशावली प्रस्तुत की है। इसका प्रारम्भ सूर्यवंशीय, महाराजा मानसिह से किया है और क्रमश जगत्सिह, महासिह, जयसिंह, रामसिह (प्रथम) तक उल्लेख किया है। प्रारम्भ इस प्रकार है-

'आसीत् सूर्यकुले मनूपमनिभः श्रीमानसिंहाभिधो,
राजा रंजितपंडितेन्द्रनिवहः सिंहोपमो विक्रमे।
कीर्त्या सर्वदिगन्तनित्यगतयाप्यासन्नया सर्वदा,
कर्णश्री बलिभोजराजगणना काले पुरा कीर्तितः ॥'

चतुर्थ पद्य में आश्रयदाता के पिता मिर्जाराजा जयसिह का वर्णन है -

'तस्मान्मानिजनादिनाम उदभूद्राज्ञो महामानवान्,
राजा राजदुदारचारुचरिता विश्वम्भराभूषणम्।
नाम्ना श्री जयसिंह इत्यविहिता दानैस्तु कर्णाधिकः
बुद्धया चित्रशिखंडिनन्दनसम· सिंहोपमो विक्रमे ॥४॥

षष्ठ पद्य मे अपने आश्रयदाता श्री रामसिंह प्रथम का वर्णन है-

'सूनुस्तस्य सुधार्णवोदितसुधाधर्मोपमो दीप्तिभिः,
भूमीन्द्रस्य जयन्तवन्नयनयोः पित्रोः सदानन्दकृत्।
राज्यं प्राप्य पुरूरवा इव परः श्रीरामसिंहाख्यया,
यः ख्यातो भुवि विक्रमाश्रितभुजः श्रीपार्वतीपुत्रवत् ॥६॥'

ग्रन्थकार ने अपना परिचय ग्रन्थान्त की पुष्पिका में उपस्थित किया है, जिससे पूर्वोक्त सारा परिचय साम्य रखता है।

अन्यान्य रचनाएँ-

प्रो. श्री जे.एम. घोष ने अपने पोथीखाने के सर्वेक्षण के उपरान्त लिखे लेख में- **'रामविलास'** नामक काव्य का उल्लेख किया है, जिसके २ सर्ग उपलब्ध है। यह रचना 'पोथीखाने' मे विद्यमान है। इसके लेखक एव विषय के सबध मे कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।

(यह रचना अब म्यूजियम ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। इसके अध्ययन से तत्कालीन अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश प्राप्त होता है। विशेषत· यह काव्य महाराज विष्णुसिह व सवाई जयसिह द्वितीय के समय समायोजित वाजपेय एव अन्य यज्ञों के सम्बन्ध मे सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत करता है। समसामयिक होने से लेखक की यह कृति महत्त्वपूर्ण एव संग्राह्य है -लेखक)

एक दूसरी रचना के विषय में, जिसका नाम **'विद्या-विलास काव्य'** है, उपलब्ध न हो सकने से मौनावलम्बन ही किया जा सकता है। तीसरी एक रचना - **'धातुमञ्जरी'** है। यह व्याकरणशास्त्र की रचना है, जैसा कि इसके नामक से पता चलता है। चौथी रचना **'जानकीराघवम्'** नामक नाटक है, जिसमें भगवान् श्री राम एव सीता के जीवन से सम्बन्धित किसी घटना विशेष का चित्राङ्कन किया है। ये सभी रचनाएँ 'पोथीखाने' में विद्यमान हैं। इसको देखने की आज्ञा न होने इनका विषय एव परिचय प्रस्तुत नहीं किया जा सका है।

इस प्रकार हम देखते है कि मिर्जाराजा जयसिह के पुत्र मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम का समय हिन्दी एवं सस्कृत भाषा के विकास में प्रसिद्ध रहा है। इनका सक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया गया है, जिससे उनका इन भाषाओं के प्रति प्रेम स्पष्ट है।

(उपर्युक्त रचनाओं का संक्षिप्त परिचय 'आमेर' जयपुर के कतिपय-सस्कृत विद्वान्' लेख में प्रस्तुत किया गया है।- सम्पादक)

'मरु-भारती' त्रैमासिकी शोध पत्रिका
(पिलानी) वर्ष १३ अक १ अप्रैल
१९६५ पृ.२६-३३ के साभार)

***

जयपुर राज्य के प्राचीन संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक सामग्री

भारतवर्ष के अनेक प्रान्तो मे राजस्थान एक इतिहास-प्रसिद्ध प्रान्त रहा है। प्राचीन इतिहास ग्रन्थो मे यह राजपुताना के नाम से भी विख्यात रहा है। शौर्य और पराक्रम के साथ ही विद्या एवं बुद्धिबल के लिये भी इसकी ख्याति सर्वत्र प्रसिद्ध रही है। इसी राजस्थान प्रान्त मे ढूढार प्रदेश, जो कालान्तर मे आमेर-जयपुर राज्य के नाम से भी जाना जाता रहा है, ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यह प्रदेश ई.९६६ से पूर्व गूजर व मीणा जाति के लोगो की निवास भूमि था। ग्वालियर के राजा ईशासिह की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र श्री सोढदेव उत्तराधिकारी बने। ऐसी जनश्रुति है कि श्री ईशासिह ने ग्वालियर का राज्य अपने भागिनेय श्री जयसिह तंवर को दे दिया था,इसीलिए सोढदेव को उत्तराधिकार छोड देना पडा था। इनके एकाकी पुत्र श्रीदूलहराय ने अपने श्वसुर मोरा के चौहान राजा रालणसी के सकेत पर सर्व प्रथम दौसा पर अधिकार कर अपने वश को राजस्थान क्षेत्र मे प्रतिष्ठित किया था। कहवाहो की शाखा का इस प्रदेश मे प्रथम पदार्पण सवत् १०२३ अर्थात् १७ दिसम्बर ,९६६ ई से माना जाता है। यह तिथि प्राचीन पत्रकों से प्रमाणित है। इस शाखा मे महाराज सोढदेव से लेकर अब तक ४० शासक हुये। इन शासको मे कुछ ही शासक ऐसे हुये है, जिनका नाम इतिहास मे उललेखनीय माना जाता है। इसका कारण उनका शौर्य, पराक्रम, प्रजा-वात्सल्य तथा सस्कृति के रक्षण के साथ ही प्राचीन साहित्य से अगाध प्रेम भी रहा है। इन शासको मे शौर्य व पराक्रम के क्षेत्र मे १. श्री दूलहराय

२ श्री काकिल ३ महाराज प्रज्वनजी ४ महाराज भारमल ५ म भगवन्तदास ६ मिर्जाराजा मानसिह प्रथम ७ मिर्जाराजा जयसिह प्रथम ८ मिर्जाराजा रामसिह प्रथम ९ सवाई जयसिंह द्वितीय १० सवाई ईश्वरी सिह ११ म मवाई रामसिह द्वितीय व १२ म माधवसिह द्वितीय का नाम उल्लेखनीय है, तो सस्कृत-सस्कृति के रक्षको एव विद्वानो को आश्रय प्रदान कर साहित्य-सर्जन को प्रोत्साहित करने वाले शासको मे १ म पृथ्वीराज, २ मिर्जाराजा मानसिह प्रथम, ३.महाराज भावसिह, ४ मिर्जाराजा जयसिह प्रथम, ५ मिर्जाराजा रामसिह प्रथम, ६.सवाई जयसिह द्वितीय, ७ म ईश्वरीसिह, ८ म माधवसिह प्रथम, ९ म स प्रतापसिह, १० म.सवाई रामसिह द्वितीय आदि के नाम चिरस्मरणीय है।

जयपुर क्षेत्र की संस्कृत रचनायें-

आमेर-जयपुर के कछवाहा शासको के आश्रय मे सस्कृत के विद्वानो ने प्राय सभी विषयो पर रचनाये प्रस्तुत की है। इन रचनाओ मे काव्य, साहित्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, स्तोत्र, अलकारशास्त्र, धर्मशास्त्र, तंत्रशास्त्र, मत्रशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र, कर्मकाण्ड, वैदिक-विज्ञान आदि विषयक रचनाये उल्लेखनीय है। सर्वाधिक रचनाये काव्य-साहित्य व ज्योतिष विषयक है। इन रचनाओ के रचनाकार प्राय महाराष्ट्र, गुजरात तथा उत्तरप्रदेश के स्थायी निवासी थे, जिन्हें स्थानीय शासक ससम्मान अपनी राजधानी लिवा लाये और उन्हें पूर्ण सतुष्ट कर यही का स्थायी निवासी बना लिया, इस प्रकार के अनेक परिवार-सम्राट् परिवार, काले परिवार, दीक्षित परिवार, त्रिपाठी परिवार, औदीच्य, शुक्ल, गोस्वामी, तैलग भट्ट, ओझा परिवारो के सदस्य आज भी पूर्व प्राप्त राज्याश्रयाशेष का उपभोग कर रहे है। इन्ही परिवारो के विद्वानो का कार्य जयपुर राज्य मे सस्कृत को जीवित रखे हुए है।

जहा तक इतिहास विषयक काव्य रचनाओ का सम्बन्ध है, आमेर-जयपुर के कछवाहा शासको का इतिवृत्त प्रस्तुत करने वाले विभिन्न कालीन काव्य, महाकाव्य, खण्ड काव्य, नाटक आदि प्राप्त होते है, जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है —

क्र.	रचना का नाम		लेखक	समय
१	पृथ्वीराजविजय महाकाव्यम्	अप्रकाशित	अज्ञात	स १५५९-१६०४
२	मानप्रकाश महाकाव्यम्	प्रकाशित	राय मुरारिदास	स १६४६-१६७१
३	ईश्वरविलास महाकाव्यम्	प्रकाशित	श्रीकृष्ण भट्ट	स १७५६-१८१९
४	जयवश महाकाव्यम्	प्रकाशित	सीताराम भट्ट	स १८७८-१९१५
५	कच्छवश महाकाव्यम्	अप्रकाशित	श्रीकृष्णरामभट्ट	स १९०७-१९५४
६	जयपुर विलास काव्यम्	प्रकाशित	राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट	स १९०७-१९५४
७	जयनगर-पञ्चरगम्	प्रकाशित	कविमल्ल हरिवल्लभ भट्ट	स १९२३-१९७१
८	मानवश महाकाव्यम्	प्रकाशित	प सूर्यनारायण- व्याकरणाचार्य	स १९४०-२००६
९	जयपुर-वैभवम्	प्रकाशित	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	स १९५०-२०२१
१०	माधव-स्वातन्त्र्यम्	प्रकाशित	श्रीगोपीनाथशास्त्री दाधीच	स १८८२-१९६०

इन रचनाओ मे से पृथ्वीराज विजय मानप्रकाश तथा कच्छवश महाकाव्य अप्रकाशित है। प्रथम दोनो रचनाये-पृथ्वीराज विजय व मानप्रकाश खण्डित तथा अपूर्ण है।

उपर्युक्त दस रचनाओ मे से पृथ्वीराज विजय, मानप्रकाश, ईश्वरविलास, जयवश तथा कच्छवश महाकाव्य ही अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते है । नाटको मे माधव-स्वातंत्र्यम् महाराज सवाई माधवसिह द्वितीय(१८८०-१९२२) के समय मे सपन्न कतिपय राजनैतिक घटनाओ का सकेत देती है। यह सस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटक 'मुद्राराक्षस' के आधार पर लिखा गया है, जो केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर से मेरे सम्पादन में प्रकाशित हो चुका है।

शिलालेख ताम्रपत्र,पत्र-पत्रादि

प्राचीनतम घटनाओ की पुष्टि मे तत्कालीन शिलालेख, ताम्रपत्र पत्र-पत्रादिकों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसकी सत्यता इतिहास से भी अधिक प्रामाणिक होती है। जयपुर के उपलब्ध साहित्य के अंतर्गत अनेक शिलालेख,

ताम्रपत्र, प्रशस्तियाँ तथा पत्र-पत्रादि का भी पर्याप्त योग है। शिलालेखो मे फर्जन्देदौलत मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम कालीन चार शिलालेख[१] (१ आमेर के राजा मानसिह कछवाहा का वि सं १६६९ का शिलालेख, जो जमवा रामगढ मे मिला था । २.आमेर के कछवाहा राजा मानसिंह की वृंदावन मे बने हुये गोविन्ददेवजी के मदिर की प्रशस्ति एव शिलालेख ३ वृन्दावन स्थित वृदा देवी के मदिर पर कछवाहा मानसिंह का हिन्दी भाषात्मक शिलालेख, ४ रोहतासगढ पर लगा म मानसिह का शिलालेख) ब्रह्माजी के मदिर की प्रशस्ति, आमेर के सूर्य मंदिर की प्रशस्ति आदि उल्लेखनीय है, जो जयपुरस्थ म्यूजियम मे उपलब्ध है। पत्र-पत्रादिको का एक विशाल सग्रह महाराजा सिटी पैलेस जयपुर के निजी संग्रहालय मे सुरक्षित है, जिनसे तत्कालीन अनेक घटनाओ की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। कहा जाता है कि इसमे म. मानसिह प्रथम (अकबर के सेनापति) के शासनकालीन शाही फरमान पत्र आदि भी उपलब्ध है।

प्राचीनतम रचनाएं और उनका काल-

आमेर-जयपुर प्रदेश की प्रचीनतम उपलब्ध रचना **'पृथ्वीराजविजय'** महाकाव्य के उपलब्ध **किञ्चित्** पद्य है, जिसे आमेर के शासक महाराज चंद्रसेन के पुत्र म.पृथ्वीराज के आश्रित किसी विद्वान् (अज्ञात) की कृति बतलाया जाता है। महाराज पृथ्वीराज ने फाल्गुन कृष्णा ५ सवत् १५५९ से कार्तिक शु १२ संवत् १५८४ तक शासन किया था- ऐसा उल्लेख मिलता है। इस रचना में म. सोढदेव, म.दूलहराय तथा म. काकिलजी का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जो महत्त्वपूर्ण है। यह मूल रचना की प्रतिलिपि प्रतीत होती है। इसीलिए अपूर्ण व अशुद्ध है।

---

[१] ये शिलालेख मानसिह के पिता के विषय मे भी प्रमाणिक जानकारी प्रस्तुत करते है। कुछ इतिहासकारो ने इनके पिता का नाम भगवानदास लिखा है, जबकि भगवानदास इनके चाचा थे तथा लवाण नामक ग्राम के शासक थे। इस समस्या का समाधान ये शिलालेख भी प्रस्तुत करते हैं। विशेष सदर्भ के लिए देखिये - (अ) 'मिर्जाराजा मानसिह प्रथम और उनके शिलालेख - (शोध पत्रिका, वर्ष १६ अक ४ सयुक्ताक) (आ) जयपुर के ऐतिहासिक सस्कृत महाकाव्यो की दृष्टि मे महाराज भगवन्तदास और भगवानदास - (शोध पत्रिका, वर्ष १९ अक ४ मे) प्रकाशित लेख। (ये लेख इस सकलन मे भी सगृहीत हैं।)

इसके पश्चात् मिर्जाराजा मानसिह प्रथम कालीन ऐतिहासिक महाकाव्य **'मानप्रकाश'** का उल्लेख किया जाता है, जो **राय मुरारिदास** की कृति के रूप में प्रसिद्ध है। म मानसिंह ने मार्गशीर्ष शु. ७ सवत् १६४६ से आषाढ शु. १० सवत् १६७१ तक शासन किया था। इस समय मुगलवंश का शासन सूर्य अपने पूर्ण यौवन मे था। इधर महाराज भारमल्ल तक उत्तराधिकार के लिए शासन परम्परा मे अनेक बार व्युत्क्रम हुआ तथा संघर्ष स्थिति चलती रही। ऐसी परिस्थिति मे स्थायी एव शांत शासन के अभाव मे साहित्य सर्जना न हो सकी । महाराज मानसिंह ने इस साहित्य लेखन परम्परा का शुभारम्भ किया, जो कालान्तर मे मन्द तो अवश्य हुई, पर विच्छिन्न नही हुई।

महाराज (मिर्जाराजा) जयसिह प्रथम तथा महाराज रामसिह प्रथम के शासनकाल मे तो अनेक दिग्गज विद्वान् उनके आश्रित थे, जिनमे **श्री गणेश दैवज्ञ, श्री दलपति राय, श्री शंकर भट्ट, श्री हरिजीवन मिश्र, श्री परमसुख दैवज्ञ, श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे, पुण्डरीक विट्ठल, रुद्र न्याय-वाचस्पति** आदि उल्लेखनीय है, जिनकी रचनायें ज्योतिष, नीति, संगीत, राजनीति तथा काव्यनाटकादि विषयान्तर्गत मान्य है।

प्राचीन रचनाओं मे म.स जयसिंह द्वितीय (जयपुर सस्थापक) कालीन कृतियों का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिनमे **जयसिंह कल्पद्रुम, सम्राट् सिद्धान्त, सिद्धान्त-कौस्तुभसार, अभिलाष-शतकम्, व्यवहारनिर्णय, ईश्वरविलास महाकाव्य, प्रशस्तिमुक्तावली, पद्यमुक्तावलि, वृत्तमुक्तावलि, सुन्दरीस्तवराज, वैदिक वैष्णव सदाचार, सभेदार्या सप्तशती** आदि अनेक कृतियॉ प्रसिद्ध है।

जयपुर क्षेत्र की प्रमुख रचनाओ मे साहित्य तथा ज्योतिष विषयक रचनाओ का आधिक्य रहा है। इसका समय मिर्जाराजा जयसिह प्रथम (१६७८-१७२४ सवत्) के शासन से ही सबद्ध है। इनका विस्तृत विवेचन यहा सभव नही है।

रचनाओं की विशेषताएं :-

जयपुर-आमेर के कछवाहा शासकों के आश्रय मे रचा गया साहित्य अधिकांश रूप में मौलिक है। ज्योतिष विषयक रचनाये प्राय अरबी-फारसी के ग्रन्थो

का सस्कृत मे अनुवाद है या उनके आधार पर लिखी गई है। सस्कृत काव्य ग्रन्थों में- **भावविलास, ईश्वरविलास, पद्यमुक्तावलि, राघवगीतम्, वृत्तमुक्तावलि, सुन्दरीस्तवराज, नृपविलास, नल विलास, जयवंश महाकाव्य, राघव चरित्रम्, लघु-रघुकाव्यम्, कच्छवंश महाकाव्य** आदि अनेक मौलिक रचनाएं हैं, जिन्हे पढकर पाठक भावविभोर हो उठता है। इनकी भाषा सरल व सुबोध है, कि बिना किसी विशेष प्रयास के हृदयगम हो जाती है। इनकी शैली वैदर्भी तथा माधुर्य गुण प्रधान है। जहां कवि रस का वर्णन प्रस्तुत करता है , वहां रचना का औदार्य तथा ओज गुण, वीर रस को पाठक के हृदय मे उपस्थित कर देता है।

प्रमुख लेखक, साहित्यकार एवं विद्वान्-

उपलब्ध साहित्य को देखकर यह कहा जा सकता है कि सं १५५९ अर्थात् १६०२ ई से ही सस्कृत के विद्वान् लेखक आमेर-जयपुर के कछवाहा शासको का आश्रय प्राप्त कर भगवती सरस्वती की आराधना से अपने यश शरीर को स्थायित्व प्रदान करने लगे थे। सर्वत प्राचीन उपलब्ध खण्डित काव्य **पृथ्वीराज विजय** के लेखक का नाम ज्ञात न होने से उसके सम्बन्ध मे कुछ भी नहीं कहा जा सकता । इसके पश्चात् उल्लेखनीय साहित्यकार के रूप मे **मानप्रकाश** महाकाव्य के लेखक **श्री राय मुरारिदास** का नाम आता है। इनका समय म.मानसिंह प्रथम का ही समय था, अर्थात् सवत् १६४६-१६७१ । **महाराज मानसिंह प्रथम** के कनिष्ठ भ्राता **श्री माधवसिंह** भी गुणी एवं विद्वानो के भक्त थे । ऐसा माना जाता है कि म मानसिह प्रथम तो प्राय दिल्ली-आगरा या मुगल बादशाह अकबर के अनुदेश से विभिन्न प्रान्तो मे भ्रमण किया करते थे । आमेर का शासनसूत्र श्री माधवसिह के ही हाथो चलता था । इनके साथ कर्नाटक विद्वान् **पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण** का नाम बडे आदर से लिया जाता है, जिनकी रचनाये संगीत-नृत्य विषयक है। इनकी प्रमुख रचनाओ के नाम हैं- **१.रागचंद्रोदय, २.रागमाला, ३.रागमंजरी, ४.नर्तन निर्णय, ५.दूती प्रकाश** आदि । इनके पश्चात् **श्री दलपतराय** का नाम आता है, जिन्होने **पत्र-प्रशस्ति** तथा **यवन-परिचय** नामक रचनाये की। **श्री रुद्रन्याय वाचस्पति** द्वारा लिखित महाराज भावसिंह की प्रशस्तिपरक अन्योक्ति रचना "**भावविलास**" काव्य साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है,जो काव्यमाला सीरिज के द्वितीय गुच्छक मे निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित हो चुकी है।

श्री दलपतिराय कृत **"राजनीति-निरूपणम्"** एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसी प्रकार **श्री हरिजीवन मिश्र** का नाम मिर्जाराजा रामसिह प्रथम कालीन विद्वानो मे बडे आदर से लिया जाता है। जिनने १. **अद्भुत तरंग** (नाटक) २. **घृतकुल्यावलिः** (नाटिका) ३. **पलाण्डुमण्डन** (प्रहसन) ४. **प्रासंगिक** प्रहसन ५. **विबुधमोहन** (एकाकी) ६. **सहृदयानन्द** (प्रहसन) ७. **प्रभावली नाटिका** आदि अनेक नाट्य ग्रन्थ लिखे है। इसी क्रम में चित्पावनवशीय **श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे** का नाम भी उल्लेखनीय है, जिन्होने १. **शृंगारवापिका** तथा २. **शम्भु विलास** काव्य नामक रचनाये प्रस्तुत कीं। इनके समय में **रामविलास** काव्य का उल्लेख मिलता है, जो रचना म मानसिह द्वितीय ट्रस्ट से प्रकाशित हुई है।

जयपुर संस्थापक सवाई जयसिह द्वितीय के समाश्रित विद्वानो मे **श्री रत्नाकर पुण्डरीक** (**जयसिंह कल्पद्रुम** नामक धर्मशास्त्रीय रचना के लेखक), **सम्राट् श्री जगन्नाथ** (**सम्राट्-सिद्धांत** आदि ज्योतिष विषयक ग्रन्थो के निर्माता), **श्री केवलराम ज्योतिषराय** (**अभिलाषशतकम्** काव्य तथा अन्य ज्योतिष विषयक **सारणियों** के निर्माता) **श्री नयनसुखोपाध्याय** (प्रसिद्ध **ऊकर** ग्रन्थ के रचयिता, **श्री हरेकृष्ण मिश्र** (**वैदिक-वैष्णवसदाचार** के लेखक), **कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्ट** (**ईश्वरविलास, पद्यमुक्तावलि, वृत्तमुक्तावलि, प्रशस्ति-मुक्तावलि, सुन्दरीस्तवराज, राघवगीतम्** आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के रचयिता) **श्री मायाराम पाठक** (धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थो के लेखक) **श्री हरिहर** (**कुल प्रबंध** के लेखक) **श्री श्रीनिकेतन गोस्वामी** (**सभेदार्यासप्तशती** के लेखक) **श्री चक्रपाणि गोस्वामी (पंचायतन-प्रकाश)** आदि ग्रन्थो के रचयिता, **श्री जनार्दन भट्ट गोस्वामी**(**शृंगारशतकम्, वैराग्यशतकम्** आदि आकर्षक काव्यो के लेखक) **श्री बज्रनाथ भट्ट** (**पद्यतरंगिणी** के रचयिता)आदि का नाम बडे गौरव से लिया जाता है। इनकी रचनाये भी महत्त्वपूर्ण है।

श्री द्वारकानाथ देवर्षि का **'गालवगीतम्'** **श्री विश्वश्वर महाशब्दे** का **'प्रतापमार्तण्ड', 'प्रतापार्क'** व **'निर्णयकौस्तुभ'**, **श्री सखारामभट्ट पर्वणीकर**, का **'आख्यातवाद'**, **श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर** के ४० से भी अधिक ग्रन्थ, जिनमें **नृपविलास, नलविलास, जयवंश, राघवचरित्रम्, लघुरघुकाव्यम्** आदि प्रसिद्ध है, उल्लेखनीय विद्वान् माने जाते रहे है। **श्री सवाई रामसिंह द्वितीय एवं**

स.माधवसिंह द्वितीय कालीन विद्वानो में **श्री कृष्णराम भट्ट, श्री हरिवल्लभ भट्ट, श्री सूर्यनारायण शास्त्री, श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, म.म.गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री मधुसूदन झा** प्रभृति शताधिक विद्वान् स्मरणीय है।

जयपुर राज्य के प्रमुख साहित्य पोषक एवं उन्नायक शासक और उनकी देन :-

जैसा कि सकेत दिया जा चुका है, महाराज पृथ्वीराज के समय से ही रचनाये उपलब्ध होने लगी थीं, अत महाराज पृथ्वीराज ही प्रमुख साहित्य पोषक शासको मे अग्रणी माने जाते हैं। यों तो एक दो विद्वान् परम्परागत रूप मे या आश्रय प्राप्त होने पर प्रत्येक शासक के काल मे रहे होगे, परन्तु रचनात्मक कार्य की अधिकता, साहित्य सर्जना की प्रवृत्ति तथा विद्वानो की स्थिति स्थापना जिन शासको के आश्रय में हुई, उनमे फर्जन्दे-दौलत मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम, मिर्जाराजा रामसिंह प्रथम, जयपुर सस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय, सवाई प्रतापसिह, सवाई रामसिंह द्वितीय, सवाई माधवसिह द्वितीय का नाम स्वर्णाक्षरो से उट्टंकनीय है। इन शासको ने विभिन्न भाषाविज्ञो, विद्वानो एवं विख्यात व्यक्तियो को सादर बुलवाकर अपने यहा अच्छा खासा सम्मान दिया और इतना अधिक दिया कि वे वही के स्थायी निवासी बनने को मजबूर हो गये। विद्वान् ब्राह्मणो को आजीविका के साथ ही सम्मान प्राप्त होने पर अन्य कुछ नहीं चाहिए। परम संतुष्ट होकर उन्होने भी सरस्वती की साधना की, और परिणामस्वरूप साहित्य-सर्जन हो गया, जयपुर दूसरी काशी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उपर्युक्त शासकों मे भी केवल दो का ही नाम विशेषत उल्लेखनीय है। १. जयपुर संस्थापक सवाई जयसिह द्वितीय(१६९९-१७४३ई.) तथा २. जयपुर सुधारक महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय (१८३५-१८८० ई)। सवाई जयसिह स्वयं विद्वान् , बुद्धिमान् तथा दूरदर्शी शासक थे, जयपुर सदृश सुंदर नगर का निर्माण आपकी कलाप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जयपुर के अतिरिक्त वाराणसी, उज्जैन, दिल्ली और मथुरा में ज्योतिष यंत्रालयों की संस्थापना आपके ज्योतिष विषयक प्रेम को प्रकट करती है। आपने फ्रास, इटली, पुर्तगाल, अरब, फारस आदि देशो के विद्वानों से संपर्क करने के लिए स्थानीय विद्वानों को भेजा और अनेक विद्वानो को आश्रय प्रदान कर सम्मानित किया। आपका शासनकाल-विद्या, धर्म, राजनीति, और भौतिक उन्नति के लिए विशेष प्रसिद्ध रहा है। स्वय विद्वान् थे तथा विद्वानो का सत्कार किया करते थे। स्वयं ने **'जयसिंह-कारिका'** व **'यन्त्रराज परिचय'** का प्रणयन किया था। ज्योतिष शास्त्र के उन्नायक के रूप में आप द्वितीय भास्कराचार्य माने जाते हैं।

"**वाराणसीयतु सदा जयपत्तनं मे**" उक्ति को वास्तविक रूप मे च्चरितार्थ करने का श्रेय महाराजाधिराज सवाई रामसिंह द्वितीय (१८३५-१८८०ई.) को दिया जाता है। महाराज स जयसिह द्वितीय ने तो वाजपेय, अश्वमेध तथा राजसूय आदि श्रौत यज्ञो के सम्पादनार्थ योग्यतम विद्वानो को ससम्मान लाकर जीविका-वृत्ति आदि की समुचित व्यवस्था कर जयपुर नगरी को अलकृत किया था। इन समागत विद्वानो के समुचित निवासार्थ ही ब्रह्मपुरी की स्थापना की गयी थी। दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य था- **ज्योतिष यंत्रालय की स्थापना** करना और तीसरा कार्य था'- **जयपुर नगर का निर्माण** । इन कार्यो के सपादनार्थ योग्यतम कलाकारो, शिल्पियो, वास्तुशास्त्र-विशारदो, विद्वानो, मौहूर्तिको को यहा बसाया था। इसके उपरांत म.रामसिह ने जन्म लेकर इस नगरी की सुव्यवस्था में ही अपना समय व्यतीत किया । समय की माग के अनुसार शिक्षालयों की स्थापना व उनमे अध्ययनाध्यापन की समुचित व्यवस्था के लिए पूर्ण प्रयत्न किया, जो सभी की सराहना का विषय है । सस्कृत एवं हिन्दी भाषा को सरक्षण प्रदान करने मे म. रामसिंह पूर्ण सफल हुए। आपने महाराजा संस्कृत कॉलेज की स्थापना कर उसमें अध्यापनार्थ काशी, बिहार, दक्षिणी भारत आदि से उच्चकोटि के विद्वानो को ससम्मान बुलाकर उनको योग्य पद प्रदान किये। न केवल संस्कृत भाषा के ही प्रति आप उदार रहे है, अपितु हिन्दी व अग्रेजी भाषा के प्रोत्साहनार्थ भी आपने अनेक स्कूल व कॉलेज खुलवाये थे। सस्कृत विद्वानो के विनोदार्थ एक **मोद-मंदिर** की स्थापना भी की गई थी, जो कालान्तर मे धार्मिक वाद-विवाद का निर्णय किया करती थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अब यह संस्था भी समाप्त प्राय है।

उपर्युक्त दोनों शासकों का शासनकाल संस्कृत साहित्य के प्रणयन, विकास एव परिवर्द्धन की दृष्टि से स्वर्णयुग माना जा सकता है। इनके द्वारा संस्थापित परम्पराओं को अक्षुण्ण गति से प्रवाहित करने वाले परवर्ती शासक भी स्वर्ण शताब्दी के अन्तर्गत मान्य हैं तथा धन्यवाद के पात्र हैं । यही कारण है कि इस युग में भी संस्कृत साहित्य की सत्ता दृष्टिगोचर हो रही है। ये दोनों शासक स्वयं विद्वान् तथा बुद्धिमान् थे और इसीलिए किसी भी विद्वान् तथा बुद्धिमान् का सत्कार भी करते थे। ये दोनों शासक चिरस्मरणीय रहेगे।

संस्कृत भाषात्मक रचनाओं के विषय :-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जयपुर-आमेर के कछवाहा शासको के आश्रय मे बने ग्रन्थ सभी विषयो से सबद्ध है। यहा संक्षेप मे रचना का नाम, विषय तथा लेखक का विवेचन किया जा रहा है -

	विषय		रचना-नाम		रचनाकार	समय
१	महाकाव्य	१	नृप विलास	अप्रका	श्री सीताराम पर्वणीकर	१८९१ स
		२	नल विलास	अप्रका	श्री सीताराम पर्वणीकर	१८९१ स
२	खण्डकाव्य	१	भाव विलास		श्रीरुद्रन्याय वाचस्पति	१६७१ स
		२	अभिलाषशतकम्	अप्र	श्री केवलराम ज्योतिषराय	१७४३ ई
		३	देवराज चरितम्	प्र	म म श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	१९२६ ई
३	प्रकीर्णक	१	पद्यतरगिणी	अप्र	श्री ब्रजनाथ भट्ट	१७४३ ई
		२	राघव चरित्रम्	अप्र	श्री सीताराम भट्ट	१८९१ स.
		३	पद्य मुक्तावलि	प्रका	श्री कृष्ण भट्ट	१८३९ स.
४	ऐतिहासिकम	१	पृथ्वीराज विजय	अप्र	अज्ञात	१५५९ स
	हाकाव्य	२	मानप्रकाश	अप्र	राय मुरारिदास	१६४६ स
		३	ईश्वर विलास	प्रका	श्री कृष्ण भट्ट	१७६८- १८३९ ई
		४	जयवश महाकाव्य	प्रका	श्री सीताराम भट्ट	१८१८- १८३५ ई
५	इतिहास	१	कच्छवश महाकाव्य	अप्रका	राज वै कृष्णराम भट्ट	१७८५ ई
६	नाटक	१	रूक्मिणी हरणम्	अप्रका	श्री रामकिशोर शर्मा	१८३५ ई.
७	ऐति नाटक	१	माधव स्वातत्र्यम्	प्रका	श्री गोपीनाथ शास्त्री	१८८० ई
८	गद्य	१	भारतेत्ति घृत्तसार	प्रका	श्रीलक्ष्मीनाथ शास्त्री द्रविड	१८९१ स
९	चम्पू	१	दशकण्ठवधम्	प्रका	श्री म म दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	१९२६ ई
१०	स्तोत्र	१	गगादीनामष्टका	प्रका	श्री सीताराम भट्ट	१८९१ सं
		२	गोविन्द वैभवम्	प्रका	श्री मथुरानाथ शास्त्री	१९६४ ई
११	धर्मशास्त्र	१	जयसिह कल्पद्रुम	प्रका	श्री रत्नाकर पौण्डरीक	१७७६ स
		२	तिथि निर्णय	अप्रका	श्रीकेवलराम ज्योतिषराय	१७४३ ई
		३	निर्णय कौस्तुभ	अप्रका	श्री विश्वेश्वर महाशब्दे	१८१८ ई
१२	दर्शन शास्त्र	१	तर्क कारिका	अप्रका	श्री गोपीनाथ शास्त्री	९८९४ स
		२	जैन दर्शन सार	प्रका	श्री चैनसुख दास	१९६७ ई
१३	तत्रशास्त्र	१	आगम रहस्यम्	प्रका	श्री सरयू प्रसाद द्विवेदी	१८३५ ई
१४	तन्त्रस्तोत्र	१	सुन्दरीस्तवराज	प्रका	श्री कृष्णरामभट्ट कविक.	१७४३ ई
१५	ज्योतिष	१	सम्राट सिद्धात	अप्रका	श्री जगन्नाथ सम्राट्	१७४३ ई

		२	सिद्धान्तकौस्तुभ सार	अप्रका	श्री जगन्नाथ सम्राट्	१७४३ ई
१६	सगीत	१	राग-माला	अप्रका	श्री पुण्डरीक विट्ठल	
		२	राग मजरी	अप्रका	श्री पुण्डरीक विट्ठल	
१७	नृत्य	१	नर्तन विलास	अप्रका	श्री पुण्डरीक विट्ठल	
१८	कामशास्त्र	१	दूती प्रकाश	अप्रका	श्री पुण्डरीक विट्ठल	
		२	काम रगोदय	अप्रका	श्रीप्रेमसुख (परममुख)	१८३५ ई
१९	छद शास्त्र	१	वृत मुक्तावलि	प्रका	श्रीकृष्णराम भट्ट कविक	१७४३ ई
२०	शास्त्रार्थ	१	सज्जनमनोनुरजनम्	प्रका	श्रीहरगोविन्द नामावाल	१८४० ई
२१	गीतिकाव्यम्	१	राघव गीतम्	अप्रका	श्रीकृष्णराम भट्ट कविक	१७४३ ई
२२	आयुर्वेद	१	विविधौषध सग्रह	अप्रका	अज्ञातकर्तृक	१७५० ई
		२	लघन पथ्य निर्णय	अप्रका	श्रीकाशीराम	१७४३ ई
		३	वैद्य विनोद सहिता	अप्रका	श्री शकरभट्ट	१८३५ ई
२४	व्याकरण	१	आख्यात वाद	अप्रका	श्री सखाराम भट्ट	
		२	धातु मजरी	अप्रका	श्री सदानन्द स्वामी	१८३५ ई
२५	पत्र-प्रशस्ति	१	प्रशस्ति मुक्तावली	अप्रका	श्रीकृष्णराम भट्ट कविक	१७४३ ई

इनके अतिरिक्त महामहोपाध्याय प. श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा ने काव्यमाला के गुच्छक, निर्णय सागर प्रेस, बबई से प्रकाशित कर अनेक अलभ्य काव्य साहित्य को उपलब्ध कराते हुए उसे सुरक्षित किया। अनेक विद्वानो ने उपर्युक्त विषयो पर मौलिक उद्भावानाओ मे रचनाए प्रस्तुत की। सिहली भाषा से जानकीहरण काव्य का प्रकाशन सपादन करते हुए भी उसे प्रकाशित किया गया है। इस प्रकार हम देखते है कि प्राय सभी विषयो पर संस्कृत भाषात्मक रचनाये सरलता से उपलब्ध है।

संस्कृत साहित्य में इतिहास

संस्कृत साहित्य के इतिहास को देखने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इस भाषा में लिखे गये ग्रन्थो में इतिहास तत्त्व बहुत ही कम मिलता है। अधिकांश विद्वानो ने काव्य, नाटक साहित्य को ही अपनी लेखनी का विषय बनाया है। काश्मीरी कवि कल्हण का नाम इतिहास लेखको मे सर्वोपरि लिया जाता है, जिसने काश्मीर के राजाओ का इतिहास संस्कृत भाषा के माध्यम से लिखा था, जो राजतरगिणी के नाम से प्रसिद्ध है। इतिहास से तात्पर्य सत्य घटना से लिया जाता है। प्राय विद्वान् अपने आश्रयदाता का दोष-दर्शन करने में हिचकते रहे है और परिणामत. यह सत्य से परे हो जाता है। दूसरी बात यह कि तिथियो का संकेत नही किया जाता रहा है। जब तक तिथि की प्रामाणिकता ज्ञात नही होगी, घटना भी सत्यसिद्ध नहीं हो सकेगी । प्राचीन

राजाओ के इतिहास मे जो अप्रामाणिकता प्राप्त होती है, उसके कई कारणो मे एक तिथि का न मिलना भी है। एक कारण और भी है - और वह है, वशावलियों मे नाम का साम्य । सभी राजा लोग सिह शब्द का प्रयोग करते आये है और उपनाम साथ मे जुडा नही होता ।

जयपुर के 'इतिहास' की श्रेणी मे केवल **कच्छवंश महाकाव्य** को रखा जा सकता है। क्योकि इसमे घटनाओ का क्रमश उल्लेख है। स्थान-स्थान पर समयांकन भी प्राप्त होता है। यद्यपि इस विशाल ग्रन्थ के लेखक राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट,म.स रामसिह द्वितीय व म.स माधवसिह द्वितीय के शासनकाल मे विद्यमान थे और उसी समय इस ग्रन्थ का प्रणयन करने से केवल तत्कालीन (कवि काल की) घटनायें ही प्रामाणिक मानी जानी चाहिए, परन्तु उन्होने प्राचीन हस्तलिखित ख्यातो, वशावलियो, पट्टो, परवानो, काव्यो एव प्रसिद्धियो के आधार पर इसका प्रणयन किया है। अत इस काव्य को प्रामाणिकता दी जानी चाहिए। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है तथा जयपुर मे ही श्री देवेन्द्र भट्ट जी के पास सुरक्षित है।

विद्वानो ने प्राय ऐतिहासिक काव्यो की रचनाये प्रस्तुत की है। जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है, जयपुर-आमेर के कछवाहा शासको के आश्रय मे कुल १० रचनाये (काव्य, नाटक आदि)लिखी गयी हैं, जिनमे इतिहास तत्त्व उपलब्ध होता है। इनमे से मुख्य ५ का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

१. पृथ्वीराज विजय :-

इस ग्रन्थ के नाम को देखकर भ्रान्ति सभव है, क्योकि इसी नाम का एक महाकाव्य जोनराज रचित अजमेर-दिल्ली के चौहान शासक पृथ्वीराज के इतिहास को प्रस्तुत करता है। इस ग्रन्थ मे कछवाहा शासको की उस शाखा का इतिवृत्त वर्णित है, जिसने ढूढाड प्रदेश मे प्रवेश प्राप्त कर सर्व प्रथम दौसा पर विजय प्राप्त की थी और फिर क्रमश मांची, खोह, भाण्डारेज, रामगढ, आमेर आदि को अपने अधिकार मे किया था। इस शाखा के मूल पुरुष **महाराज सोढदेव** माने जाते हैं। उक्त रचना के केवल ६२४ से ७७९ तक कुल १५६ पद्य ही उपलब्ध हो सके है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है। इस महाकाव्य की खडित प्रति (१२ पृष्ठात्मक) एशियाटिक सोसायटी

पुस्तकालय के १०४३४ क्रमाक (हस्तलिखित ग्रन्थ) पर उपलब्ध है।[१] उपलब्ध पद्यो मे **सोढदेव** से लेकर **पृथ्वीराज** के पुत्र **भीम** तक का वर्णन है।

इस काव्य में सोढदेव के विवाह की घटना से लेकर शृगार रस के कुछ पद्यो के बाद वीर रस का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सोढदेव ने यादव कुल की कन्या से विवाह किया था, यह इतिहास प्रसिद्ध है परन्तु यहा प्राप्त पद्यो मे इसका उल्लेख नहीं मिलता। संभवत यह उल्लेख पूर्ववर्ती पद्यो मे रह गया हो। दूलहराय का जन्म इस प्रकार वर्णित है -

'दानप्रीतमहीसुराभिहितगा रागाभिशर्माश्रया
देवीदर्शनलस्यमानमहिमा देव्या विजज्ञे सुत· ॥
भूपालस्य शुभाशिषा ग्रहवरैरावेद्य मानोदये
लग्ने लग्नपतौ बलीयसि पिता प्राचेथतं दुल्लहम् ॥६३१॥'

दूलहराय के एक रानी थी, जो मोरा के चौहान राजा रालणसिह की पुत्री थी। यद्यपि स्पष्ट उल्लेख तो नही है, परन्तु इसका सकेत अवश्य प्राप्त होता है-

''जित्वा सत्वर-जित्वरो रिपुजनान् दोसाचल-स्थायिनो
रम्यं स्थानमवेक्ष्य स क्षितिपजो वस्तुं समीहां दधौ।
आहूय स्वजनान् स्वकं च जनकं तद्गोपनाय प्रभुः
तत्रैवोर्थ्यनिजोजिसाधुविजयी प्रत्यर्थिनां निर्ययौ ॥६२६॥''

इसी प्रकार माची विजय के लिए हुए युद्ध का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। महाराज दूलहराय इस युद्ध मे बुरी तरह फंस गये थे और विपत्सागर से त्राण पाने के लिए भगवती दुर्गा की स्तुति करने लगे थे-

''या चेदं तमसोपसंहरति या जीवैक-जीवत्वदा-
सा घोरा युधविद्धमुद्धरतु मां घोराद् विपत्सागरात् ॥६५७॥''

---

[१] **द्रष्टव्य**- सस्कृत का एक अप्रकाशित काव्य- 'पृथ्वीराज विजय'- शोध पत्रिका, वर्ष १८ अक३ सन् १९६७ मे प्रकाशित लेख तथा 'जयपुर के ऐतिहासिक काव्य' राजस्थान भारती - बीकानेर-भाग १०, अक १ मे प्रकाशित लेख।

इस पंक्तियो मे सत्यता झलकती है । युद्ध भूमि में दुल्लहराय जख्मी हो गये होगे, यहां तक तो ठीक है, परन्तु फिर भगवती देवी का साक्षात् प्रकट होना अप्राकृतिक तत्त्व को उपस्थित करता है-

''तस्मिन् वीरवरे विमुह्यति महोविध्वंसितध्वान्तिका
भक्तत्राण-महाव्रता सकरुणा प्रादुर्बभूवाम्बिका ।।६६१।।''

इतना ही नहीं, नारद ऋषि का आगमन वर्णित करना लेखक की धर्मान्धता के प्रति दृढता को व्यक्त करता है। ये घटनाये इस रचना को इतिहास तत्त्व से दूर कर महाकाव्यत्व की ओर धकेलती है-

''देवादेव तदैव देवपथगो दृग्गोचरो नारदो
वीणापाणिरुदाननीकृतमृगो वेगोन्नमद्दीप्तिगः ।
दृष्टो हृष्टतनूरुहेण सहसा वेधो भुवाभ्यर्थितो
लब्धार्थी कृत-जातदर्शनजनो नत्वा विलिन्ये भुवम् ।।६७०।।''

ऐतिहासिको मे एक विषय बहुचर्चित रहा है। श्री गौरीशकर हीराचद्र ओझा ने लिखा है कि महाराज ईशासिंह का अपने भानजे श्री जयसिंह तंवर को ग्वालियर का राज्य स्वप्न मे देने की घटना कल्पित है।[१] वे लिखते हैं-

'कछवाहो की ख्यात लिखने वाले भाटो को यह ज्ञात नहीं था कि ग्वालियर पर कछवाहों का अधिकार कब तक रहा और वह तंवरो के अधीन किस तरह हुआ, इसलिए उन्होने यह कथा मनगंढत की है कि ग्वालियर के कछवाहा राजा ईशासिंह ने अपनी वृद्धावस्था मे अपना राज्य अपने भानजे जैसा (जयसिह तवर)को दान कर दिया, जिससे ईशा के पुत्र सोढदेव ने ग्वालियर से दौसा आकर अपने बाहुबल से वहा का राज्य मीणा जाति से छीना । भाटो की ख्यातो मे सोढदेव का वि स. १०३३ मे गद्दी पर बैठना लिखा है, परन्तु ये बातें मनगढन्त ही हैं। क्योकि शहाबुद्दीन गौरी के शासन तक ग्वालियर पर कछवाहो की बडी शाखा का राज्य रहा और सोढदेव से नौ पुस्त पहले होने वाला राजा लक्ष्मण वि सं १०३४ में विद्यमान था।'

---

[१] **द्रष्टव्य**- ओझा निबध सग्रह-भाग २ (१९५४) साहित्य सस्थान, उदयपुर से प्रकाशित लेख 'आनद विक्रम सवत् की कल्पना'- पृष्ठ -४९

आमेर-जयपुर के कछवाहा शासको के आश्रय मे लिखे गये यावन्मात्र ग्रथो में भाटो की परम्परा का ही उल्लेख मिलता है। चूकि उक्त काव्य का वह अश उपलब्ध नहीं है। अत उद्घाटन के रूप मे प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, परन्तु अन्य काव्यो मे जो उल्लिखित है, यहा प्रस्तुत है-

१- "स्वर्गं गते स्वे पितरीशसिंहे स्वीयं गवालेरपदं वितीर्य।
स्वभागिनेयाय धनं द्विजेभ्य· स्थिते ससूनौ पुरि वै बरेल्याम्॥
वह्निद्विशून्येन्दुमिते कुमार संवत्सरे कार्तिककृष्णपक्षे।
तिथौ दशम्यां पदमत्र पित्र्यं समृद्धमारादधितिष्ठतिस्म॥[१]"

इन पद्यो का आधार प्राचीन ख्याते तथा वशावलिया ही रही होगी। कार्तिक कृष्णा १० सवत् १०२३ को कुमार ने पिता के स्थान पर अधिकार प्राप्त किया। यह तिथि अभी तक सर्व सम्मत रही है तथा पूरा लेख अभिलेखागार विभाग से प्राप्त प्राचीनतम रिकार्ड से परिपुष्ट भी है।

(२) **कच्छवंश महाकाव्य** का साक्ष्य देखिए-

"स्वस्रेयाय ददौ राज्यं जयसिंहाय स प्रभुः।
कोषं तु तोषपोषेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः समग्रशः॥८
ग्वालयपुरं सर्द्धिं स संकल्प्य महामनाः।
सावरोधो यशः शृण्वन् निदारावारिमागतः॥९
नवम्यां कार्तिके कृष्णे वर्षे स क्ष्माक्षिखेन्दुके।
सोढदेवः सुतं तत्र स निवेश्य दिवं गतः॥१०"
प्रभावं सोढदेवस्य तोमरःसोढुमक्षमः।
बभूवोद्विग्नधी पैत्रस्तस्त्रेगे जयहिंसकः॥१५
मातुलेयो बली राज्यं आददीत यदा पुनः।
तदा किं स्यादिति व्यग्रो जजागार निशासु स॥१६

श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर रचित - जयवश महाकाव्य' प्रथम सर्ग, पद्य स १३-१४ (प्रकाशित) राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, १९५२

स एकदा समासाद्य सोढदेवं कृताननतिः।
विज्ञापयामास विभो गृह्यतां भू पुनर्मियाम् ।।१७
एवं विज्ञाप्य विरते जयसिंहे कृताञ्जलौ।
प्रत्युवाच शनै· सोढ· स्मितांशुस्तपिताधरः ।।१९
भ्रात. शंकनिशंका ते मैवं ब्रूहि ममाग्रत ।
दत्तं को नाम गृह्णीयात् कीर्तयन् कुलमात्मनः ।।२०
इत्याश्वास्य स तं धीरः कच्छानां परमेश्वर·।
राज्यान्तरार्जवाद्योगी बरेली सान्वयो ययौ ।। ''२३

इन पद्यो से भी वही बात स्पष्ट होती है कि जो ख्यातो से प्रमाणित है। डॉ राजेन्द्रलाल ने ग्वालियर के किले से प्राप्त किसी शिलालेख के आधार पर लिखा है- ''कछवाहो ने ग्वालियर का राज्य तवरो को दान मे नही दिया था। उन्होने अपने भुजबल से लिया था और उस समय संवत् ९४४ था।''[१]

यह एक नया विवाद है। इस संबन्ध मे कहा जा सकता है कि यदि तंवरों ने बाहुबल से हस्तगत किया था तो फिर दाक्षिणात्यों के आक्रमण पर महाराज दुल्लहराय की शरण क्यो ली गयी? इनमें परस्पर वैमनस्य होना चाहिए और कछवाहो को तवरो की सहायता नहीं करनी चाहिए थी, जबकि हुआ इससे विपरीत । 'पृथ्वीराज विजय' के पद्य साक्ष्य रूप मे प्रस्तुत है -

'राजन् दक्षिणदिक्पतेर्बलवतो योधश्च भूचारिणो
राज्यं जातु जिघृक्षवो नृपशवो गर्जन्ति संपित्सवः।
भूपालेन कमरिनोऽपि(?) भवतो भूपालसिंहस्य तत्
नीतिज्ञैरवधार्यतां यदहिते सावज्ञतावज्ञता ।।७१६।।''
श्रुत्वा विश्रुतपौरुषो नृपवरो दूतस्य वाचं रुषो
वेगं संशमयन्निवोद्गतमिति प्रत्युक्तिमुच्चैर्जगौ।
क्षात्रं धर्ममिहोज्झतामिति वचो भीत्यै न च क्षत्रिया
वीक्ष्यन्ते निज-जीवितक्षयमपि क्षात्रैकरक्षापराः ।।७१७।।

---

[१] 'जयपुर का इतिहास' (नाथावतो का इतिहास) पहला भाग-श्री हनुमान् शर्मा चौमू द्वारा लिखित (प्रकाशित) वि. स. १९९४ पृष्ठ -११ के उद्धरणानुसार।

इत्यादिश्य निजं बलं सुविपुलं सज्जं युधे जायतां
राज्यं रक्षतु शिक्षिताखिलकलोर्थां मान्कुमारो बलै·।
सामात्यैरहमेव यामि नियमो नैवेह संभाव्यते
भूपानां विजयातयोपनतये नैवोच्यतां केनचित् ॥७१८॥
भिन्नाः को रणभूबलि स्ववपुषा निर्माय निर्मापकं
दिव्यं दैव्यमुपानमत्व्कणयुतं तत्किङ्किणी भूषणैः॥
तावत्कः किं करिकागणैरभिहितो देव्या विमानं मुदा
नत्वा रूस्वजगाम धाममपरं भास्वद्वपुस्सन् नृप. ॥७३०॥

इस प्रकार 'जयवश महाकाव्य' मे लिखा है -

'पतिर्गवालेरपदस्य वार्तामश्रावयद् दूतमुखेन राज्ञे।
इदं पदं ते बलिनो ग्रहीतुकामा. प्रसह्येति हि दाक्षिणात्या.॥
हेतोरतस्त्वं समुपेहि शीघ्रं तेभ्य. पदं स्वं परिपालय त्वम्।
वयं न तावद् बलिनो यतःस्यु. पराजितास्मो विमुखं भवेयुः॥
तत·स दूतादिति सन्निशम्य प्रकोपशाली नृपतिःप्रतस्थे।
जेतुं रिपूंस्तान्विनिवारितोऽपि सुतेन न त्वं किमुताहमित्थम्॥
गत्वा गवालेरमसौ नरेन्द्रस्तैर्दाक्षिणत्यैर्बलिभिस्त्वनन्तजैः।
शस्त्रास्त्रविद्यानिपुणै. ससेनैरयुद्ध दोर्दण्ड - पराक्रमेण ॥' ३१-३४

'कच्छवश महाकाव्य' मे लिखा है कि -

''अथ सोढे दिवं याते दुल्लहेन्द्रे दूरवर्तिनि।
दाक्षिणात्या नृपा. सैन्यैरुरुधुर्द्राग् गवालयम्॥ ८३
जयसिंहो जयं लिप्सुस्तोमर. सोमरोपम.।
विलिख्य विससर्जाशु दलं दुल्लहकवर्मणे॥८४
पुरं पुरुपरैरुद्धं योद्धुं शक्तिर्न चास्ति मे।
तदागच्छत गृह्णीतराज्यं नैजं पुनः प्रभो॥८५
संदेशमागतं श्रुत्वा खोहे संस्थाप्य काकिलम्।
वाहिनीं महतीं कुर्वन्नगादुल्लहो गवालयम्॥
स जित्वा शत्रुसैन्यानि वीरः खड्गसहायवान्।
आरुरोह बली दुर्गं जयसिंहकृतादरः॥८७

इत्थं निपात्य परवर्गमखर्वगर्व.
शस्त्रप्रहारशकलीकृतकायसर्ग· ।
तत्रैव हन्त जयसिंह - नृपोपकारी
लोकं निलिम्प्य कुललोकनमालुलोके ॥९१ ॥"

(तृतीय सर्ग)

उपर्युक्त इन उद्धरणो से तो यह सिद्ध होता है कि महाराज दुल्लहराय के तवर जयसिह का अच्छा सबध था। यदि तवर जयसिह सोढदेव से बलात् राज्यहरण करता तो सबध मे कटुता ही आती, मधुरता नही। अत डा राजेन्द्रलाल का कथन विचारणीय है । श्री ओझा का सदेह भी विवादास्पद ही है। यदि सारे सवत् उनके अनुसार मान लिये जांय तो जयपुर का इतिहास ही गलत हो जायेगा।

श्री ओझा ने आमेर के राजा पज्वनजी के सबध मे भी एक समस्या उठायी है। कुछ इतिहासकार इन्हे म. पृथ्वीराज चौहान के समकालीन मानते है। श्री ओझा जी ने पज्वनजी के गद्दीनशीनी के सवत् को सही बतलाने के लिए जयपुर के भाटों की ख्यात के सवत् प्रस्तुत किये है। इस हिसाब से पज्वनजी ११११० मे गद्दीशीन हुये थे। श्री ओझाजी ने इसका उल्लेख कर कल्पना का आश्रय लिया है। वे लिखते है कि ग्वालियर का राजा लक्ष्मण वि.स. १०३३ मे विद्यमान था (प्राप्त शिलालेख के आधार पर) और पज्वनजी उसका १४ वा वंशधर था। यदि प्रत्येक राजा के राज्य समय की औसत २० वर्ष मानी जावे तो पज्वन का वि.स १२९४ मे विद्यमान होना स्थिर होता है, जो असभव नही । इसी तरह पज्वन से लगाकर उसके १७ वे वशधर भारमल्ल तक के राजाओ मे से प्रत्येक का राज्य समय औसत २० वर्ष माना जाये तो भारमल्ल का वि स १६१४ मे विद्यमान होना स्थिर होता है,जो शुद्ध है, क्योंकि उसका वि सं. १६०४ से १६३० तक राज्य करना निश्चित है। ऐसी दशा मे पज्वनजी पृथ्वीराज के समकालीन नहीं, किन्तु उनसे लगभग आधी शताब्दी पीछे होना चाहिए।[१]

म पज्वनजी, पृथ्वीराज चौहान के उल्लेखनीय सामन्त थे, ऐसा उल्लेख मिलता है, ठाकुर वीरसिह तवर ने कछवाहो के सक्षिप्त इतिहास मे इसका सोद्धरण विवेचन किया है। वे लिखते है कि -

[१] **द्रष्टव्य-** ओझा निबध सग्रह-द्वितीय भाग,साहित्य सस्थान,रा०वि० उदयपुर प्रकाशन पृ ४९-५०

"चेत सुदी ७ अ.स. ११२७ शुद्ध विक्रम सवत् १२१८ ई सन्११६१ मे अपने पिता जान्हडदेव के पीछे पज्वनजी गद्दी पर बैठे, उनकी रानी पृथ्वीराज चौहान के काका कान्ह की पुत्री पदार्थदेवी थी, जिसके गर्भ से पाच पुत्र १.मलेसी २ बलभद्र ३.भीवड (ये दोनों कन्नोज के युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुए थे।) ४ लाखणसी और ५.विश्वनाथ (विश्वराय)कन्या १ जो पृथ्वीराज चौहान को विवाही गई।"

यह राजा अद्वितीय वीर था। इसने अपनी आयु मे छोटे-बडे ६४ युद्ध किये थे। इन्होने पाटण के सोलकी राजा को विजय किया था। शहाबुद्दीन गौरी को कैद किया। अत मे दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान के साथ कन्नौजपति को युद्ध द्वारा जीत कर लाया था, उसी युद्ध मे अपने कई भाईयो व दो पुत्रो सहित अद्वितीय वीरता दिखाकर मिति जेठ वदी ३ अ.सं.११५१ शुद्ध विक्रम सवत्१२४१ को ई. सन् ११८८ मे वीरगति पाई । जब पज्वनजी की लाश युद्ध भूमि से उठाकर लाई गई थी तो पृथ्वीराज ने इस प्रकार विलाप किया था -

आज हुई विधाता ढीलडी, आज ढूंढाड अनाथ।
आज पृथ्वीराज सावंत बिन माथ॥

छप्पय - **आज पुहुप बिन बास आज निजदल तजि उलंघिय।**
आज असुर दल पर क आज निज दल तजि संधिय।
हिंदवान ढाल भाग्यो भरमअब धर आत उचक्कियो।
पजवन सुरग जिते थकै चंगचंग धरतक्कियो॥[१]

'मुसलमानी राज्य के इतिहास का उद्धरण देते हुए श्रीतवर ने लिखा है कि - "जब संयोगिता ने पृथ्वीराज के मूर्ति पर वरमाला पहना दी तो जयचंद्र ने संयोगिता को कैद कर लिया । यह खबर पाकर पृथ्वीराज कन्नौज गया और सयोगिता को युद्ध कर जीत लाया । पजवन मारा गया, जो एक नामी सरदार था।"[२]

---

१ कछवाहो का सक्षिप्त इतिहास - श्री वीरसिह तवर, पृ १३-१४

२ (१) वही, पृष्ठ १४ का फुटनोट (२) मुसलमानी राज्य का इतिहास भाग १ पृ.२०-२६

जयपुर में तोतूका दीवान वालो के यहा राजा पज्वनजी का कन्नौज युद्ध में जाते समय का रुक्का है, जिससे यह सिद्ध हो जाताहै कि पज्वनजी कन्नौज वाले युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुये थे।[१]

जयपुर राजवंशावली मे लिखा है कि पज्वनजी को सवत् ११२७ मे राज मिला था। राजस्थान अभिलेखागार मे विद्यमान वशावलियो मे पृथ्वीराज के साथ म. पज्वन का होना बतलाया गया है। ''वीर-विनोद'' में पज्वनजी को पृथ्वीराज का बहनोई बतलाया गया है । टाड ने साला बताया है। कुछ वशावलियाँ पृथ्वीराज के काका कान्ह की बेटी पदार्थदेवी का विवाह पज्वनजी के साथ होने का उल्लेख करती है । कहा गया है कि पृथ्वीराज रासो में भी पज्वनजी का यशोगान किया गया है । यदि पज्वनजी पृथ्वीराज समकालीन न होते तो रासो ग्रन्थ में उनका वर्णन होना सर्वथा असभव व असगत लगता । 'भारत के देशी राज्य' मे लिखा है कि इन्होने शहाबुद्दीन गौरी को खैबर के दर्रे में परास्त किया था। इन प्रमाणो के अतिरिक्त कच्छवश महाकाव्य का साक्ष्य देखिये, जो विस्तृत एव महत्त्वपूर्ण है। आवश्यक उद्धरण भी प्रस्तुत हैं-

१ पज्वनजी को प्रद्युम्न के नाम से सबोधित किया है, इनके ४ भाई थे, जो कन्नौज के युद्ध में मारे गये थे-

''जानडस्य सुता नाम प्रद्युम्नः कि च पालण· ।
जैतसी कान्हजी कोऽपि पञ्चमस्तु पचायणः ।।४।३९
प्रद्युम्नस्तेषु राजाऽभूत् प्रद्युम्नस्तेषु विक्रमः ।
चत्वारः पालणाद्यास्ते कान्यकुब्जमृधे हताः ।।''४०

२ पज्वनजी ने चौहान वंशीय पृथ्वीराज के चाचा कान्ह की पुत्री पदार्थदेवी से विवाह किया था-

''पृथ्वीराज-पितृव्यस्य चाहमानकुले स्थिताम्।
कान्हस्य कन्यकां राजा पर्यणेषीत् पदार्थदाम् ।।४१''

३. पृथ्वीराज चौहान ,दिल्ली में चक्रवर्ती पद आपको प्राप्त कर के ही प्राप्त कर सके थे-

---

वही, पृष्ठ १४ का फुटनोट

''यं सहायं समासाद्य चाहमानपुरन्दरः।
पृथ्वीराजो हरिप्रस्थे चक्रवर्ती स्म वर्तते ।।४/४४''

४. गुर्जरेश्वर भोलेराव भीम ने अजमेर आकर लूट मचाई और म पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर को मार दिया। म पृथ्वीराज ने पज्वनजी को भेजा था-

''एतस्मिन्नन्तरे भोलेराव भीमः समाययौ।
अजमेरुपुरं लोभाल्लुण्ठितुं गुर्जरेश्वरः ।।४।४५
स समागत्य सहसा प्रायुध्यत् चाहमानकैः।
पृथ्वीराजस्य पितरं सोमेश्वरमपोथयत् ।।४६
युद्धे सोमेश्वरं हत्वा पतनं विघटस्य हा।
साहसी कोशमाकृष्य गुजरो गुर्जरान् ययौ ।।४७
उद्दण्डनाय दिल्लीन्द्रः गुर्जरेण विजृम्भितम्।
तं हन्मो वर्यामित्युच्चै प्रद्युम्न. प्राह कोपनः ।।५०
प्रद्युम्नस्य वच· श्रुत्वा दिल्लीन्द्र प्राह सादरम्।
गच्छ कच्छं त्वमद्यैव तं पापं जहि सान्वयम् ।।''५१

काव्यकार लिखता है कि शरणागत-वत्सल भोलेराव को क्षमाकर जब पज्वनजी वापिस लौटते है, तब वह विश्वासघात करता है तथा पीछे से आक्रमण करता है। वीर पज्वन उसका शिरच्छेदन कर डालता है-

''प्रणमन्तमिति प्रेक्ष्य शरणागतवत्सल.।
प्रद्युम्नः स समाश्वास्य न्यवर्तत शनैःशनैः ।।५५
सोलंकी गुर्जरो भोलेराव भीमःकृतच्छलः।
आपपात कलेः मूर्ति. प्रद्युम्नस्य बले खलः ।।५७
एवं सति रणारम्भे कच्छपः क्रोधमूर्च्छितः।
गुर्जरस्य खड्गेन मस्तकं निरकृन्तत ।। ६१''

५ म. पृथ्वीराजको अस्वस्थ जानकर कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र ने मुहम्मद गौरी को दिल्ली पर अधिकार करने को प्रोत्साहित किया। कच्छेन्द्र पज्वन ने उनके दांत खट्टे किये-

'रुग्णं पृथ्वीशमाकर्ण्य जयचन्द्रेण हृष्यता।
चेत् दिल्लीं विलुण्ठेति गौरीसाहः प्रबोधितः ॥४।६६॥
उद्वेलाब्धिनिभं कर्षन् सैन्य-लक्षद्वयोन्मितम् ।
गौरीसाहो बली दिल्लीं वेष्टयामास नेष्टधीः ॥६७॥
कच्छेन्द्रो म्लेच्छवीराणां प्रसह्याऽसह्यविक्रमः ।
मुण्डानि खण्डयामास शतशोऽथ सहस्रशः ॥७५॥
तं निघ्नन्तमभिप्रेक्ष्य माध्वसी साध्वसिस्फुटम्।
पलायितुं मतिं चक्रे गौरीसाहो रणाङ्गणात् ॥७८॥''

एक बार ही नहीं, उन्होने अनेक बार मुहम्मद गौरी को पराजित किया और दयाकर छोड दिया था। लिखा है-

''प्रद्युम्नोऽथ बलं समर्थ्य विकलं कृत्वाहवं साहसी
बद्ध्वा म्लेच्छपति प्रसह्य स हरिप्रस्थं प्रतस्थे जयी।
पृथ्वीराज - नृपो निशम्य जयिनं स्वावुत्तमभ्यागतम्
सत्कृत्य द्रविणैर्जहर्ष यवनं हीणं ततोऽमोचयत्॥८४''

उक्त पद्य में म. पज्वन जी को 'आवुत्त' कहा गया है, अर्थात् बहनोई (भगिनीपतिरावुत्त) पृथ्वीराज ने पुन गौरी को छोड दिया, परन्तु वह अपनी हरकतों से बाज नहीं आया। 'घेबराघाट' के बीच फिर मुठभेड हुई , कवि लिखता है कि -

'इत्थं गच्छत्वहः सु प्रतिभटकअक व्यूह विक्षोद -दक्षः
पृथ्वीराजानुमत्या दुरधिगमविलं काबिलं मक्षु जित्वा।
गच्छन् दिल्लीं स कच्छो यवनृपपतिना घेबराघाट मध्ये
गौरीसाहेन रुद्धः पुनरधि -समरं तं गृहीत्वा मुमोच॥८५॥''

इन उद्धरणों का आधार प्राचीन ख्याते व वंशावलियाँ है। इस अप्रकाशित ग्रंथ 'कच्छवंशमहाकाव्य' के साथ अप्रकाशित पत्रात्मक रजिस्टर भी देखने को आया जो इस ग्रंथ का आधार माना जा सकता है। इसमे प्राचीन वशावलियाँ, वृत्तान्तों आदि का उल्लेख है। यह राजकीय पोथीखाने से प्राप्त किया गया था, ऐसा कहा जाता है ।

पृथ्वीराज विजय काव्य के वर्णन-संदर्भ में इतना ही लेख है कि महाराज काकिल के पश्चात् गद्दीनशीन सभी राजाओं का वर्णन अत्यन्त सक्षेप में प्रस्तुत किया है। हा, इसके पूर्व पत्र प्राप्त हो जायं तो अवश्य ही कछवाहावंशीय राजाओ के पूर्व वृत्त का ज्ञान हो सके और हो सकता है कि कोई नवीन तथ्य भी सामने आये।

२ मान-प्रकाश :-

एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के हस्तलिखित ग्रन्थागार मे ८२५९ क्रमांक पर खण्डित एवं अपूर्ण रूप से उपलब्ध इस काव्य को ऐतिहासिक महाकाव्य की सज्ञा दी गयी है। इसके लेखक **राय मुरारिदास** है। इसमे कछवाहावशीय शासकों की सक्षिप्त वंशावली के पश्चात् मुगल बादशाह को विष्णु का अवतार बतलाया गया है। मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम का विशेष वर्णन है। यह काव्य पूर्ण उपलब्ध होता तो महाराज भगवंतदास, मानसिंह एवं अन्य तत्कालीन व्यक्तियों के विषय में नवीन जानकारी उपलब्ध होती।[१]

उक्त महाकाव्य के प्रथम दो पत्र अत्यंत जीर्णशीर्ण व त्रुटित हैं। इनमें धर्मशास्त्र का अशौच शुद्धि विषय भी अंकित है। लेखक का नाम तथा ग्रन्थ का नाम सुवाच्य है। इसके पश्चात् १६ क्रमांक तक पत्र उपलब्ध नही है। सत्रहवें पृष्ठ से २८ वे पृष्ठ तक १२ पृष्ठ उपलब्ध हैं, जिनका विषय भी अपूर्ण ही है। केवल मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम की युद्ध यात्राओं में से कतिपय का उल्लेख है। २९ वां पत्र उपलब्ध नहीं है, फिर ४ पृष्ठ प्राप्त हैं तथा अन्त मे एक पत्र क्रमांक ६६ उपलब्ध है। इन खण्डित पत्रों का विषय सुसंगत नहीं है। पूर्ण ग्रन्थ की प्राप्ति पर ही निर्णयात्मक रूप से कुछ कहा जा सकता है ।

३. ईश्वरविलास-महाकाव्यम्

जयपुर-संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय (१६९९-१७४३ई.) के आश्रित विद्वान् कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट द्वारा रचित यह महाकाव्य राजस्थान पुरातन

---

१ विस्तृत विवेचन के लिए देखिये -'मान प्रकाश एक अप्रकाशित ऐतिहासिक महाकाव्य' शोध पत्रिका, वर्ष १८ अक १-२ (सयुक्ताक, जनवरी-अप्रैल १९६७) मे प्रकाशित तथा 'जयपुर के ऐतिहासिक काव्य'-राजस्थान भारती, बीकानेर-भाग १० अक१ भी द्रष्टव्य।

ग्रथमाला के अंतर्गत राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से सन् १९५८ मे प्रकाशित हो चुका है । जयपुर नगर के राजधानी रूप मे व्यवस्थित होने के पश्चात् इस ग्रन्थ की रचना हुई थी । यह ग्रंथ राजकुमार सवाई ईश्वरीसिह के तिलकोत्सव पर लिखने के लिए आदिष्ट हुआ था।

''तत्रैव राज्यतिलकोत्सव एष राजा
श्रीकृष्ण भट्टकवये कुरु काव्यमेकम्।
अस्मत्कुलक्रमकथाकथनानुरूप-
मित्याज्ञया सह ददौ सुमहाप्रसादम्॥१०।३४॥
काव्यं स ईश्वरविलास मनोहराख्यं श्राव्यं समस्तविबुधालिसुधापमानम्।
सानन्दसर्वरसिकं पटुतानिदानं नव्यं विरच्य नवराज -समाजमागात्॥''

यह महाकाव्य अत्यंत प्रामाणिक माना जाता है। इसकी घटना सबल प्रमाणो से परिपुष्ट है। ऐसी कोई भी घटना चित्रित नहीं मिलती, जिसका आधार पौराणिक हो या कल्पनाश्रित। स्व. भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने विलासिनी व्याख्या में गूढ रहस्यो को सरल रूप से उपस्थित किया है। भूमिका कहिये या प्रस्तावना -वह इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि ग्रंथ की ऐतिहासिकता मे सदेह ही नहीं रह जाता।

इस महाकाव्य मे १४ सर्ग है। सवाई ईश्वरीसिंह का देहान्त राज्याधिकार के प्रश्न को लेकर हुए वाद-विवाद में ही हुआ था,चाहे उसे आत्मघात कहे या निन्दाघात। कवि ने इस घटना को लिखना उचित न समझकर काव्यशास्त्रीय परम्परा का पालन किया है। राणापराभव नामक चतुर्दश सर्ग लिखकर ही लेखनी को विश्राम दे दिया है। म.माधवसिंह प्रथम के उत्तराधिकार प्राप्त होने के पश्चात् भी कविकलानिधि जी विद्यमान थे। यह रजिस्टर दस्तूर कौमवार से सिद्ध होता है। राजनैतिक परिस्थितियों के कारण इस काव्य का म.माधवसिह प्रथम के शासनकाल मे लिखा जाना सभव नहीं था। अत कवि की सामयिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करते हुए इस काव्य की अपूर्णता अविचारणीय है।

इस काव्य में पृथ्वीराज, भारमल्ल, भगवन्तदास, मानसिंह, भावसिंह, जगत्सिह, जयसिंह, रामसिंह, तथा विष्णुसिंह का चित्रण इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं के साक्ष्य पर किया गया है। इनमें भी मानसिंह, जयसिंह प्रथम व रामसिंह का वर्णन विस्तृत है। कहीं-कहीं अलंकारिता के दर्शन हैं, भावसिंह का वर्णन अनुप्रासमय है।

"तस्याभूदासमानो भवभवनभवद्भूरिभाग्य - प्रभावो
भूभर्ता भारभर्ता भुवन - भविक - भृद् भूयसां वैभवानाम्।
भावानीते भवानीपतिभजनभरे भाविताऽभ्रान्तभव्यो
भूभूषा भावभाग्भा भवनमभिभवन् भूपतीन् भावसिंहः" ॥१।२९॥

स्व. श्री पी.के. गोडे ने सर्वप्रथम इसी काव्य के साक्ष्य के आधार पर स्व.जयसिंह द्वितीय द्वारा अनुष्ठित अश्वमेध यज्ञ की सत्यता प्रामाणित की थी । सवाई जयसिंह द्वितीय व स. ईश्वरीसिंह कालीन घटनाओ की प्रामाणिकता के लिए इसके अतिरिक्त अन्य प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति नहीं हैं। द्वितीय सर्ग से दशम सर्ग के मध्य तक सवाई जयसिंह का तथा शेष सर्गो में सवाई ईश्वरीसिंह का वर्णन है। अपने आश्रयदाता की निधन-तिथि का उल्लेख देखिये-

"वर्षे सोऽष्टादशशततमे विक्रमार्कस्य शाके
मासे चैवाश्विननिगदिते शुक्लभूते दिने च।
प्रातःकाले हृदयकमलाऽऽनीतगोविन्ददेवो
देवो देवोपमगतिरसून् प्रोज्झ्य तस्मिन् विलिल्ये ॥१०।११

इसकी ऐतिहासिकता का चित्रण एक स्वतत्र लेख का विषय है।

४. जयवंश महाकाव्यम् :-

सवाई जयसिंह तृतीय (१८१८-१८३४ई.) के आश्रित परम्परागत राजगुरु श्री सखाराम भट्ट पर्वणीकर के कनिष्ठ भ्राता श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर द्वारा रचित यह काव्य राजस्थान-विश्वविद्यालय जयपुर से सन् १९५२ मे प्रकाशित हो चुका है। इसमे कछवाहवंशीय जयपुर-आमेर के सभी शासकों की वशावली प्रस्तुत करते हुए उनका ऐतिहासिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

पर्वणीकर वंश की जयपुर मे स्थिति म. विष्णुसिह के समय से प्रमाणित है। श्री माधवभट्ट शर्मा ने सवाईजयसिह को पढाया था। तभी से उनके वशज भी राजगुरु पद का उपभोग करते रहे हैं। इस काव्य मे चित्रित अनेक घटनाये ईश्वरविलास आदि सम-सामयिक प्रमाणों से परिपुष्ट होने के कारण इसे ऐतिहासिक महाकाव्यो की श्रेणी मे स्थान प्रदान किया जाता है। इसमें स्थान-स्थान पर तिथि का भी संकेत दिया गया है-

''वह्नि द्विशून्येन्दुमिते कुमारः संवत्सरे कार्तिक कृष्णपक्षे।
तिथौ दशम्यां पदमत्र पित्र्यं समृद्धमारादधितिष्ठति स्म ।।१/१४।।''

यह सोढदेव का राज्याधिरोहण काल है। स्थान-स्थान पर ऐतिहासिक पुरुषो के नाम भी चर्चित है-

''जगदादिनाथमवृताथ नृपो गुरुमात्मनो महति गातृपदे।
ब्रजनाथदीक्षितमुखान् विबुधानवशिष्ट षोडशपदेष्ववृत ।।१४/३७।।''

अश्वमेध याग मे श्री जगन्नाथ सम्राट् को गाता पद पर तथा श्री ब्रजनाथ दीक्षित प्रभृति विद्वानो को शेष १६ स्थानो पर वरण किया था-ऐसा भावार्थ है।

इस काव्य की ऐतिहासिकता भी प्रमाण पुष्ट होने से नि सन्दिग्ध है।

५.कच्छवंश महाकाव्यम्

राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट कृत यह महाकाव्य वास्तव मे एक इतिहास ग्रंथ है। यदि चारण भाटो का रिकार्ड ,ख्याते वंशावलियो नष्ट भी हो जाये तो भी यह काव्य कछवाह शासको का इतिवृत्त प्रस्तुत करने मे पूर्ण सक्षम है। इसका आधार प्राचीन उपलब्ध रिकार्ड ही है। यद्यपि अनेक स्थानो पर किंवदन्तियो को भी चित्रित किया है, परन्तु उससे इस काव्य की ऐतिहासिकता पर आंच नहीं आती है। कवि उसे जनश्रुति के रूप मे ही प्रस्तुत करता है। इतिहास सम्मत घटना के रूप मे नहीं। कहा जाता है कि म.भारमल्ल ने अपनी पुत्री कृष्णा का विवाह हाजीखां से किया था, जब हाजी खां, बादशाह द्वारा आमेर भेजा गया था - (इतिहास)

''चक्रवर्ती तुरष्केन्द्रः श्रुत्वा तत्प्रार्थनां पराम्।
हाजीखां यवनं तस्य साहाय्ये सम्यगादिशत्।।७१२।।
महजिमन्तरा हाजी सिद्धमालोक्य कर्म तत्।
न्यवर्तत स सत्कारं गृहीत्वा भारमल्लतः।।७१५।।
(जनश्रुतिः) केप्याहु· स्वां सुतां कृष्णां हाजिने सादरो नृप·।
इति को नाम मन्येत मादृशः कच्छसंशय· ।।७१६।।'

इस काव्य की एक विशेषता यह है कि कवि ने सभी गद्दीनशीन शासकों के वंशवृक्ष सन्ततियो, स्त्रियो व अन्य घटनाओं का पूर्णत उल्लेख किया है। यह

अप्रकाशित है। प्रत्येक घटना की ऐतिहासिकता विवेचनीय है । यह १९ वीं शताब्दी की रचना है। अन्यान्य ऐतिहासिक काव्य संक्षिप्त हैं तथा विशेष उल्लेखनीय नहीं है। अत उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

ऐतिहासिक विवरण :-

जैसा कि विवेचन से स्पष्ट है , उपर्युक्त पांच महाकाव्यो मे वे सभी घटनाये वर्णित है, जो इतिहास प्रसिद्ध हैं। इतिहास पुरुष वश के उन्नायक शासक तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों का उल्लेख ही ऐतिहासिकता की ओर खींचता है। नगरों के नाम राजनैतिक सबंधो की चर्चा, तत्सबंधी आवश्यकतानुसार सकेत-सामग्री की विवेचना आदि उपरिप्रदत्त उद्धरणो से ज्ञातव्य है।

धार्मिक स्थिति :-

इन काव्यों में स्थान-स्थान पर धर्म तत्त्व की विवेचना भी हुई है। कछवाह वशीय शासक प्रारभ से ही शाक्त रहे हैं तथा उनकी देवी का नाम जमवाय माता, जाम्बवती, बुढवाय माता आदि उल्लिखित है। सम्प्रदायो का जहा तक प्रश्न है , पृथ्वीराज के प्रथम शाक्त, शैव तथा कृष्णपयोहारीजी के संग से वैष्णव होने का उल्लेख मिलता है। ये शासक "अन्त शाक्ता बहि शैवा सभामध्ये च वैष्णवा सिद्धान्त का पालन करते आये हैं। अपनी कुल परंपरा के अनुसार ये लोग जमवायमाता को आज भी पूजते हैं। आमेर के अधिष्ठातृ देव अम्विकेश्वर महादेव के भक्त रहे हैं तथा वृदावन आदि वैष्णव तीर्थो पर प्रशस्तियां लगवाकर आमेर तथा जयपुर में श्री गोविन्ददेवजी के वैष्णव मंदिरो की स्थापना पर जनता की कृष्ण भक्ति को भी पोषित करते रहे है। म रामसिह के समय मे तो शैव सप्रदाय व वैष्णव सप्रदाय का झगडा इतिहास प्रसिद्ध है। इसमे शैव मतानुयायी विजयी रहे थे। क्योकि रामसिह स्वयं शैव थे। (संभवत ·इसका उल्लेख कच्छवंश मे हुआ भी हो, पूर्ण प्रति प्राप्त न होने से निर्णयात्मक रूप से नही कहा जा सकता।)

सामाजिक स्थिति :-

इस विषय से सबद्ध सामग्री का न्यूनत्व ही दृष्टिगोचर होता है। कछवाह वंशीय ये शासक युद्धभूमि में ही विचरण करते रहे है। अथवा पारस्परिक शासन

व्यवस्था के विवादो मे लिप्त रहे हैं। समाज का चित्रण जयपुर की स्थापना के उपरांत कच्छवश, जयवश आदि काव्यो मे अवश्य हुआ है। वह भी केवल इस रूप मे कि प्रजा अपने राजा को कितना चाहती है। शासको ने भी अपनी प्रजा के लिए बहुत किया हैं और यह काल स.जयसिंह द्वितीय से ही प्रारभ होता है। रीति-व्यवहार आदि के विषय मे विशेष कुछ भी नहीं मिलता।

आर्थिक स्थिति :-

उक्त काव्यो के अध्ययन से तत्कालीन आर्थिक स्थिति का कोई उल्लेखनीय घटनाक्रम प्राप्त नहीं होता । कवियो के घटनाक्रम के वर्णन से ही अवकाश नही मिला, अत उन्होने वर्गो के संबध में कुछ भी नही लिखा। अर्थ व्यवस्था ठीक ही रही होगी, तभी तो राजा लोग दानवीर रहे है।

साहित्य एवं कला :-

जैसा कि विवेचन से स्पष्ट है कोई भी ऐसा विषय अवशिष्ट नही रहा, जिससे सबद्ध रचना प्राप्त नहीं होती हो। रचनाओ की सख्या भी असीमित है, इससे ज्ञात होता है, कछवाहा वंशीय शासक साहित्य के पोषक रहे हैं। इन लोगो ने विद्वानो को पूर्ण सम्मान व आवासादि प्रदान कर स्थायी निवासी होने के लिए बाध्य किया था। इसका उल्लेख शासको के साथ किया जा चुका है। जैसा कि उल्लेख मिलता है, शासको ने अपने अधीन आश्रित विद्वानो को जागीरे प्रदान की तथा उच्च सम्मानित पदो पर अधिष्ठित किया। अत उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ रही है, विचारणीय या हीन नहीं।

कलाओ के पोषण मे भी इन शासको का उल्लेखनीय योगदान रहा है। जयपुर जैसे सुव्यवस्थित कलात्मक नगर का निर्माण, उसमे समय-समय पर परिवर्तन-परिवर्द्धन, इन शासको की कलाप्रियता का ज्वलन्त उदाहरण है। शासकों में सगीत प्रेम भी रहा है, जिससे प्रसिद्ध कर्नाटक सगीत शास्त्री विट्ठल ब्राह्मण को सम्मान प्राप्त हुआ था।

तात्कालिक विषम परिस्थितियो के बावजूद भी यहां शासको ने विद्वानों को आश्रय प्रदान किया और साहित्य सर्जना मे अपना बहुमूल्य योग प्रदान किया। यद्यपि कला एव साहित्य के प्रेमी शासको का उल्लेख किया जा चुका है, परन्तु उनमें भी

जयपुर सस्थापक सवाई जयसिह द्वितीय का शासन-काल ही 'स्वर्ण काल' माना जाता है। वे स्वयं भी विद्वान् थे और विद्वानों के आश्रयदाता भी। इनका योगदान स्वर्णाक्षरो मे अंकनीय है।

ऐतिहासिक विवेचन, एक विवादग्रस्त विषय है और इसका उल्लेख सक्षेप मे किया जाना संभव नहीं । यहां विषय दिङ्मात्र प्रदर्शित किया गया है। इस विवेचन से जयपुर-आमेर के कछवाहो की कला व साहित्य प्रियता के साथ ही क्रियात्मक अभिव्यक्ति का भी दर्शन हो सका है।

'शोध पत्रिका'
साहित्य संस्थान, उदयपुर
वर्ष २१ प्रथम अंक (१९७० ई.)

***

ाओ से सम्मानित।

प्रो (डा.) प्रभाकर शास्त्री

* सामवेद की कौथुम शाखा के अध्येता, त्रिप्रवर (काश्यप, नैध्रुव, वत्स) उपाध्या-व्यासपुरेचा, गोत्र–काश्यप, श्रीमाली ब्राह्मण, राजस्थानवासी।

* धर्मशास्त्र, व्याकरण, साहित्य आदि अनेक विषयों के निष्णात विश्रुत विद्वान् प श्री वृद्धिचन्द्र जी शास्त्री के कनिष्ठ पुत्र।

* सर्वप्रथम भारतप्रसिद्ध जयपुरस्थ महाराज सस्कृत कालेज के नियमित छात्र के रूप मे 16 वर्ष तक सस्कृत भाषा माध्यम से अध्ययन करते हुए धर्मशास्त्र विषय से उपाध्याय, शास्त्री एव आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण–सन् 1960 ई

* शास्त्री एव आचार्य परीक्षाओं मे सर्वप्रथम स्थान, स्वर्णपदकी, पाश्चात्य पद्धति से हाईस्कूल, इटरमीडियट, बी ए तथा एम ए (सस्कृत व हिन्दी) उत्तीर्ण। एम ए (सस्कृत) मे राजस्थान प्रान्त में प्रथम स्थान, स्वर्णपदकी।

* ''जयपुर की सस्कृत साहित्य को देन'' (1699–1834 ई) विषय पर 1964–65 ई मे पी-एच डी उपाधि एव इसी विषय के (1835–1965 ई) पर राजस्थान विश्वविद्यालय की सर्वोच्च उपाधि 'डी लिट्' से समलकृत प्रथम अनुसन्धाता का गौरव प्राप्त।

* सन् 1961 ई से जुलाई 1978 ई तक राजस्थान प्रान्त के विभिन्न राजकीय महाविद्यालयो मे व्याख्याता सस्कृत के पद पर सफलतापूर्वक कार्य करते हुए जुलाई 1978 से 1989 ई तक सस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर मे प्रवाचक एव जून 1999 ई तक प्रोफेसर व अधिष्ठाता कला सकाय रहे।

* शोध–प्रविधि के अप्रतिम धनी, अब तक 38 शोध छात्र–छात्राओ कों शोधोपधि से समलकृत करने वाले, न केवल राजस्थान प्रान्त के, अपितु भारतवर्ष के सुपरिचित सस्कृत–अन्वेषक, अनेक उच्चस्तरीय सस्थाओ से सम्मानित।





राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र

जयपुर